सम्यक शिक्षा

प्रवचन-क्रम

1. जीवन की दिशा..2
2. अकंप चित्तता..12
3. सच्चा शिक्षक..25
4. सभ्यता: हमारी शिक्षा का फल..37
5. शिक्षा और विज्ञान...50
6. यह अधूरी शिक्षा?...67
7. सम्यक शिक्षा..77
8. प्रेम--अनुशासन--क्रांति...90
9. शिक्षाः महत्वाकांक्षा और युवा पीढ़ी का विद्रोह.........................99

सम्यक शिक्षा
पहला प्रवचन

जीवन की दिशा

एक छोटी सी घटना से मैं अपनी चर्चा शुरू करना चाहूंगा।
कोई पच्चीस सौ वर्ष पहले एक छोटे से गांव में एक सुदास नाम का व्यक्ति था, बहुत गरीब, उसकी एक छोटी सी तलई थी, उसमें कमल का एक फूल बेमौसम खिल गया था। उसे बहुत खुशी हुई। उसने पांच रूपये निकाल कर उस सुदास को देने चाहे, सुदास हैरान हुआ, पांच रूपये कोई देगा इस फूल के, लेकिन इसके पहले कि वह रूपये लेता, पीछे से नगर का जो सबसे बड़ा धनपति था, उसका रथ आकर रुका। उसने कहा सुदास ठहर जा, बेच मत देना। पांच रूपये देगा वह सेनापति, तो मैं पांच सौ रूपये दूंगा। सुदास तो बहुत हैरान हो गया, यह बात तो सपने जैसी हो गई कि एक फूल के कोई पांच सौ रूपये देगा। सुदास बढ़ा उस धनपति की ओर अपने फूल को लेकर, लेकिन तभी पीछे धूल उड़ाता राजा का स्वर्ण रथ भी आ गया। और उसने कहा, सुदास ठहर जा, धनपति जो देता होगा, उससे दस गुना मैं तुझे दूंगा। सुदास की समझ के बाहर थी यह बात, इतनी धनराशि कोई एक फूल के लिए देगा! राजा के स्वर्ण रथ की तरफ वह बढ़ा, रुपये लेने को नहीं, बल्कि राजा से यह पूछने को कि इस एक फूल के इतने दाम देने की क्या जरूरत आ पड़ी है? और सारा नगर ही क्या फूल को खरीदने को उत्सुक हो आया है? राजा ने कहा शायद तुझे पता नहीं, नगर में बुद्ध का आगमन हुआ है, हम उनके स्वागत को जाते हैं। और धन्य होगा वह व्यक्ति, जो इस फूल को उनके चरणों में चढ़ाएगा। फूल मुझे दे दे और धन थोड़ी ही देर में तेरे घर पहुंच जाएगा।
सूदास ने कहाः क्षमा करें, यह फूल अब मैं बेचूंगा नहीं। मैं भी उसी तरफ चलता हूं, जिस तरफ आप सब जाते हैं। राजा हैरान हो आया। कल्पना न थी कि गरीब व्यक्ति भी, इतने बड़े मोह को छोड़ सकेगा। सुदास ने फूल बेचने से इनकार कर दिया। राजा का रथ तो पहले ही बुद्ध के पास पहुंच गया, सुदास बाद में पैदल पहुंचा। बुद्ध के चरणों पर उसने उस फूल को रखा, बुद्ध को खबर हो गई कि राजा ने कहा था, हजारों स्वर्णमुद्राओं को ठुकरा कर एक दीन-हीन चमार ने आज मुझे चकित कर दिया है। बुद्ध ने कहा सुदास को, पागल है तू, पीड़ियों तक के लिए तेरी जीवन की चिंता, आजीविक की चिंता समाप्त हो जाती। फूल बेच क्यों न दिया? सुदास ने कहा, जो आनंद उस धन से मुझे मिलता, आपके चरणों में फूल को रख कर उससे बहुत अनंत गुना आनंद मुझे मिल गया है। बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा, भिक्षुओं ये दीन-हीन मनुष्य नहीं है, ये बहुत सुसंस्कृत और सुशिक्षित व्यक्ति है। सुसंस्कृत और सुशिक्षित कहा उस सुदास को, जो न पढ़ा था, न लिखा था, दीन-हीन था। जूते सीकर ही जीवन जिसने यापन किया था। किसी विद्यालय में कोई प्रवेश नहीं पाया था, किसी गुरु के पास बैठ कर कोई शिक्षा न पाई थी। लेकिन बुद्ध ने कहा, सुशिक्षित है, सुसंस्कृत है, ये दीन-हीन चमार। और भिक्षुओं इससे शिक्षा लो, उनके एक भिक्षु ने पूछा, किन अर्थों में इसे सुशिक्षित कहते हैं? बुद्ध ने कहा इसमें ऊंचे मूल्यों को देखने की क्षमता है। हाइयर वैल्यूज जिन्हें हम कहें, जीवन के ऊं चे मूल्यों को देखने की इसमें क्षमता है। शिक्षा का और कोई अर्थ ही नहीं है। जीवन में उच्चतर मूल्यों का दर्शन हो सके, तो ही मनुष्य शिक्षित है। पैसे का दर्शन तो सुदास को भी हो सकता था, लेकिन नहीं पैसे की जगह प्रेम को उसने वरन किया। धन तो उसे भी दिखाई पड़ सकता था, एक फूल के लिए उसे जो धन मिलने को था, वह बहुत था। लेकिन नहीं उसने धन को ठुकराया। और धर्म को वरन कि या। उसने साहस किया क्षुद्र को छोड़ देने का, और विराट के प्रति समर्पण का। शिक्षित मनुष्य का और कोई अर्थ नहीं होता।
शिक्षित चित्त का अर्थ है, जो क्षुद्र को विराट के लिए छोड़ सके। और अशिक्षित का अर्थ है, जो क्षुद्र को पकड़े रहे और विराट को छोड़ दे। लेकिन इन अर्थों में क्या हम आज की शिक्षा को शिक्षा कह सकेंगे? शायद नहीं, कोई कारण नहीं है इस अर्थ में शिक्षा को शिक्षा कहने का। क्योंकि सारे जगत में जो मूल्य शिक्षा से हमें उपलब्ध हो रहे हैं, जो मूल्य हमें प्रेम को छोड़ने को कहते हैं, पकड़ने को नहीं; वे हमें धर्म को छोड़ने को कहते हैं, धन को पकड़

लेने को; वे जीवन में जो कुछ स्थूल और पार्थिव है, जो अत्यंत शुभ है, उसके ही इर्द, उसकी हत्या के लिए हमें तैयार करते हैं। जो जीवन का विराट है, जीवन में चिन्मय है, जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, वो क्षुद्र सी वेदी के सामने... किया जाता हो, तो नहीं किया जा सकता; जिसे हम शिक्षा समझ बैठे हैं, वह शिक्षा है। होगी आजीविका को उत्पन्न कर लेने की विधि, लिविंग उससे आ जाती होगी, लाइव, आजीविका मिल जाती होगी, लेकिन जीवन, जीवन उससे छिन जाता है।
इमर्सन अपने गांव के एक युवक के स्नातक हो जाने पर विश्वविद्यालय से ग्रेजुएट होकर लौटने पर उसके स्वागत में कहा था, मैं इस युवक का स्वागत करता हूं। इसलिए नहीं कि यह हमारे नगर का पहला व्यक्ति है, जो विश्वविद्यालय की श्रेष्ठतम डिग्री लेकर लौटा है, बल्कि इसलिए कि ये विश्वविद्यालय से लौट आया है, और अपने को बचा कर लौट आया है। विश्वविद्यालय इसे बिगाड़ने में समर्थ नहीं हो सका। इसलिए स्वागत करता हूं इस युवक का। हैरानी की बात इमर्सन ने यह कही, लेकिन बहुत सच है, आजिविका की शिक्षा में हम सब जीवन को गवां आते हैं, खो आते हैं। जरूरी है आजिविका, रोटी मिलनी अत्यंत आवश्यक है, वस्त्र मिलने अत्यंत आवश्यक हैं, जरूरी है बहुत, लेकिन जीवन को खोने के मूल्य पर जरूरी नहीं। और आजीविका इसलीए हम खोजते हैं ताकि जीवन मिल सके। हम एक वृक्ष की जड़ों को पानी देते हैं, जड़ों के लिए नहीं बल्कि इसलिए कि किसी दिन फूल आ सकें, लेकिन वे फूल आने बंद ही हो जायें, और हम जड़ों को ही पानी देते रहें, देते रहें, देते रहें तो कोई हमें पागल कहेगा। जड़ों को पानी देना बहुत जरूरी है, लेकिन जड़ों के लिए ही नहीं, किन्हीं फूलों की आशा में, अपेक्षा में; किसी दिन फूल प्रकट होंगे, और हवाएं उनकी सुगंध से भर जाएंगी, और उनकी सुगंध का संदेश दूर-दूर तक आकाश में व्याप्त होगा। उस आशा में उस प्रतीक्षा में जड़ों को हम पानी देते हैं। जड़ें न तो सुंदर हैं, न... हैं, जमीन में कहीं छिपी रहती हैं, उन कुरुप जड़ों को हम सींचते रहते हैं, इस आशा में कि किसी दिन सुंदर फूलों का जन्म होगा, लेकिन अगर फूल जन्मने बंद ही हो जाएं, और कोई उन जड़ों को ही इतना पानी देता रहे कि सारा जीवन गवां दे, फिर हम क्या कहेंगे? आजिविका मनुष्य की जड़ हैं। रुट्स हैं वहां। उसके बिना जीवन खड़ा नहीं
हो सकता। लेकिन आजीविका अपने आप में अर्थहीन है, जीवन के फूल न हो तो हम जड़ों को लेकर क्या करेंगे? सारे जगत में आज जो शिक्षा है, वह जड़ों को तो बहुत मजबूत कर देती है, लेकिन फूल उससे पैदा होते दिखाई नहीं पड़ते। एक बहुत अजीब और बेचैन कर देने वाली बात पैदा हुई है। इसे हम अपने खयाल में कैसे लें? यह शिक्षा नहीं है, शिक्षा कें अंतर्गत कुछ और निराकांक्ष, कुछ और असीमित स्वीकृत होना चाहिए। नहीं है क्यों यह शिक्षा? इससे श्रेष्ठतर मूल्यों का हमारे जीवन में कोई अविर्भाव नहीं होता।
मैंने सुना है, किसी बहुत पुराने गुरुकुल से तीन युवक अपनी शिक्षा पूरी करके वापस लौटते थे। गुरु ने बार-बार उन्हें कहा था कि तुम्हारी एक परीक्षा शेष रह गई है, लेकिन अंतिम दिन आ गया, दीक्षांत समारोह भी हो गया, गुरु ने आशीर्वाद भी दे दिया, आज सांझ वो विदा हो जायेंगे। बार-बार उनके मन में यह ख्याल उठता था, गुरु ने बहुत बार कहा था, अंतिम परीक्षा शेष रह गई है, क्या वह परीक्षा कभी नहीं होगी? और आज तो विदा का दिन भी आ गया, और आज तो उन्हें उपाधियों भी दे दी गई और गुरु ने आशीर्वाद भी दे दिया। और जीवन की पात्रता के लिए जो गुरु को कहना था, वह भी कह दिया। वे गुरु के चरण भी छू आए थे। उन्होंने अपना बोरी-बिस्तर भी बांध लिया था, अब तो वे जाने को ही थे। अंतिम परीक्षा शेष रह गई थी, क्या वह शेष ही रह जाएगी? और संध्या वे विदा भी हो गए। वे अपने घर की तरफ लौट पड़े, सूरज ढलता था और घना अंधेरा धीरे-धीरे उतरने लगा, उनकी पगडंडी पर, जल्द ही उन्हें जंगल को पार कर जाना था, ताकि वे नगर में पहुंच जाएं। शीघ्रता से वे भागे चले जाते थे कि राह में एक झाड़ी के किनारे जहां पगडंडी बहुत संकरी हो आई थी, देखा बहुत से कांटे पड़े हैं। एक युवक जो आगे था, छलांग लगा कर निकल गया था पार; दूसरा युवक जो उसके पीछे था, पगडंडी से नीचे उतर कर राह को छोड़, कांटों से बच आगे हो गया। लेकिन तीसरा जो युवक था, उसने अपने ग्रंथों को नीचे रख, अपने वस्त्रों को नीचे रख, अपनी

चटाई को नीचे रख उन कांटों को बीनना शुरु किया, दो युवकों ने कहा, पागल हो, जल्दी करो। रात उतरी आती है, नगर दूर है, जंगल भयानक, एक क्षण भी छोड़ना उचित नहीं है, जल्दी चलो। यह क्या पागलपन करते हो? उस युवक ने कहाः इसीलिए कि रात उतरी आती है, घना अंधेरा थोड़ी देर में घेर लेगा, हम अंतिम पथिक हैं, जिन्हें ये कांटें दिखाई पड़ रहे हैं, हमारे बाद अब ये कांटें किसी को दिखाई नहीं पड़ेंगे। न कांटों को हटा देना अत्यंत जरूरी है। कल्पना भी न थी उन्हें, कि उस झाड़ी में उनका गुरु, पहले से आकर छिप कर बैठ गया होगा। वह गुरु बाहर आ गया, और उसने कहा कि अंतिम परीक्षा तुम्हारी ले ली गई, तुम जो दो आगे निकल गए हो, बिना कांटों को बीने वापस लौट आओ, तुम असफल हो गए। तुम एक वर्ष और रुक जाओ, अभी। तुमने जीवन में प्रेम का पाठ अभी नहीं सीखा है। जीवन में कुछ उच्चतम मूल्य हैं, वे तुम्हारी दृष्टि में अभी दिखाई नहीं पड़े। यदि राह पर पड़े कांटें भी तुम उठाने में असमर्थ हो, तो मैं तुम्हें अभी जीवन में नहीं जाने दूंगा, क्योंकि तुम्हें शायद पता नहीं है कि जो आदमी दूसरे की राह से कांटें उठाने में असमर्थ सिद्ध होता है वह अपने जीवन की राह पर निरंतर कांटों ही कांटों को पाएगा। तुम्हें शायद यह पता नहीं है, कि जो आदमी दूसरे की राह से कांटें उठाने में असमर्थ है, वह आज नहीं कल दूसरे की राह पर कांटे बिछाने में समर्थ हो जाएगा। तुम्हें शायद पता नहीं है कि जिसे कांटों की पीड़ा का, कांटों के दुख का किसी दूसरे के लिए कोई बोध नहीं है, उस आदमी के भीतर अभी मनुष्य का जन्म नहीं हुआ है। तुम वापस लौट आओ। तुम अंतिम परीक्षा में असफल हो गए हो।
हमारी शिक्षाएं अंतिम परीक्षा में सफल हो सकें, हम सफल हो सकें और अगर
न हो सकेंगे, तो किस मुंह से कहें कि जिसे हम शिक्षा कह कर जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा व्यय कर रहे हैं, वह शिक्षा है। इस सत्य को बिना स्वीकार किए, शायद शिक्षा में कोई क्रांति नहीं पैदा हो सकेगी। इस तथ्य को स्पष्टतः देखे बिना, शायद हम कोई आमूल परिवर्तन पैदा नहीं कर सकेंगे। पढ़े-लिखे लोग पैदा होंगे, लेकिन शिक्षित नहीं। और पढ़ा लिखा आदमी अगर शिक्षित न हो, तो गैर पढ़े-लिखे आदमी से ज्यादा खतरनाक हो जाता है। क्योंकि उसके पास तर्क होते हैं, लेकिन उसके पास हृदय नहीं होता। उसके पास बौद्धिक क्षमता होती है, लेकिन उसके पास प्रेम करने वाली पात्रता नहीं होती। और प्रेम से पृथक होकर जो तर्क हैं, वे जीवनघातक सिद्ध होते हैं। वे अंधे आदमी के हाथ में दी गई तलवार बन जाते हैं। वे छोटे बच्चे के हाथ में खेलने के लिए दिए गए बम जैसा सिद्ध होगा। उसका विस्फोट होगा और जीवन को नुकसान होगा। इसके पहले कि कोई जीवन तर्कनिष्ठ बने, उसे प्रेम में प्रतिष्ठा मिल जानी चाहिए। क्योंकि प्रेम ही बार-बार तर्क को रोकेगा, जहां तर्क जीवन के विरोध में जाता है और विषाक्त होता है। अकेला तर्क हो मनुष्य के पास, तो उसके पास घोड़ा तो होता है, बहुत तेज; लेकिन लगाम उसके पास नहीं होती। और ये घोड़ा किसी और को हानि देगा यह तो ठीक ही है, लेकिन उसके सवार को जीवन का भी कोई आश्वासन नहीं है। ये उसको कहां ले पटकेगा, इसे भी कहना कठिन है। इधर हजारों वर्षों से पढ़ा-लिखा आदमी शिक्षित नहीं है, इसका बहुत दुष्परिणाम मनुष्य को भोगना पड़ रहा है।
ट्रूमैन अमेरिका का प्रेसिडेंट था, हिरोशिमा और नागासाकी पर उसकी आज्ञा से ही अणुबम गिरे। दूसरे दिन सुबह पत्रकारों ने उसके दरवाजे पर दस्तक दी, भीड़ थी पत्रकारों की और वे एक बड़ा अजीब प्रश्न पूछने उसके पास गए। उन पत्रकारों ने ट्रूमैन से बाहर आकर यह पूछा कि क्या आप रात शांति से सो सके? बहुत उचित था यह पूछना। जिस आदमी की आज्ञा से एक लाख लोग जलकर राख हो गए हों, छोटे बच्चे, बूढ़े, निर्दोष; उस आदमी से यह पूछना बहुत जरूरी था कि क्या तुम रात आराम से सो सके हो? शांति से? ट्रूमैन ने कहा बहुत शांति से, इधर बहुत दिनों से इतने आराम से नहीं सो सका था। एक चिंता मन पर बनी थी, वह चिंता समाप्त हो गई। मैं रात बहुत आराम से सोया, बहुत शांति से।
क्या कोई सुशिक्षित आदमी ऐसा कह सकेगा? नाम तो ट्रूमैन है, सच्चा आदमी, लेकिन भीतर कोई झूठा आदमी बैठा होना चाहिए। नाम सच्चे हैं, भीतर आदमी बहुत झूठा है। एक लाख लोगों पर हिरोशिमा में क्या बीती, इसका कोई अनुभव, कोई प्रतीति, कोई प्रेम, कोई लहर इस आदमी के मन को न छुई, यह रात भर

बेचैन भी नहीं हुआ? इसके सपनों में हिरोशिमा में उठे धुएं की कोई कालिख न आई? इसकी निद्रा में वहां रोते बच्चों की कोई झलक न पहुंची? अगर ऐसा आदमी शिक्षित है, तो क्या यह उचित न होगा कि हम वापस लौट जाएं अशिक्षा के दिनों में। क्या यह उचित न होगा कि सारे शिक्षालय बंद हों? अगर यही आदमी शिक्षित है, तो ये चुनाव बहुत महंगा है। यह शिक्षा बहुत महंगी है। या तो वापस लौट जाएं हम, और या शिक्षा को और वृहत्तर करें, जीवन के मूल्यों से संबंधित करें। वह केवल रोटी कमाने का जरिया न हो, बल्कि जीवन को अनुभव करने का मार्ग भी बने। जीवन को जीने की विधि भी उसमें हो। हम मनुष्य को केवल कुछ शब्द और पाठ पढ़ा कर निपट न जाएं। बल्कि उसके हृदय को उसके संवेगों को, उसके इमेजन्स को भी प्रशिक्षित करें। उसके भीतर जो छिपी हुई संभावनाएं हैं, उसके व्यक्तित्व के जो अनंत-अनंत द्वार है, उन सबको भी खोलें, उसका मस्तिष्क ही भारी न हो जाए, शायद जापानी गुड़िया आपने देखी हो। एक गुड़िया होती है, जापान की दारुमा नाम होता है, दारुमा डॉल! उस गुड़िया को हम धक्का दे दें, चोट पहुंचा दें, वह गिर जाती है, फिर अपनी जगह बैठ जाती है। न केवल बैठ जाती है, बल्कि बैठते वक्त, लौटते वक्त संगीत से भी आस-पास की हवा को भर देती है। जापान के लोग कहते हैं, दुनिया में दो तरह के आदमी होते हैं, जिनका सिर बहुत भारी होता है, वे गिर जायें तो वापस अपनी जगह पर लौट नहीं सकते। वे दो तरह की गुड़िया बनाते हैं, एक को गिरा दें, तो लौट नहीं सकेगी, उसका सिर बहुत भारी होती है, वजनी होता है, वह लौट नहीं सकती, सिर के बल पड़ी रह जाती है। दूसरी गुड़िया वे बनाते हैं, जिसका सिर अनुपात में होता है, वजनी नहीं होता, गिर जाए, वापस लौटकर अपनी जगह बैठ जाती है।
मनुष्य भी दो तरह के होते हैं। जिनका सिर बहुत भारी हो जाता है, और जिनके जीवन का सारा प्रशिक्षण केवल मस्तिष्क का प्रशिक्षण होता है, उनके व्यक्तित्व में एक कुरुपता, एक बेडौलपन आ जाता है। उनका व्यक्तित्व सिर से तो भारी हो जाता है, लेकिन हृदय की तरफ बिल्कुल खाली। और तब उनके गिरने का खतरा प्रतिक्षण बना रहता है। और वे जीवन में जो उपाय भी खोजते हैं, वे इतने अधूरे और अपंग होंगे, जिनकी वे कल्पना भी नहीं कर सकते।
मैंने सुना है, एक बहुत बड़ा गणितज्ञ था। उस गणितज्ञ ने संभवतः यूनान में सबसे पहले गणित की किताबें संग्रहीत की। उस समय तक जितना गणित दुनिया में था, सबका उसने अध्ययन किया, वह एक दिन सुबह अपनी पत्नी और बच्चों को लेकर पिकनिक पर गया हुआ था। छोटी सी नदी की धारा बीच में पड़ती थी। उसकी पत्नी ने कहा, पांच-छह उसके बच्चे थे, छोटे-बड़े, उसकी पत्नी ने कहा, बच्चों को सम्हाल कर नदी के पार निकाल दो, उस गणितज्ञ ने कहा ठहरो, मैं नदी की औसत गहराई नापे लेता हूं,। एवरेज गहराई नाप लेता हूं। और बच्चों की एवरेज ऊंचाई भी नापे लेता हूं, अगर बच्चे औसत लंबे सिद्ध हुए, फिर सम्हाल कर निकालने की कोई जरूरत नहीं, उसने जल्दी से छोटा सा नाला था, नाप लिया। दो- चार जगह पानी की गहराई को, बच्चों की ऊंचाई को रेत पर बैठ कर हिसाब कर लिया, और उसने कहा कि बेफिकर रहो, बच्चों को आने दो, कोई डूबेगा नहीं। औसत बच्चों की ऊंचाई, नदी की औसत गहराई के ज्यादा है। गणितज्ञ आगे चल पड़ा, बीच में उसके बच्चे थे, पीछे उसकी पत्नी थी, कहीं नदी उथली थी, कहीं बहुत गहरी थी। दो छोटे बच्चे डुबकियां खाने लगे, उसकी पत्नी ने चिल्लाया कि दो बच्चे बहे जाते हैं, और डूबते हैं। तो पता है आपको गणितज्ञ ने क्या किया? गणितज्ञ भागा नदी के दूसरे किनारे की तरफ, जहां रेत पर उसने हिसाब किया था, यह देखने के लिए कि कहीं हिसाब में कोई भूल तो नहीं हो गई, नहीं तो बच्चे डूबेंगे कैसे? बच्चा डूबता था, उसे बचाने नहीं दौड़ा, उसके लिए ज्यादा अहम सवाल यह था कि गणित कहीं गलत तो नहीं। कहीं कोई भूल-चूक विधि में तो नहीं हो गई। अन्यथा बच्चे डूबेंगे कैसे? इस आदमी के पास मस्तिष्क तो है, लेकिन हृदय बिल्कुल भी नहीं। हृदय होता, तो बच्चे को बचाना पहली समस्या थी। गणित को ठीक कर लेना पहली समस्या नहीं थी। लेकिन जिनका भी मस्तिष्क प्रशिक्षित होगा, केवल मस्तिष्क और हृदय अनएजुकेटिड रह जाएगा, अशिक्षित रह जाएगा, उन सबके साथ यही भूल होगी। वे जीवन से तो वंचित हो जाएंगे, गणित में बहुत कुशल। उनकी गणित की कुशलता, बड़ी खतरनाक सिद्ध होगी। उनकी गणित की कुशलता मनुष्यों को नहीं देख पाएगी, अंकों को देखेगी।

मिलट्री में आदमी नहीं होते, अंक होते हैं। एक नंबर का आदमी, नंबर दो
का सिपाही, नंबर तीन का सिपाही, और जब दस सिपाही आज शाम को नहीं लौट पाते, तो ऐसी सूचना नहीं की जाती कि दस आदमी मर गए, दस अंक गिर गए, दस फिगर खो गई। नंबर दस का आदमी खो गया, तो वे कहते हैं, नंबर दस गिर गया। एक आदमी का मरना और नंबर दस के गिर जाने, इन दोनों बातों में बहुत फर्क है। नंबर दस अंक गणित का एक अंक है। और एक आदमी, एक जीवंत चेतना, जिसके अपने सपने होंगे, जिसकी अपनी आशाएं होंगी, जिसका अपना प्रेम होगा, जिसने दुनिया में न मालूम क्या-क्या करने की अभीप्साएं बांधी होंगी, वह ज्वलंत चेतना और गणित का एक अंक नंबर दस, इन दोनों में बहुत फर्क है। नंबर दस गिर जाता है, तो हमारे भीतर कोई भी पीड़ा नहीं उठती। हमारे हृदय की वीणा पर कहीं किसी तार को कोई चोट नहीं पहुंचती। नंबर दस गिर जाता है, बात खत्म हो जाती है। मिलिटरी में जीवन की जगह गणित को मूल्य दिया। शायद मिलिटरी ये मूल्य दे तो ठीक भी है, क्योंकि वहां जीवन का हिसाब नहीं, मृत्यु का हिसाब रखना है। लेकिन अगर पूरे जीवन में ही गणित बहुत महत्वपूर्ण हो जाए, और अनिवार्य हो जाए, तो बड़ी कठिनाई है। और हमारी शिक्षा यही कर रही है। हमारी सारी शिक्षा यही कर रही है। अपंग मनुष्य पैदा कर रही है, असंतुलित। जिसकी जिंदगी में कोई बैलेंस नहीं, कोई संतुलन नहीं, जिसका एक अंग विकसित था, बहुत बड़ा हो गया, और सारे अंग बहुत छोटे रह गए हैं। आदमी पैदा नहीं हो रहा, एक कार्टून पैदा हो रहा है। जिसके सारे अंग बहुत छोटे हैं, और एक अंग बहुत बड़ा हो गया, वह अंग कितना ही बड़ा हो जाए, और कितना ही प्रीतिकर हो, तब भी पूरे मनुष्य के व्यक्तित्व में उसका असंतुलन जीवन को नुकसान पहुंचा रहा है, जीवन के केंद्र पर जो निहित है उसकी दीक्षा, जीवन के केंद्र में जो छिपा है उसका प्रपोजल, जीवन के केंद्र में जो क्षमता है, उसको जगाने का वस्तुतः शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए।
क्राइस्ट एकझील के पास से एक बार निकले। सुबह थी, और झील पर मछुओं ने जाल फेंके थे, मछलियां पकड़ने को। एक युवा मछुआ भी झील पर जाल फेंके खड़ा था, क्राइस्ट ने उसके कंधे पर हाथ रखा और कहा, मेरे मित्र! कब तक मछलियां ही पकड़ते रहोगे? जीवन में और बड़ी चीजें भी पकड़ने को हैं या नहीं? शायद उस मछुए ने यह कभी सोचा भी नहीं था। जीवन मछलियां पकड़ना ही है। लौटकर उसने क्राइस्ट को देखा, इस आदमी की आंखों में कुछ जादू सा है। इस आदमी के व्यक्तित्व में कुछ बात थी, जो मछुए को छू गयी। उसने कहा, क्या कोई ऐसा सागर भी है, जहां हम जाल फेंके और मछलियों से बड़ी चीजें उपलब्ध हो जायें। क्या कोई ऐसा जाल भी है, जो जीवन की कुछ और बड़ी चीजों को पकड़ ले। ऊ ब तो मैं भी गया हूं, मछलियों को पकड़ते-पकड़ते। लेकिन न तो मुझे किसी ऐसे सागर का पता है, जहां मछलियों के अतिरिक्त कुछ और पकड़ा जा सके। और न मैं ऐसे जाल को जानता हूं, जिसमें मछलियों से बड़ा कुछ उलझाया जा सके। क्राइस्ट ने कहाः फेंक दे अपना जाल और आ मेरे पीछे। तुझे मैं बड़े सागरों के किनारे ले चलूं। और ऐसे जाल बुनूं जिसमें मछलियां तो क्या, परमात्मा पकड़ा जा सकता है। मछुआ हिम्मत का आदमी रहा होगी, उसने जाल फेंक दिया और क्राइस्ट के पीछे हो लिया। वे गांव के बाहर भी नहीं निकल पाए थे, कि एक आदमी ने दौड़ कर आकर खबर दी उस मछुए युवक को कि तेरा पिता जो बहुत दिन से बीमार था, अभी-अभी उसने प्राण छोड़ दिए। वापस लौट चल कहां जा रहा है? तुझे खोजता हुआ मैं झील पर गया था, वहां पता चला कि तू किसी आदमी के साथ किसी अज्ञात यात्रा पर निकल गया है, वापस लौट। पिता तेरे मर गए हैं। उस मछुए ने क्राइस्ट से कहाः क्षमा करें, मैं दो- दिन में पिता क ा अंतिम संस्कार करके, वापस लौट आऊं गा, मुझे आज्ञा दें कि मैं जाऊं।
पता है क्राइस्ट ने क्या कहा? क्राइस्ट ने कहाः लेट बी डेड, हेयर बी डेड, यू फॉलो मी। गांव में जो मुर्दे हैं, वे मुर्दे को दफना देंगे, तू मेरे पीछे आ। गांव में काफी मुर्दे हैं, इस मुर्दे को दफनाने के लिए। इसलिए तेरी कोई खास जरूरत नहीं है। बड़ी हैरानी की बात। उस युवक ने चलते राह में क्राइस्ट से पूछा कि क्या गांव में जो जिंदा हैं, उन लोगों को भी आप मुर्दा कहते हैं? क्राइस्ट ने कहाः निश्चित ही, जिसने अपने जीवन के केंद्र को नहीं जाना, वह केवल प्रतीत होता है कि जी रहा है, वह जीवित नहीं है। केवल

आभास है उसका कि मैं जी रहा हूं, जीवन का अभी उससे कोई परिचय नहीं है। सिर्फ ढोंग है कि मैं जी रहा हूं। हम जन्मते हैं, और मरते हैं, इस बीच के काल को हम जीवन का काल समझ लेते हैं। बस इतना ही जीवन काफी है, दो छोरों के बीच में, जन्म और मृत्यु के बीच में जो समय बीता, वही जीवन है? अगर वही जीवन है, तब तो बड़े आश्चर्य की बात है, सच तो यह है कि जन्म और मृत्यु के बीच में जो समय बीतता है, उसका जीवन से कोई भी संबंध नहीं। जन्म और मृत्यु के बीच का समय, केवल रोज-रोज मरते जाने की प्रक्रिया का समय है, जीवन का नहीं। एक ग्रेजुअल डेथ है, जो जन्म से शुरु होती है, मृत्यु पर पूरी हो जाती है। हम रोज-रोज धीरे-धीरे मरते जाते हैं, इसी को हम जीवन समझ लेते हैं। एक घड़ी भर नया बिता देंगे, एक घड़ी भर और मर जायेंगे। मरना कोई आकस्मिक बात तो नहीं है कि किसी भी एक दिन आप मर जाएंगे, मैं मर जाऊंगा, मर जाना एक लंबी प्रोसेस है, एक लंबी प्रक्रिया है। रोज-रोज हम मरते हैं, इसलिए एक दिन हम मर जाते हैं। रोज हमारे भीतर कुछ मरता जाता है, मरता जाता है। एक दिन यह मरना पूरा हो जाता है। और हम कहते हैं मृत्यु आ गई। जिसे हम जीवन कहते हैं, वह केवल एक मरने की प्रक्रिया से ज्यादा नहीं है। और सच है यह बात अगर यह जीवन होता, तो मृत्यु कैसे आ सकती थी? जीवन की भी और मृत्यु हो सकती है! जीवन और मृत्यु तो बड़ी विरोधी बातें हैं, इनका क्या संबंध? जीवन की भी मृत्यु हो सकती है? मरने की प्रक्रिया का अंत मृत्यु में हो सकता है, लेकिन जीवन की प्रक्रिया का अंत मृत्यु में कैसे होगा? जीवन के रास्ते पर हम चलेंगे तो अंत में परम जीवन उपलब्ध होना चाहिए। मृत्यु के रास्ते पर हम चलेंगे, तो अंत में मृत्यु आएगी। जो अंत में आता है, उसी से तो पहचाना जाता है।
एक बीज हम बोते हैं और कड़ुवे फल लगते हैं, तो क्या हम नहीं समझ पाएंगे
कि जो कड़वे फल लगे वे बीज में ही छिपे थे? जो फल की तरह प्रकट हुआ, वह बीज में मौजूद रहा होगा। अन्यथा फल में प्रकट कैसे होता? मौत का फल लगता है, जिसे हम जीवन कहते हैं उसमें। तो क्या यह थोड़ी सी समझ न होगी, जिसे हमने जन्म कहा, उस जन्म के बीज में ही मौत छिपी रही होगी। धीरे-धीरे प्रकट हुई। मैनीफ्रेस्टेशन हुआ। लेकिन मौजूद तो रही होगी, जन्म में ही अगर मौत मौजूद न हो, तो अंत में प्रकट कैसे हो जाएगी? आ कैसे जाएगी? मौत कहीं आसमान से नहीं आती है। वृक्ष में लगे फल भी कहीं आसमान से नहीं आते हैं। एक कॉजनमेंट है, एक वैज्ञानिक संबंध है भीतर कार्य कारण का। बीज में छिपा रहता है, वृक्ष। वृक्ष में छिपे रहते हैं, फल। जन्म में छिपी रहती है, मृत्यु। जन्म मृत्यु का अप्रकट रूप है। ये तो जीवन नहीं है, और हम इसी के संबंध में इसी को बचाने की व्यस्तता में आजीविका की खोज करते हैं, और हमारी सारी शिक्षा आजीविका की ट्रेनिंग से ज्यादा नहीं है। आजीविका की शिक्षा में हम बचाते हैं, उस जीवन की रक्षा करते हैं जो जीवन ही नहीं है। तो स्वाभाविक है कि जमीन मुर्दों की एक बस्ती बनती चली जाए। स्वाभाविक है, लोग चलते-फिरते मालूम होते हों, लेकिन जीवन की कोई पुलक, कोई आनंद, कोई संगीत उनके भीतर दिखाई न पड़े। स्वाभाविक है कि लोग चलते-फिरते हों, उठते हों, बोलते हों, लेकिन भीतर जीवन का कोई नृत्य उनके पास न हो। उदास, मरे हुए, प्रतीक्षा करते हों अंतिम दिन की कि कब छुटकारा हो जाए। और रोते हों महल पर, और मंदिरों में प्रार्थना करते हों कि हे परमात्मा! आवागमन से छुट्टी दिलाओ। तपश्चर्या करते हों, उपवास करते हों कि आवागमन से मुक्ति मिले, जीवन को जिन्होंने नहीं जाना, स्वाभाविक है कि वे जीवन से ही छूट जाने की कामना करते हों। सारी दुनिया में धर्मों ने एक सोसाइडल रुख अपना लिया है। सारी दुनिया के धर्मों ने एक आत्महत्या का रुख अपना लिया है। और वह सभी को अपील भी करती है बात, क्योंकि सभी लोग सोचते हैं मर जाना ही उचित है, बजाय जीने से। क्योंकि जीने का तो कोई पता ही नहीं है।
रवींद्रनाथ ने मरने के दो दिन पहले एक गीत लिखा था, और गीत में कहा था,
हे पिता! हे परमात्मा! तुझे धन्यवाद देता हूं कि तूने मुझे अपार कृपा दी, जीवन को जानने का मौका दिया, और प्रार्थना करता हूं, बार-बार मुझे जीवन में भेज देना, तेरा जीवन बहुत सुंदर था, बहुत अमृत; तेरे जीवन में बहुत आनंद था, तेरे जीवन में बहुत सुवास थी, और अगर मैं उसे न जान सका हूं, तो भूल मेरी थी, तेरे जीवन का कोई कसूर न था। अगर उस जीवन से मैं परिचित न हो सका हूं, तो

अंधा मैं था, तेरे सूरज का कोई कसूर नहीं। अगर उस संगीत को मैं नहीं सुन पाया हूं जो तेरा जीवन था, तो बहरा मैं था, तेरे संगीत की कोई भूल नहीं। जीवन को जो जानने की खोज में गहरा होगा, वह एक ग्रेटीट्यूड, एक धन्यता अनुभव करेगा। जीवन से चूक जाने के पागलपन की बात नहीं है, बल्कि जीवन में और गहरे उतर जाने की, जीवन को पूरे प्राणों से उपलब्ध कर लेने की अभीप्सा का उसमें जन्म होगा। वह एक प्यास से भर जाएगा कि जीवन की समग्रता को कैसे उपलब्ध हो जाए?
मेरी दृष्टि में सम्यक शिक्षा, जिसे राइट एजुकेशन कहें, वह जीवन की दिशा में कदमों को उठाने के लिए प्रेरणा देगी, प्यास से भरेगी। वह भरेगी इस प्यास से कि हम जन्म और मृत्यु के बीच के काल को ही जीवन न समझ लें, जीवन इतने ऊ पर नहीं और थोड़े गहरे में है। और जहां जीवन है, वहां मृत्यु का कोई भी पता नहीं।
एक फकीर था, हुनजाई। उससे किसी ने जाकर पूछा कि मुझे मृत्यु के संबंध में और जीवन के संबंध में कुछ बताओ। उस फकीर ने कहाः अगर जीवन के संबंध में समझना हो तो आना मेरे पास, और अगर मौत के संबंध में समझना है, तो किसी और के पास जाना। जहां मैं हूं वहां मृत्यु का कोई अस्तित्व ही नहीं है। मृत्यु के संबंध में समझना हो, तो किसी और से समझ लेना, मृत्यु से मेरा कोई परिचय नहीं है। और जीवन को समझना हो तो आ जाना मेरे पास। ऐसे जीवन को हम जानते हैं? अगर हम ठीक से खोजेंगे तो पायेंगे कि मृत्यु से हमारा थोड़ा-बहुत परिचय है, जीवन से हमारा कोई भी परिचय नहीं। रोज किसी को मरते हम देखते हैं, रोज कोई मिट जाता है, कोई विलीन हो जाता है। मृत्यु को तो हम पहचानते हैं, लेकिन जीवन को न हम उसे बाहर पहचानते हैं, न भीतर। जिस दिन हम जीवन को पहचान लेंगे, उस दिन मृत्यु है ही नहीं। इसलिए इसको एक कसौटी, एक मापदंड समझ लेना। जब तक मृत्यु दिखाई पड़ती हो जमीन पर कहीं भी, तब तक ठीक से जान लेना कि अभी जीवन का मुझे पता नहीं। जिस दिन जीवन दिखाई पड़ेगा, उस दिन मृत्यु... मृत्यु बिल्कुल भी नहीं है।
एक बार जाकर अंधेरे से भगवान से यह प्रार्थना की थी कि तुम्हारा सूरज मुझे बहुत परेशान किए रहता है। सुबह से निकल कर मेरे पीछे पड़ जाता है और सांझ थका डालता है मुझे भगा-भगा कर। मैंने उसका कुछ बिगाड़ा नहीं, क्यों मेरे पीछे पड़ा है? और रात में विश्राम भी नहीं कर पाता दिन भर की थकान के बाद मैं, सुबह फिर मौजूद हो जाता है। स्वभावतः शिकायत उचित थी, और भगवान ने सूरज को बुलाया होगा। और सूरज से कहा तुम क्यों अंधेरे के पीछे पड़े हो? क्यों नाहक उसे परेशान किए हो? सूरज ने कहा, कैसा अंधेरा? मेरा उससे कोई परिचय ही नहीं है। अब तक मैंने अंधेरे को देखा भी नहीं है। मेरी कोई मुलाकात भी नहीं हुई। शत्रुता का सवाल नहीं है। आप कृपा करें और अंधेरे को मेरे सामने बुला दें, मैं उससे माफी मांग लूंगा और आगे के लिए सचेत हो जाऊंगा कि इसका पिछा नहीं करना है। इस बात को हुए बहुत वर्ष बीत गए हैं, हजारों-करोड़ों, भगवान अभी तक कोशिश करे अंधेरे को सूरज के सामने नहीं ला सके हैं। और आगे भी नहीं ला सकेंगे, यह मामला फाइल में ही रखा रह जाएगा। ये कभी हल होने वाला नहीं है। सूरज के सामने अंधेरे को कैसे लाया जा सकता है? जीवन के सामने मौत को कैसे लाया जा सकता है? इस बात को अगर हम समझेंगे तो एक बहुत सीक्रेट सामने आ जाएगा, सूरज के सामने अंधेरे को क्यों नहीं लाया जा सकता? जीवन के सामने मौत को क्यों नहीं खड़ा किया जा सकता? अगर अंधेरा होता, तो सूरज के सामने भी लाया जा सकता था। अगर उसका कोई पाजिटिव एक्झिस्टेंस होता। अगर अंधेरे की कोई सत्ता होती, उसका कोई अस्तित्व होता, तो सूरज के सामने हम उसे क्यों नहीं ला सकते थे? बराबर ला सकते थे। लेकिन अंधेरे की कोई सत्ता ही नहीं। अंधेरा है ही नहीं। अंधेरा केवल एब्सेंस है प्रकाश की। अंधेरा कोई प्रेजेंस नहीं है, किसी चीज की मौजूदगी नहीं है अंधेरा। अंधेरा केवल गैर मौजूदगी है। इसलिए आप चाहें कि इस कमरे में अंधेरा भरा है, तो हम टोकरी में भर कर बाहर फेंक दें, तो नहीं फेंक सकते। और आप चाहें कि फलां आदमी हमारा दुश्मन है, चलो उसके घर में अंधेरा लाकर डाल दें, तो नहीं डाल सकते। अंधेरे को आप न ला सकते हैं, न ले जा सकते हैं। अंधेरा होता तो जरूर हम लाने ले जाने का कोई उपाय खोज लेते, लेकिन वह

है ही नहीं। प्रकाश की गैर-मौजूदगी का नाम अंधेरा है। इसलिए अगर अंधेरा भरा है, तो अंधेरे के साथ हम कुछ भी नहीं कर सकते, लेकिन अगर हम दिया जला लें, तो अंधेरा नहीं है। दिया बुझा दें, अंधेरा है। दिया जला लें, अंधेरा नहीं है। तो अंधेरा क्या है? अंधेरा केवल दिए की गैर मौजूदगी। दिए की एब्सेंस।
जीवन के सामने मृत्यु को भी नहीं लाया जा सकता। अगर मृत्यु कुछ होती
तो जीवन के सामने लाई जा सकती, मृत्यु भी जीवन की अनुपस्थिति का नाम है, जिसे जीवन का अनुभव नहीं होगा, उसे मृत्यु दिखाई पड़ती रहती है। जिसके पास रोशनी नहीं होती, उसके आस-पास अंधेरा होता है। और दो में से एक ही चीज एक जगह रह सकती है, दोनों चीजें एक जगह नहीं रह सकती। जो जीवन को जान लेगा, उसके लिए फिर कोई मृत्यु नहीं है। और जो मृत्यु को ही जानता रहता है, उसके पास जीवन की ज्योति नहीं है।
शिक्षा को, जीवन रूपी ज्योति को जगाना, उसे प्रज्वलित करना, उसके अनुभव में ले जाने का मार्ग होना चाहिए। जिस दिन शिक्षा जीवन को जगाने वाली, जीवन को उठाने वाली, जीवन को मुक्त करने वाली, प्रक्रिया होगी; जिस दिन शिक्षा का मंदिर जीवन का मंदिर भी होगा, उस दिन हम शिक्षित मनुष्य को पैदा कर सकेंगे, उसके पहले नहीं। और जिस दिन हमने वैसे मनुष्य को पैदा करना शुरु कर दिया, उस दिन सारी जमीन पर एक क्रांति हो जाएगी। जमीन पर फिर युद्ध का कोई स्थान नहीं रह जाएगा। हिंसा की कोई जगह नहीं रह जाएगी। घृणा और द्वेष के लिए कोई रिक्तता नहीं रह जाएगी, जहां वो भर जायें। मरे हुए लोग, दूसरों को मारने को निरंतर उत्सुक होते हैं। इससे पैदा होते हैं युद्ध, जीवित लोग दूसरे को जिलाने के लिए आतुर होंगे और जीवन एक अदभुत स्वर्ग बन सकता है।
वह भटक रहा है, खोज रहा है मार्ग, जब नहीं मार्ग मिला, तो उसने स्वर्ग में, आकाश में बना लिए अपने स्वर्ग। आकांक्षा तो ये थी कि जमीन पर स्वर्ग बन जाए, जब हम नहीं हम बना सके जमीन पर स्वर्ग, तो हमने एक कंसोलेशन खोज लिया, आकाश में बना लिए अपने स्वर्ग। ये आदमी जमीन पर असफल हो गया, इसलिए सपने में स्वर्ग देखने लगा। हम सबको पता है, जिस बात को हम जिदंगी में नहीं पा पाते, उसे हम सपने में उपलब्ध कर लेते हैं। जिस बड़े महल को हम जिदंगी में नहीं बना पाते, रात सपने में उसे बना लेते हैं। जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे जीवन में नहीं उपलब्ध कर पाते, रात सपने में हम उसे उपलब्ध कर लेते हैं। दिन भर भूखे मरते हैं, रात बड़े भोजन, रात भोजन में तृप्त हो जाते हैं। जो वास्तविकता में नहीं मिलता, उसका हम सपना पैदा कर लेते हैं। स्वर्ग मनुष्य ने बनाना चाहा था जमीन पर, आज भी हमारे मन में आकांक्षा है, लेकिन असफल हो गए, इसलिए हमने उसे आकश में बादलों के पार बनाया। जिस दिन भी हम जीवन में दीक्षा देने वाली शिक्षा के विकास को, उसके यंत्र को, उसकी गति को सुव्यवस्थित कर लेंगे, उसी दिन आकाश में स्वर्ग बनाने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। जमीन पर और इसी जमीन पर एक अदभुत जीवन की ऊर्जा प्रकट हो सकती है। इसको शिक्षा इसीलिए नहीं कह पाता हूं, कि शिक्षित मनुष्य ने तो जमीन को एक नर्क बना दिया है, स्वर्ग नहीं। लेकिन हम मार्ग खोज सकते हैं, हम राह खोज सकते हैं, मनुष्य के पास सारे उपकरण मौजूद हैं, पर आज हमारी हालत वैसी ही है, जैसे एक मंदिर में...
मैंने सुना है, एक बहुत पुरानी वीणा रखी हुई थी। उस वीणा को बजाने वाला उस मंदिर में कोई भी नहीं था। कभी कोई बच्चे मंदिर में आ जाते थे, बड़ों के साथ, तो कोई बच्चा उसके तारों को छेड़ देता था, और विकृत झनकार उस मंदिर में गूंज जाती और पुरोहित डांट देता था, छुओ मत वीणा को शोरगुल मत करो, कभी कोई कीड़ा चढ़ जाता था वीणा पर और आवाज गूंज जाती थी, कभी कोई किताब गिर जाती थी वीणा पर और आवाज गूंज जाती थी। बस इतना ही उस वीणा का उपयोग था। फिर एक दिन एक आदमी उस मंदिर में पूजा चलती थी, उस मंदिर के पुजारी पूजा में थे और एक आदमी चुपचाप उस मंदिर में प्रविष्ट हुआ, उस वीणा के पास गया और उसने उसके तारों को छुआ। पूजा बंद हो गई, मंत्र गान चुप हो गए, मोह मुग्ध हो गए, कितने घंटों तक वह आदमी उस वीणा को बजाता रहा, वह मंदिर एक स्वर्ग हो गया। उसके पुरोहित ने उस आदमी के पैर छुए और कहाः अब तक तो हम

यही सोचते थे कि यह वीणा एक उपद्रव का कारण है, ये यहां रखी है, पुरातन से रखी है, इसे हम अलग भी नहीं कर सकते, पीढ़ियों से यहां है... तक दे दीं, पर इसे रखा रहने दिया। लेकिन जब कोई इसे छेड़ देता है, मंदिर में, पूरी ध्वनिंया गूंज जाती हैं, शांति खंडित हो जाती है। कई बार हमने यह फैसला भी लेना चाहा, इस वीणा को हटा दें यहां से, लेकिन कुछ लोग इसके विरोध में थे और वीणा बनी रही। और हमें पता भी न था कि कभी कोई आएगा, और इस वीणा से संगीत भी पैदा हो सकता है। इस वीणा से वो स्वर भी निकल सकते हैं, जो जीवन को आनंदित कर दें।
मनुष्य के मंदिर में भी उसके हृदय की वीणा वर्षों-वर्षों से ऐसी ही रखी है, उसे बजाने की चपलता, उसे बजाने की कला, शायद हमें पता नहीं। शिक्षा उस कला का मार्ग हो सकती है। और जिस दिन शिक्षा मनुष्य के हृदय की वीणा को बजाना सिखा सकेगी, उस दिन जीवन एक नये अर्थ को, एक नई अभिधारणा को ले लेगा। उस दिन की प्रतीक्षा करनी काफी नहीं है, उस दिन के लिए श्रम भी करना होगा। कौन करेगा यह श्रम? जो लोग बूढ़े हो गए हैं, शायद वे नहीं कर सकेंगे, तुम्हारे शिक्षक, तुम्हारे अभिभावक, शायद वे भी नहीं कर सकेंगे? तुम्हीं को, नई पीढ़ियों को, नये युवकों को, नई युवतियों को खोजना होगा जीवन का मार्ग और एक क्रांति लानी होगी।
मैंने ये थोड़ी सी बातें कहीं, ये बातें अधूरी हैं, मैं इतना ही कह पाया
कि जीवन की वीणा को बजाने का अब तक शिक्षा ने कोई मार्ग नहीं खोजा है, लेकिन अगर यह बात भी आपके खयाल में आ सकी होगी, तो शायद चिंतन पैदा हो। संध्या मैं जो बात करूंगा, आज इसी संबंध में करनी थी, करने का मेरा खयाल है कि जीवन की वीणा को बजाने का क्या विज्ञान है। तो मैं विद्यार्थियों से निवेदन करूंगा सांझ की बात को सुबह की बात से वे जोड़ लेंगे, शायद उनके मन में कोई खयाल पैदा हो सके, जो मार्ग बन जाए।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुग्रहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सम्यक शिक्षा
दूसरा प्रवचन

अकंप चित्तता

मैं एक छोटी सी कहानी से आज की अपनी चर्चा शुरू करना चाहूंगा।
कोई पच्चीस सौ वर्ष पहले की बात है, एक राजधानी में एक बहुत ही गरीब चमार की झोपड़ी के पास बिना मौसम के कमल का फूल खिल आया था। कमल के फूल के वे दिन न थे। असमय में उस फूल को खिला देख कर उस चमार ने सोचा मेरे भाग्य हैं, जाऊं बाजार में, बहुत ज्यादा पैसे इस फूल के मुझे मिल सकेंगे। वह फूल को लेकर सुबह ही नगर के बड़े बाजार की तरफ चल पड़ा। रास्ते में उसे हैरानी हुई, नगर के सारे धनपति, सारे बड़े लोग, नगर के बाहर अपने-अपने रथों में जा रहे थे। नगर का सबसे बड़ा धनपति अपने रथ को रोक कर रुका, और उसने कहा कि इस फूल के कितने पैसे तुम चाहोगे? जो भी तुम कहोगे मैं दाम दे दूंगा। ये फूल मुझे दे दो। यह बात चलती ही थी, कि पीछे से राजा का रथ भी आकर रुक गया। और उसने कहा फूल बचेना मत। धनपति जितना देगा, उससे सौ गुना ज्यादा देने का मैं तुझे विश्वास दिलाता हूं। वह गरीब आदमी बहुत हैरान हो गया। उसकी कल्पना के बाहर थी यह बात, एक फूल के लिए इतना पैसा मिल सकेगा! उसने राजा को पूछा क्या कारण है, इस फूल को खरीदने के लिए इतने पैसे देने का। राजा एक हजार स्वर्ण-मुद्राएं उसे भेंट करना चाहता था, उस फूल के लिए।
उस गरीब आदमी ने पूछा कि इस फूल के इतने दाम देने का क्या कारण है? उस राजा ने कहा, गांव में बुद्ध का आगमन हुआ है, मैं उनके ही दर्शन को जाता हूं, ये सारे लोग उनके ही स्वागत को जा रहे हैं। ये फूल मैं अपने हाथ से उन्हें भेंट करना चाहूंगा। और असमय के कमल के फूल को देख कर वे निश्चित प्रसन्न होंगे। उसने हजार स्वर्ण-मुद्राएं उसकी तरफ बढ़ाईं, उस चमार ने कहा कि नहीं। शायद राजा ने सोचा कि हजार में देने को वह राजी नहीं। उसने कहा तू जितना मांगेगा, मुंह मांगा तुझे पैसे हम देंगे। लेकिन उस चमार ने कहा, नहीं। जब ऐसी बात है तो मैं भी जाता हूं, मैं ही इस फूल को बुद्ध को समर्पित कर दूंगा। राजा हैरान हो गया। एक गरीब की इतनी सामर्थ्य देख कर। इतना साहस देख कर। उस गरीब आदमी के फूल को वह न खरीद सका। उसने बहुत प्रलोभन दिए, वह गरीब आदमी उस फूल को लेकर बुद्ध के चरणों में रख आया। उसके पहले ही राजा का रथ पहुंच गया था। ओर राजा ने यह बात कही थी कि आज मैं एक गरीब आदमी से हार कर आया हूं। मैंने सब कुछ उसे देना चाहा, लेकिन नहीं वह कुछ भी लेने को राजी हुआ, और यह फूल जो आपके चरणों में खुद ही उसने चढ़ा देना चाहा है। जब वह चमार आया, उसने फूल बुद्ध के चरणों में रखा तो बुद्ध ने उससे पूछा, तू कैसा पागल है? राजा जब मुंह मांगी कीमत देने को तैयार था, तो एक गरीब आदमी होकर तूने यह काहे को व्यर्थ का उपक्रम किया? फूल मुझे क्यों चढ़ाया। उस गरीब आदमी की आंखें खुशी के आंसुओं से भरी थीं। उसने कहा, जब और भी बड़ा मूल्य मुझे फूल का मिल सकता था, आपके चरणों में चढ़ाने का मूल्य, तो मैं उसे पैसों में बेचने को राजी नहीं हुआ।
बुद्ध ने भिक्षुओं से कहाः एक शिक्षित मनुष्य को देखो। एक भिक्षु ने पूछा, क्यों इसे शिक्षित कह रहे हैं? तो बुद्ध ने कहाः जिसे उच्चतर मूल्यों का बोध है, वही शिक्षित है। जीवन में हायर वैल्यूज का, उच्चतर मूल्यों का जिसे बोध है, वही शिक्षित है। यह दरिद्र आदमी, बहुत शिक्षित व्यक्ति है। यह पैसों को छोड़ सका, प्रेम के लिए। यह धन को छोड़ सका, सम्मान के लिए। इसने बहुत बड़े साहस का काम किया है, जो केवल शिक्षित व्यक्ति ही कर सकता है।
इस छोटी सी कहानी से इसलिए मैं अपनी बात शुरु करना चाहता हूं, ताकि मैं तुम्हें कह सकूं कि शिक्षा क्या है? शिक्षा है जीवन में उच्चतर मूल्यों का बोध। जीवन में बहुत तरह के मूल्य हैं, बहुत ग्रेडेशंस हैं, बहुत वैल्यूज हैं, बहुत मूल्य हैं; जो निम्नतम मूल्यों से जीवन में तृप्त हो जाता है, वह अशिक्षित है। उसे कोई संस्कार नहीं मिला, उसे कोई संस्कृति नहीं मिली। उसकी आंखें ऊपर नहीं उठ सकीं, वह जमीन पर ही रह गया, वह आकाश के तारों की तरफ आंखें नहीं उठा पाया। जीवन में बहुत सीढ़ियां हैं, नीचे

सीढ़ियां हैं और दूर आकाश तक, या कहें कि परमात्मा तक सीढ़ियां हैं। कौन किस सीढ़ी पर रुक जाता है, वह उसी अर्थों में उतना ही शिक्षित या अशिक्षित है। शायद धन सबसे छोटी सीढ़ी है। और धर्म सबसे बड़ी सीढ़ी है। लेकिन हम में से अधिक लोग धन पर रुक जाते हैं। तो मैं न कह सकूंगा कि वे लोग शिक्षित हैं, जो धन पर रुक जाते हों। हमारे जीवन में शरीर शायद सबसे छोटा मूल्य है, आत्मा सबसे बड़ा मूल्य। लेकिन हम में से अधिक लोग शरीर पर ही रुक जाते हैं। उनको मैं न कह सकूंगा कि वे शिक्षित हैं। इसलिए न कह सकूंगा कि वे हीरों को खोकर कंकड़-पत्थरों को जीवन में बीनने की भूल कर रहे हैं। कैसे हम कह सकेंगे कि वे ज्ञान को उपलब्ध हुए हैं, समझ, अंडरस्टैंडिंग उनमें पैदा हुई है? कैसे हम कह सकेंगे कि उनके जीवन में अंतर्दृष्टि आई है? ताकि वे आनंद को खोज सकें, जीवन है आनंद की खोज। और आनंद उतना ही गहरा होता चला जाता है, जितने उच्चतर मूल्यों पर हम उसे स्वीकार करते हैं। जितने निम्नतम होते हैं मूल्य नीचे धरती के उतना ही जीवन आनंद से रिक्त और खाली रह जाता है। किसे हम शिक्षित कहें, मेरी दृष्टि में ठीक से शिक्षित व्यक्ति ही धार्मिक व्यक्ति है। क्योंकि धर्म का और कोई अर्थ और कोई प्रयोजन नहीं है। धर्म भी एक शिक्षा है जीवन में निरंतर जो श्रेष्ठतर है उसके खोज की। जीवन में निरंतर जो गहरे से गहरा है उसके अनुसंधान की। जीवन वहीं समाप्त नहीं हो जाता है, जहां हमारी आंखें उसे देखती हैं, जीवन उससे बहुत ज्यादा गहरा है। जीवन वहीं समाप्त नहीं हो जाता, जहां हमारे हाथ उसका स्पर्श करते हैं; बहुत गहरा है जीवन उससे। लेकिन जिसे हम आज शिक्षा कहते हैं, जगत में, वह तो हमें जीवन के उच्चतर मूल्यों की तरफ ले जाती हुई नहीं मालूम होती। वह तो हमें जीवन के और निम्नतम मूल्यों की तरफ ले जाती हुई प्रतीत होती है। और ऐसा दुर्भाग्य मालूम होता है कि वे दिन जब कि मनुष्यता अशिक्षित और असभ्य थी, आज के दिन शायद उससे ज्यादा गहरे और उच्चतर मूल्यों के दिन थे। यह हैरानी की बात है। शिक्षा बढ़ती है जगत में, तो मूल्य हमारे ऊंचे से ऊंचे होते चले जाने चाहिए, लेकिन शिक्षा बढ़ रही है एक तरफ हर आदमी आज नहीं कल शिक्षित हो जाएगा, जमीन पर शायद कोई भी अशिक्षित नहीं होगा! लेकिन हमारे जीवन के मूल्य तो और नीचे से नीचे होते चले जाते हैं। कोई भूल होगी इस शिक्षा में, कोई बुनियादी भूल होगी। शायद इसीलिए हम मनुष्य को व्यवस्थित नहीं कर पा रहे हैं। इधर पिछले पचास वर्षों में दो बड़े महायुद्ध हुए, क्या शिक्षित संसार को, क्या शिक्षित संस्कार को, शिक्षित मनुष्य को शर्म से नहीं भर जाना चाहिए? आदमी की हत्या के इतने विराट आयोजन, कौन कर रहा है? आदमी के विनाश की इतनी व्यवस्था किसके चित्त से पैदा हो रही है?
जिस रात हिरोशिमा पर एटम बम गिराया गया, जिस आदमी ने एटम बम गिराया, वह
एक शिक्षित व्यक्ति था। उसके पास किसी विश्वविद्यालय की उच्चतम डिग्री थी, वह एटम गिरा कर दूसरे दिन सुबह उससे पूछा गया कि तुम्हें खयाल नहीं आया, कि तुम्हारा एटम गिराना एक लाख लोगों की हत्या बनेगी? उस आदमी ने कहाः खयाल का कोई सवाल नहीं है, मुझे आज्ञा दी गई, और मैंने काम किया। इस आदमी को हम आदमी कहेंगे, उचित होता कि यह आदमी आज्ञा को इनकार कर देता और अपने प्राणों को खो देता, ज्यादा से ज्यादा आज्ञा के इनकार करने पर। लेकिन शायद इसके जीवन में कोई और वृहत्तर मूल्य का कोई खयाल नहीं है, उससे किसी ने पूछा रात तुम ठीक से सोए? उस आदमी ने कहाः ठीक से सोया। बहुत गहरी नींद आई। एक लाख लोग धू-धू करके आग में जलते थे, और जो आदमी बम गिराया था वह शांति से रात भर सोया। इसको हम मनुष्य कह सकें गे?
मेरे एक मित्र हैं, बचपन की अपनी एक घटना मुझे बताते थे। उनकी मां सीढ़ियों पर से गिर पड़ी थीं, बेहोश हो गई थीं, सिर से खून बह रहा था। तो उनके पिता ने उन्हें दौड़ाया कि पड़ोस में जो डाक्टर है, उसे बुला ला। उस डाक्टर के पास गए, उस डाक्टर के पास जब वे पहुंचे, तो उसने अपने हाथ में चाय की प्याली ली ही थी, पीने को। उन्होंने कहा मेरी मां बेहोश पड़ी है। पड़ोस में ही, दो-चार घर के बाद। उसके सिर से खून बह रहा है, वह बहुत जोर से गिर पड़ी है। आप चलें। उस डाक्टर ने कहाः पहले मैं चाय पी लूं, अन्यथा चाय ठंडी हो जाएगी, फिर मैं आता हूं। वह बच्चा वापस लौट कर गया, उसने अपने पिता को कहा कि वह डाक्टर चाय पीता है। वह चाय पूरी पी ले तो आए। तो उसके पिता ने कहा कि

वह डाक्टर फिर आदमी नहीं है। अगर उसकी मां गिर पड़ी होती सीढ़ियों से, और उसके सिर से खून बहता होता, और मरने के करीब होती; तो क्या वह यह कहता कि मैं पहले चाय पी लूं और फिर आता हूं? नहीं वह आदमी डाक्टर भला होगा, लेकिन आदमी नहीं है। आदमीयत के कुछ मूल्य हैं। आदमीयत की कुछ गहराइयां हैं। आदमी हो जाना, आदमी की शक्ल को पा लेने से ही पूरा नहीं हो जाता।
हिरोशिमा पर जो आदमी एटम गिराए, वह कहे कि मैं रात शांति से सोया। इसको हम इसके भीतर कोई हृदय है या पत्थर? और ये शिक्षित आदमी है। और विश्वविद्यालयों ने इसे उपाधियां दी हैं। कुछ भूल होगी उन उपाधियों में कोई कमी होगी।
एक बहुत पुरानी घटना मुझे स्मरण आती है। कोई दो हजार वर्ष पहले की बात है। एक गुरुकुल से तीन विद्यार्थी अपनी समग्र शिक्षा पूरी करके वापस लौटते थे, घरों को। गुरु निरंतर उनसे कहता रहा था कि तुम्हारी सब परीक्षा पूरी हो गई, लेकिन एक परीक्षा बाकी रह गई है। लेकिन अंतिम दिन भी आ गया, विदा का। दीक्षा का सब अंतिम समारंभ भी हो गया, दीक्षांत भी हो गया, उन्हें उनके प्रमाण पत्र भी दे दिए गए, और वे तीनों हैरान थे और चकित थे कि एक परीक्षा गुरु कहता था, वह अब तक पूरी नहीं हुई, क्या वह बिना पूरे हुए ही हमें चला जाना होगा? और सांझ भी आ गई और वे गुरु के पैर छूकर चल भी दिए अपने मार्ग पर। सूरज डूब रहा था, उन्हें जल्दी ही जंगल को पार करके अपने गांव पहुंच जाना था। डूबते सूरज में, पगडंडी को पार करते वक्त, एक घनी झाड़ी के पास देखा उन्होंने रास्ते पर बहुत कांटे पड़े हैं। एक युवक छलांग लगा कर निकल गया, दूसरा कांटों से दूर हट कर पगडंडी से नीचे उतर कर पार हो गया। लेकिन तीसरा बैठ गया अपने सामान को रख कर, उसने कांटे बीने, झाड़ी में डाले। वे दो कहे गए उससे कि पागल रात हुई आती है, अंधेरा हुआ जाता है, जल्दी चलो, उस युवक ने कहा, अंधेरा उतर रहा है, रात होने को है इसीलिए कांटे अलग कर देने जरूरी हैं, हमें तो वे दिखाई पड़ते हैं, लेकिन हमारे पीछे जो आता होगा उसे वे दिखाई न पड़ सकेंगे। और हैरान हो गए वे ये कि झाड़ी के भीतर से निकल आया उनका गुरु। जिसने वे कांटे डाले थे, जो छिपा था। उसने कहा ये तुम्हारी अंतिम परीक्षा थी, दो असफल हो गए। तुम वापस लौट आओ। जिसने कांटे बीने हैं, वह जा सकता है, लेकिन तुम दो अभी एक वर्ष और रुक जाओ। तुम्हारी शिक्षा पूरी हो गई, लेकिन तुममें आदमियत पैदा नहीं हो सकी। तुम अभी आदमी नहीं बन सके हो।
शिक्षा केवल कुछ ज्ञान को इकट्ठा और अर्जित कर लेना ही नहीं है, शिक्षा है भीतर जो सोया मनुष्य है उसे जगा पाना। भीतर जो हमारा जीवन है, उसे प्रबुद्ध कर पाना। और यह कौन करेगा, और कैसे यह होगा? यह जो भीतर छिपा है मनुष्य, इतनी घृणा और इतने क्रोध से भरा है, इतने वैमनस्य से, इतनी शत्रुता से, और इसे हम ऐसा ही विश्वविद्यालय से निकल जाने देते हैं, जैसा यह आया था, बल्कि अक्सर तो और भी बुरा होकर निकलता है।
इमर्सन ने एक युवक के स्वागत समारोह में कहा था, वह उस गांव का पहला स्नातक था, पहला ग्रेजुएट था। इमर्सन ने उसके स्वागत में कहा था कि मैं स्वागत करता हूं युवक का। यह बहुत अदभुत है, यह विश्वविद्यालय से बिना बिगड़े हुए घर वापस आ गया है। अगर यह स्वागत की बात हो, तो शेष सारे विद्यार्थियों के लिए हम क्या कहेंगे? मुझे भी यही दिखाई पड़ता है, क्योंकि जीवन के बहुत गहरे में हमारी शिक्षा का कोई संपर्क नहीं है। पच्चीस वर्ष युवक खो देता हो, शिक्षालयों में और पच्चीस वर्ष के बाद घर लौट आता हो, और उसके जीवन से घृणा विलीन न होती हो, क्रोध अंत न होता हो, वैमनस्य समाप्त न होता हो, ईर्ष्या अंत न पाती हो, तो ये पच्चीस वर्षों में वह क्या लेकर घर आ गया है? आजीविका कमाने के उपाय। एक प्रमाणपत्र जो उसे नौकरी दे सकेगा। जिससे लिविंग मिल सकेगी, आजीविका मिल सकेगी, लेकिन लाइफ और लिविंग में फर्क है। जीवन और आजीविका में भेद है। रोटी कमा लेना जीने का काफी आधार नहीं है। अकेला मकान बना लेना या नौकरी कर लेना भी जीवन को पा लेना नहीं है। जीवन कुछ ज्यादा है।
क्राइस्ट ने कहा था बहुत पहले, मैन कैन नॉट लिव बाइ ब्रेड अलोन, आदमी नहीं रह सकता केवल रोटी के आधार पर। लेकिन गलत रहे होंगे क्राइस्ट, झूठ

कही होगी यह बात, सुधार लेनी चाहिए लौट कर अपनी बाइबिल। सारी दुनिया सिर्फ रोटी पर जी रही है। लेकिन क्या सच में क्राइस्ट गलत थे? क्या सुधार लेनी चाहिए अपनी बात उन्हें, या कि हमारा जीवन गलत है, हमें अपना जीवन सुधार लेना चाहिए। अकेली रोटी पर जो जी रहा है, उसे किन शब्दों में, किन अर्थों में हम मनुष्य कहें। फिर पशु में और पक्षी में, और पौधों में और हममे भेद क्या है? कुछ भेद है? कुछ भेद होना चाहिए? वह भेद शायद यही हो सकता है, कि शरीर के पार्थिव मूल्य, वे जो सेंसेट वैल्यूज हैं, वे ही नहीं कुछ जीवन में और गहरे मूल्य भी हैं, और उन गहरे मूल्यों को जो उपलब्ध होता है, वही केवल आनंद को उपलब्ध होता है। यह अस्वाभाविक नहीं है, और न आश्चर्यजनक कि सारी दुनिया में एक अर्थहीनता, एक मीनिंगलेसनेस मालूम पड़ती है। हर आदमी यह कहता हुआ मालूम पड़ता है कि जीवन में कोई अर्थ नहीं दिखाई पड़ता। जीवन में अर्थ दिखाई कैसे पड़ेगा? अर्थ पैदा करना होता है। अर्थ आसमान से नहीं बरसता, वर्षा की तरह, और न नदी के किनारे पड़े हुए पत्थरों की तरह कहीं से उठाकर लाया जा सकता है। और न अर्थ दुकानों पर बाजारों में बिकता है कि खरीदा जा सके। अर्थ जो जीवन में सतत साधना से उत्पन्न करना पड़ता है। आदमी खुद को पैदा करने की सतत प्रक्रिया है। जो लोग मां-बाप के द्वारा पैदा होने पर ही रुक जाते हैं, वे ठीक से पैदा ही नहीं हो पाते। पूरी जिंदगी एक बर्थ है, पूरी जिंदगी एक जन्म है, रोज-रोज आदमी, रोज-रोज जन्मता है। रोज-रोज उसे अपने भीतर नई-नई दिशाओं को नई-नई डायमेंशंस को जन्म देना होता है, और जिस दिन उसके भीतर सब खिल जाता है, जैसे कोई कली फूल बन जाए, ऐसा जब उसके जीवन के भीतर छिपा हुआ सब फूल की तरह खिल जाता है, तब और केवल तभी उसे आनंद उपलब्ध होता है। आनंद है व्यक्तित्व की पूर्णता की खिलावट। फ्लावरिंग, पूरी तरह चित्त जब खिल जाता है, तो आनंद फलित होता है। आनंद मंदिरों में पूजा करने से नहीं मिलेगा और न आनंद धन के अंबार लगा लेने से। और न आनंद मिलेगा यश की सीढ़ियों चढ़ते चले जाने से। आनंद तो केवल तभी मिलता है, जब किसी व्यक्तित्व की कली फूल बन जाती है। और जब उसकी सुगंध हवाएं उड़ा कर ले जाती हैं, दूर अनंत तक। तभी उसके भीतर आनंद फलित होता है, और तभी अर्थ, तभी मीनिंग, तभी समझ में आता है कि कोई प्रयोजन है, मेरे जीवन का। हमें तो किसी को भी जीवन का कोई प्रयोजन समझ में नहीं आता। जिए जाते हैं अर्थहीन, उठे जाते हैं रोज, चले जाते हैं, काम किए जाते हैं, सांझ सो जाते हैं। और ऐसे ही उठते, चलते एक दिन अंतिम क्षण आ जाता है और हम विदा हो जाते हैं। रोज हम देखते हैं किसी को विदा होते, और रोज हम जानते हैं कि जो आदमी विदा हो गया, इसने जीवन में कुछ भी नहीं पाया।
सिकंदर मरा जिस दिन, उस राजधानी में जिस दिन सिकंदर की अरथी निकली लोग हैरान हो गए, तुम भी वहां मौजूद होते, तो हैरान हो जाते। कुछ अजीब सी बात हो गई थी, सिकंदर के दोनों हाथ अरथी के बाहर लटके हुए थे। ऐसा तो कभी न हुआ था, हाथ तो अरथी के भीतर होते हैं। ये हाथ बाहर क्यों थे? किसी भूल चूक से हो गया था ऐसा? लेकिन सिकंदर की अरथी और भूल-चूक हो सकती थी? वह कोई गांव का भिखारी था? घंटों सजाई गई थी उसकी अरथी, देश के सभी सम्मानित जन, सभी सम्मानित नागरिक उसके आगे-पीछे चल रहे थे; क्या किसी को दिखाई न दे गया होगा यह तथ्य की दोनों हाथ बाहर लटके हुए हैं? हर आदमी पूछने लगा, ये हाथ बाहर क्यों हैं? धीरे-धीरे पता चलना शुरु हुआ, सिकंदर ने मरने के पहले कहा था मेरे हाथ अर्थी के बाहर लटके रहने देना, ताकि हर आदमी देख ले, मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं। मेरे हाथ भी भरे हुए नहीं हैं। मैं जिंदगी में बहुत दौड़ा हूं; बहुत विजय की यात्रा की है, बहुत धन, बहुत शक्ति, बहुत पद, बहुत कुछ प्रतिष्ठा इकट्ठी कर ली है, जमीन पर शायद कोई मेरे जैसा पहले नहीं था, इतना बड़ा साम्राज्य, इतना बड़ा सम्राट हूं, लेकिन नहीं, हर आदमी देख ले, मैं भी भीतर खाली था और खाली हाथ जा रहा हूं। मेरी दौड़ निष्फल हो गई है।
हम सब भी छोटे-मोटे सिकंदर हैं, नहीं होंगे उतने बड़े। छोटी-मोटी हमारी
भी विजय की यात्रा है, हम भी कुछ जीतेंगे, हम भी कुछ बनाएंगे। लेकिन क्या खयाल में आता है कि हाथ आपके भरे हुए हो सकेंगे। याकि आपको भी खाली हाथ ही विदा हो जाना पड़ेगा। और जो खाली हाथ विदा होता है ठीक से जान लें, उसकी पूरी जिंदगी भी खालीपन की एक कथा होगी। क्योंकि जीवन का अंत पूरी जिंदगी

की संपत्ति है, पूरे जीवन का कनक्लूजन है। मौत खबर देती है, यह आदमी कैसे जीआ? मौत खबर देती है यह आदमी कैसे जीआ, कैसे रहा? इसने कुछ पाया, इसने कुछ उपलब्ध किया? और इसलिए तो हम हर आदमी को मौत से डरा हुआ देखते हैं। क्योंकि मौत सारे खालीपन को उघाड़ कर सामने कर देगी। और इसलिए तो हम हर आदमी को मौत के वक्त पीड़ा और परेशानी से भरा देखते हैं, क्योंकि वह पाता है जीवन चूक गया, हाथ से अवसर चला गया। और मैं खाली का खाली हूं, मेरी दौड़ व्यर्थ हो गई। नहीं लेकिन जमीन पर कुछ लोग ऐसे भी मरे हैं, जिनके हाथ खाली नहीं थे। जिनकी मृत्यु भी एक आनंद थी; क्योंकि उन्होंने जीवन के अवसर से खूब फसल काटी थी। उन्होंने जीवन के अवसर से बहुत ऐसी संपदा इकट्ठी कर ली थी, जिसे मौत भी नहीं छीन सकती है, उन्होंने कुछ भीतर उपलब्ध कर लिया था, वे भीतर किसी चीज से भर गए थे, किसी आनंद से, किसी अर्थ से। किसी अभिप्राय से, किसी सौंदर्य से। किसी संगीत से उनका परिचय हो गया था। इसलिए मौत भी उन्हें एक नई यात्रा थी, पुरानी यात्रा का अंत नहीं। इसलिए मौत भी उन्हें जीवन भर की संपदा का इकट्ठा अनुभव थी, मौत भी उनके लिए आनंद थी। च्वांगत्सु एक फकीर था चीन में। उसकी स्त्री मर गई थी। बहुत ख्यातिलब्ध था, खुद चीन का बादशाह संवेदना प्रकट करने, दोपहर में उसके घर गया, उसके झोपड़े पर। सम्राट ने रास्ते में सोचा होगा, क्या-क्या कहूंगा जाकर? क्या-क्या कहूंगा, किसी के घर कोई मर जाए और आप जाएं, तो आप भी सोचते हुए जाते हैं, क्या-क्या कहेंगे। सम्राट भी सोचता हुआ गया था, लेकिन वहां बड़ी मुश्किल हो गई। वहां देख कर हैरान हो गया, च्वांगत्सु एक खंजड़ी को बजा कर गीत गा रहा है। सुबह पत्नी मरी थी। सम्राट हैरान हो गया, कुछ कहने का कारण भी न रहा, संवेदना प्रकट करने की कोई वजह भी न रही, सम्राट को दुख भी हुआ। सम्राट ने कहाः मेरे मित्र, दुख न मनाते इतना ही काफी था, लेकिन खंजड़ी बजाओ और गीत गाओ, यह थोड़ा ज्यादा हो गया। पत्नी सुबह ही मरी है, क्या भूल गए? च्वांगत्सु ने आंखें ऊपर उठाईं, उसकी आंखें आनंद के आसुंओं से भरी थीं, दुख के आसुंओं से नहीं। उसके होंठों पर गीत था, और हाथ में खंजड़ी थी। उसने कहा, जो विदा हो गया है, वह खाली हाथ नहीं गया है। जो विदा हुआ है, वह आनंद से और हंसता हुआ विदा हुआ है। वह कुछ लेकर और पाकर विदा हुआ है। वह कुछ पूरा होकर विदा हुआ है। उसका जाना एक दुख नहीं, एक आनंद का अवसर है, इसलिए गीत गा रहा हूं। ये जो आंख में आंसू हैं, ये खुशी के आंसू हैं। दुखी होता कि जिसे मैंने जीवन भर प्रेम किया वह अधूरा और खाली हाथ चला जाता, तो मैं दुखी होता। जीवन उसकी एक भरावट थी, एक पूर्णता थी, जीवन का फूल उसका खिल गया था, इसलिए खुश हूं।
कितने लोग यह कह सके होंगे कभी, कितने लोग अपनी मृत्यु पर यह अनुभव कर सके होंगे? लेकिन थोड़े से लोगों ने जमीन पर यह अनुभव किया है। वे वे ही लोग हैं, जिन्होंने जीवन में भी आनंद का, जीवन में भी सौंदर्य का अनुभव किया हो। लेकिन हम सारे लोग जिसे शिक्षा समझते हैं, उससे तो यह कुछ भी पैदा नहीं होता। यह शिक्षा बहुत अधूरी है। शायद अधूरी कहना गलत हो, यह शिक्षा बहुत बेबुनियाद है, यह शिक्षा बहुत आधारहीन है। हम एक ऐसा मकान बनाते हैं, जिसकी कोई बुनियाद नहीं डालते, जिसकी कोई नींव नहीं बनाते, मकान बन कर खड़ा हो जाता है। और हवा के झोंके उसे वैसे ही गिराते रहते हैं, जैसे कोई ताश का घर बनाए, या कोई रेत का घर बनाए। ये जीवन का भवन हमारा कोई बहुत ठोस बुनियाद पर खड़ा नहीं होता। धर्म ही जीवन को ठोस बुनियाद देता है। लेकिन धर्म शब्द से भूल में मत पड़ जाना, धर्म से मेरा मतलब क्रिश्चियनिटी, हिंदू, इसाई, जैन या बौद्ध नहीं है, ये कोई भी धर्म नहीं हैं। धर्म तो एक ही हो सकता है, बहुत नहीं हो सकते। गणित बहुत हो सकते हैं? फिजिक्स बहुत हो सकती हैं? हिंदू की फिजिक्स अलग, मुसलमान की फिजिक्स अलग, जानते हैं हम नहीं हो सकती। प्रकृति के नियम तो युनिवर्सल हैं, एक जैसे हैं, हिंदू और मुसलमान में वे फर्क नहीं करते। तो जब प्रकृति के नियम भी एक जैसे हैं, तो क्या परमात्मा के नियम भिन्न-भिन्न हो सकेंगे। जब पदार्थ भी एक ही सार्वलौकिक नियमों के अंतर्गत चलता है और गतिमान होता है, तो क्या प्राण अलग-अलग नियमों के अंतर्गत गतिमान होते होंगे। नहीं विज्ञान भी एक है, और धर्म भी। लेकिन धर्म के नाम पर बहुत सी दुकानें खड़ी हो गईं है। और वे सब अलग-अलग हैं,

और उन दुकानों ने आदमी का बहुत शोषण किया है। और इन दुकानों के कारण ही शिक्षा आज तक धर्म से वंचित है। क्योंकि जब भी धर्म का सवाल उठता है, तो हिंदू सोचता है, हिंदू धर्म शिक्षा से जोड़ दिया जाए, गीता पढ़ाई जाए, वेद पढ़ाए जाएं, मुसलमान सोचता है कुरान जोड़ दी जाए, ईसाई सोचता है बाइबिल जोड़ दी जाए, कुछ और जोड़ दिया जाए। जब भी धर्म को शिक्षा से जोड़ने का सवाल उठता है, तब ये तथाकथित धर्मों के लोग, सोचते हैं हमारी किताबें, हमारी परंपराएं, हमारी ट्रेडीशंस, हमारी श्रद्धाएं, हमारे विश्वास, हमारी बिलिफ जोड़ जी जाएं। और ये सारी बिलिफ, ये सारे विश्वास इतने अंधे हैं कि शिक्षा शास्त्री सोचता है, इनको तो न जोड़ना ही बेहतर। इनसे मनुष्य के जीवन में काई विकास नहीं हुआ, कोई गति नहीं हुई। बल्कि सच यह है कि धर्मों के अंधविश्वास ने मनुष्य की सारी वैज्ञानिक प्रगति को रोज-रोज बाधा पहुंचाई है, रोज-रोज अड़ंगे खड़े किए हैं। गैलिलियो से लेकर आइंस्टीन तक रोज, निरंतर धर्म के नाम पर धर्म पुरेहितों ने मनुष्य की वैज्ञानिक प्रगति को सब तरफ से रोकने की कोशिश की है। जो प्रगति हुई है, वह धर्मों के बावजूद हुई है। इसलिए एक भय है कि धर्म के नाम पर हिंदू-मुसलमान, कहीं इनका भाव न हो,
तो मैं पहले ही निवेदन कर दूं कि धर्म से मेरा अर्थ किसी संप्रदाय से नहीं किसी सेक्स से नहीं, धर्म से मेरा अर्थ किसी धर्मग्रंथ से भी नहीं। धर्म से मेरा अर्थ है, जीवन के भीतर उच्चतर मूल्यों के जन्म की प्रक्रिया से। कैसे मुनष्य के भीतर उच्चतर मूल्यों का जन्म हो सकता है? कैसे मनुष्य अपने भीतर छिपी हुई चेतना से, आत्मा से परिचित हो सकता है। कैसे मनुष्य अपने बाहर जो विराट जीवन विस्तीर्ण है, उसका सानिध्य अनुभव कर सकता है। कैसे वह एक दिन इस सत्य का उदघाटन कर सकता है कि जगत केवल मिट्टी और पदार्थ से नहीं बना, बल्कि उसमें परमात्मा भी व्याप्त है। इसकी खोज, इसकी मान्यता नहीं, इसका विश्वास नहीं, इसको चुपचाप मान लेना नहीं, बल्कि इसकी खोज, इसका अनुंसधान। लेकिन तथाकथित धर्म तो हमसे कहते हैं विश्वास करो, उनकी इस विश्वास करने की शिक्षा के कारण ही शिक्षक, शिक्षार्थी और शिक्षा का जगत धर्म से आज तक संबंधित नहीं हो सका है। क्योंकि शिक्षा के सारे आधार विचार पर खड़े हैं। और धर्म के सारे आधार विश्वास पर खड़े हैं, ये दोनों बातें विरोधी हैं। धर्म अंधे विश्वास पर खड़ा हुआ है। और सारी शिक्षा की आधुनिक चिंतना विचार पर खड़ी हुई है। जब तक धर्मों को हम विश्वास समझेंगे, तब तक शिक्षा से उसका कोई मेल नहीं हो सकता। वे दोनों दो विरोधी चीजें रहेंगी। और इसीलिए आज तक मेल नहीं हो सका। लेकिन मेरी दृष्टि में धर्म भी अंधश्रद्धा नहीं है, धर्म भी जागरुक विचार है। और अगर धर्म जागरुक विचार है, तो धर्म खुद एक विज्ञान है। बल्कि सुप्रीम साइंस है। क्योंकि शेष सारे विज्ञान बाहर जो है, उसकी खोज करते हैं, धर्म उसकी खोज करता है, जो भीतर है। राबिया एक फकीर औरत थी। एक संध्या लोगों ने देखा वह अपने घर के बाहर कुछ खोजती। बूढ़ी थी औरत सूरज ढलता था, रात पड़ती थी। दो-चार लोग आ गए, और उन्होंने कहा, क्या खोजती हो? हम साथ दे दें? उस राबिया ने कहाः मेरी सुई खो गई है, मैं कपड़े सीती थी और मेरी सुई खो गई। उसे खोजती हूं, सुई है बड़ी छोटी चीज, रास्ता बहुत बड़ा था, सूरज डूबता था, अंधेरा उतरता था; वे खोजने लगे। लेकिन तभी एक व्यक्ति को खयाल आया, इतना छोटी चीज है ठीक से बताओ कहां गिरी है? तो शायद हम खोज भी सकें, इतने बड़े रास्ते पर। उस राबिया ने कहाः यह मत पूछो! सुई तो मेरे मकान के भीतर गिरी है। मैं कपड़ा सीती थी, वहां सुई गिर गई, लेकिन वहां रोशनी नहीं है और मैं इतनी गरीब हूं कि मेरे घर में कोई दिया नहीं है। तो मैं बाहर की ढलान में खोजने लगी, वहां थोड़ी सूरज की अभी रोशनी आती थी। फिर वह भी ढल गई तो मैं और बाहर आ गई, सड़क पर खोजने लगी, यहां थोड़ा प्रकाश था। वे लोग बोले तुम पागल हो क्या? सुई भीतर खोई है और उसे बाहर खोजोगी, तो वह मिलेगी? राबिया ने कहाः मैं तो हर आदमी को जो चीज भीतर गुमी है, उसे बाहर खोजते देखती हूं। हर आदमी को।
हर आदमी बाहर खोज रहा है, उसे जो भीतर मौजूद है। लेकिन वही भूल हो रही है, जो राबिया ने उस घटना में खड़ी कर दी थी। हमारी आंखों की रोशनी बाहर गिरती है, हाथ बाहर फैलते हैं, कान बाहर सुनते हैं, हमारी सारी इंद्रियां बाहर की तरफ खुलती हैं, इनकी रोशनी बाहर पड़ती है, इसलिए हम बाहर खोजते हैं,

आनंद को बाहर खोजते हैं, प्रेम को बाहर खोजते हैं, बाहर खोजते हैं, सब कुछ जीवन का, जब कि सच्चाई यह है कि घर के भीतर कोई दिया नहीं है, अंधेरा है जरूर। लेकिन वहां भीतर वह सब छिपा है, जिसकी हम बाहर खोज करेंगे और कभी न पा सकेंगे।
आज तक जिसने भी कभी पाया है, उन्होंने उसे भीतर पाया है। लेकिन तब भीतर है अंधेरा, तो धर्म है रास्ता भीतर रोशनी ले जाने का, भीतर दिया जलाने का। भीतर आंख ले जाने का और खोजने का। धर्म अंधश्रद्धा नहीं, अंध विश्वास नहीं, धर्म एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। जीवन के गहनतम सत्यों की तरफ अग्रसर होने की, उस प्रक्रिया के संबंध में अंत में थोड़ी सी बात कहूंगा। और अगर वह प्रक्रिया हमारे खयाल में आ सके, तो कोई वजह नहीं है कि शिक्षा एक-एक बच्चे को शुरुआत से ही आत्मिक जीवन में दीक्षित करने में क्यों असमर्थ रह जाए, वह समर्थ हो सकती है। उस प्रक्रिया के संबंध में थोड़ी सी बात कहूंगा। दो सूत्र हैं मनुष्य के भीतर जो सत्य है, या जगत में जो सत्य है, जो गहरी से गहरी सच्चाई है, उसे जानने की।
पहला सूत्र हैः अकंप चित्तता। पहला सूत्र है अनवेवरिंग माइंड। हमारा सारा चित्त निरंतर कंपित है। निरंतर कंपा हुआ है, जैसे सागर की लहरें। एक मित्र मेरा चित्र लेने आए थे, वो कैमरा साथ लाए थे, मैंने उनसे कहा एक शर्त पर चित्र लेने दूंगा, चित्र तो लो लेकिन, कैमरे को बिल्कुल हिलाते रहना, तो ही चित्र लेने दूंगा। कोई रास्ता न देख कर वे राजी हो गए। और कैमरा हिलाते हुए चित्र लेना पड़ा। फिर वह चित्र आ गया। उस चित्र में पहचानना भी मुश्किल है कि वह क्या है? मॉडर्न पेंटिंग हो गई वह चित्र। मॉडर्न पेंटिंग भी अचानक पैदा नहीं हो गई है, वेवरिंग माइंड की वजह से पैदा हो गई है। चित्त जितना कंपित है, जीवन को भी उतना ही कंपित देखता है। चित्त है दर्शन का द्वार। तो मैंने उनसे कहा, इस चित्र को अपने घर लगा लो, बड़ा करके और अगर कभी कोई आदमी पहचानने वाला मिल जाए कि चित्र किसका है, तो मुझसे मिला देना क्योंकि वह आदमी बड़ा अदभुत है। पांच साल बीत गए, मगर वह आदमी अब तक नहीं मिला, और मैंने उनसे कहा वह मिलेगा भी नहीं, तुम टांगे रहो चित्र को। लेकिन हम जीवन को ऐसे ही कंपित चित्त से देखने की कोशिश कर रहे हैं। और अगर जीवन की तस्वीर ठीक न बन पाती हो, और हम सत्य को अनुभव न कर पाते हों, तो कौन है कसूरवार? कौन है जिम्मेवार? और फिर हम पूछते हों, और कहते हों कि कोई नहीं है ईश्वर, कोई नहीं है आत्मा, कुछ नहीं है शांति, कोई नहीं है आनंद; जरूर हम कहेंगे। अगर उस चित्र को देख कर हम कहें कि कोई नहीं है मनुष्य जिसकी फोटो उतारी जा सके, देखो यह चित्र आता है, तो गलती तो नहीं कहेगा। लेकिन मैं मौजूद था और मेरी वह तस्वीर है। लेकिन उस तस्वीर को देख कर कोई सोच नहीं सकता कि मैं हूं। उस तस्वीर में मुझे नहीं खोजा जा सकता।
इस जगत में हम परमात्मा को नहीं खोज पाते। तो हम दोष देते हैं कि परमात्मा नहीं है। जीवन में आंनद नहीं खोज पाते, तो कहते हैं कि जीवन व्यर्थ है। एप्सर्ड है, इसमें कोई आनंद है ही नहीं। फिजूल की खोज है, जीवन में शांति नहीं मिलती, तो हम कहते हैं जीवन में कोई शांति है ही नहीं, तो मिलेगी कैसे? लेकिन मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूं जीवन में बहुत आनंद है, बहुत शांति है, लेकिन उसका चित्र उतारने के लिए चाहिए, अनवेवरिंग माइंड। चाहिए निष्कंप चित्त। चाहिए ठहरा हुआ चित्त। चाहिए अकंप चित्त जिसमें कंपन न हों और लहरें न हों। हमारा तो चित्त रोज-रोज कंपा चला जाता है।
एक छोटी सी घटना कहूं, उससे शायद अकंप चित्त का अर्थ खयाल में आ सके।
और फिर मैं दूसरा सूत्र बताऊं कि अकंप चित्त कैसे हो सकता है? और उस सारी प्रक्रिया को मैं धर्म कहता हूं।
एक बहुत बड़ा धनुर्धर हुआ। एक बहुत बड़ा बाण चलाने वाला, तीर चलाने वाला, तीरंदाज हुआ। सारे देश में उसकी ख्याति थी। और खुद सम्राट ने उससे कहा था, तुम अप्रतिम हो, तुम अकेले हो, तुम बेजोड़ हो, तुम घोषणा क्यों नहीं कर देते, कोई प्रतिस्पर्धी हो, तो सामने आ जाए, ताकि मैं राज्य से तुम्हें सम्मान दे सकूं कि तुमसे ऊंचा और कोई भी धनुर्धर नहीं है। वह राजमहल से सोचता हुआ घर लौटता था कि महल के बूढ़े चपरासी ने उससे कहा कि मेरे भाई इसके

पहले कि इस भूल में पड़ जाओ कि तुम सबसे बड़े धनुर्धर हो, मेरा एक निवेदन है। मैं पहले जंगल में लकड़ी काट कर लाने वाला लकड़हारा था। मैंने जंगल में एक आदमी को देखा है, जिसका कोई मुकाबला ही नहीं है। तुम उसके सामने अभी नासमझ हो। अभी तुम उसके सामने अ ब स भी नहीं जानते हो, पहले उसके पास जाकर कुछ सीख लो, नहीं तो कठिनाई में पड़ जाओगे।
तो वह धुनर्धर हैरान हुआ कि उससे भी ज्यादा कोई जानता होगा, क्योंकि बहुत वह जानता था इस कला में जितना जाना जा सकता था, सब उसने सीखा था। उसकी कुशलता बहुत थी, वह गया लेकिन। जंगल में जाकर उसने उस आदमी को खोज लिया और उसे पता चल गई यह बात कि यह सच्चाई है कि वह उसके सामने अ ब स भी नहीं जानता है। उसके चरणों में तीन वर्षों तक बैठ कर उसकी सारी कला सीखीं, जब वह सब सीख गया, तो उसे खयाल आया कि अब यह आदमी अगर मर जाए, गुरु था उसका लेकिन मर जाए, तो मैं अद्वितिय घोषणा कर सकता हूं कि मैं अकेला हूं। लेकिन इस गुरु के मरने की कब तक मैं प्रतीक्षा करूंगा। तो क्यों न मैं इसे मरने में सहयोग दूं। यह सोच कर वह एक वृक्ष के नीचे छिप गया, एक संध्या। गुरु जंगल से लकड़ियां काट कर लौटता था, निहत्था था, उसके पास कोई धनुष बाण न था। उसने तीर मारा, उसका तीर तो अचूक था। मर जाना निश्चित था। लेकिन घटनाएं अक्सर उलटी शक्ल ले लेती हैं, उसके गुरु ने तीर को आता देखा, तो उसने एक छोटी सी लकड़ी का टुकड़ा फेंका, तीर को चोट लगी और तीर वापस लौट गया और उस आदमी की छाती में बिंध गया। गुरु दौड़ा, जाकर तीर निकाला इलाज किया, कहा मेरा मन न था तुझे मारने का। लेकिन यह अंतिम, एक और शेष रह गई थी यह बात जो मैंने तुझे नहीं बताई वह भी तुझे सिखा दूं; यह मैंने इसलिए बचा रखी थी कि आज नहीं कल, तेरे मन में यह खयाल आना बहुत निश्चित है कि मैं खत्म कर दूं। इस आदमी को जो मेरा प्रतियोगी हो सकता है। लेकिन तू पागल है, एक तो गुरु शिष्य का कभी प्रतियोगी हुआ है? दूसरा मैं इस जंगल में छिपा हूं, कभी गांव भी नहीं गया किसी को कहने, तू व्यर्थ ही नासमझी की बातें किया। लेकिन तू निश्चिंत हो जाए इसलिए मैं अपना धनुष-बाण तोड़े देता हूं। और उसने अपना धनुषबाण तोड़ दिया।
वह युवक खुश हुआ और लौटने लगा, लेकिन उस बूढ़े गुरु ने कहाः लेकिन ठहर! मैं कुछ भी नहीं हूं, मेरा गुरु ऊपर पहाड़ पर रहता है। अभी इतनी जल्दी यह मत सोच लेना कि तू सब जान गया। उसके सामने मैं कुछ भी नहीं हूं, उसके चरणों की धूल भी नहीं। तो पहले एक दफा उसके दर्शन कर ले। पहाड़ के करीब से ऊंट निकलता है, तभी उसे पता चलता है कि ऊंचाई उसकी कितनी है। तो उसने उससे कहा कि तू सिर्फ एक ऊंट है, वह एक पहाड़ है। उसके करीब से निकल जा। तो शायद तुझे यह खयाल ही मिट जाए। जरूरी था जाना, वहां वह गया। बामुश्किल खोज पाया उस बूढ़े आदमी को, जिसकी बात कही गई थी। वह कोई सौ की उम्र पार कर चुका होगा। उसकी कमर झुक कर कमान हो गई थी। एकदम बूढ़ा आदमी था। और एक बड़ी चट्टान पर, पहाड़ पर खड़ा हुआ था। उसके पास वह गया। और उसने कहा, क्या आप ही वह आदमी हैं, जिसको मैं खोजने आया हूं, जो सबसे बड़ा व्यक्ति है, जानकारी में इस धनुर्विद्या की। लेकिन आपका धनुष कहां? आपके बाण कहां? तो वह बूढ़ा आदमी हंसा और उसने कहाः जब कोई कला पूरी हो जाती है तो उपकरण छूट जाते हैं। जब संगीत पूरा हो जाता है तो वीणा तोड़ दी जाती है, उसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती। और जब कोई काव्य में पूरा गहरा उतर जाता है तो शब्द छूट जाते हैं, मौन आ जाता है। बीस साल हो गए, धनुष तोड़ दिया। उसकी अब कोई जरूरत न थी। धनुष बाण तू लिए है, यह तो बच्चों का काम है, यह तो सीखने के वक्त की जरूरत है। जब तक धनुष तेरे हाथ में है, समझना धनुर्विद्या पूरी तुझे अभी आई नहीं। बहुत मुश्किल की बात हो गई। लेकिन उस युवक ने कहा, आपके चरणों में बैठ कर मैं सीखना चाहता हूं। यह तो मेरी कभी कल्पना में भी न था कि उपकरण छूट जाएंगे, जिस दिन कला पूरी होगी, लेकिन अब क्या बचा है आपके पास? जब उपकरण ही नहीं हैं, तो क्या है आपके पास शेष? तो वह बूढ़ा उस चट्टान पर आगे की तरफ सरका, जिसके नीचे हजारों फिट गहरा खड्ड था। जिसमें कोई गिर जाता तो आवाज भी सुनाई न पड़ती। जिसमें कोई चिल्लाता, तो कोई सुनने को न था, इतना निर्जन था। वह बूढ़ा उस किनारे की तरफ चला, चट्टान पर, चट्टान दूर खड्ड के ऊपर बढ़ी हुई थी। वह बूढ़ा गया किनारे पर, जहां उसके पंजे खाई में झांकने लगे। और वहां

कमर झुकाए वह सौ साल पार किया बूढ़ा खड़ा हो गया। और उस युवक से कहाः आ, तू भी यहां निकट आ जा। वहां कौन इतने निकट जा सकता था, नीचे मौत थी। जरा सा चूक जाना और मृत्यु में पहुंच जाना हो जाता। वह युवक बोला मेरे हाथ-पैर कंपते हैं, मैं वहां नहीं आ सकूंगा। तो उस बूढ़े ने कहा, हाथ-पैर कंपते हैं, याकि मन कंपता है। उस युवक ने कहाः मन कंपता है शायद इसलिए हाथ पैर कंपते हैं। तो उसने कहा फिर तू कैसा धनुर्विद है। तू कैसा तीर चलाने वाला है? जिसका चित्त कंपता है, उसका निशाना कभी ठीक लग सकता है? चाहे कितना भी ठीक लगे, लेकिन हमेशा अप्रॉक्सिमेट ही होगा। कभी ठीक नहीं हो सकता। करीब-करीब ठीक होगा, कभी ठीक नहीं हो सकता। और करीब-करीब ठीक, ठीक नहीं होता है। आप कह सकते हैं कि यह बात करीब-करीब सत्य है। नहीं, सत्य, सत्य होता है, करीब-करीब सत्य में झूठ मौजूद होता है। नहीं तो करीब-करीब नहीं हो सकता। आप कह सकते हैं मैं तुम्हें करीब-करीब प्रेम करता हूं? करीब-करीब प्रेम का क्या मतलब होता है? प्रेम हो सकता है, करीब- प्रेम नहीं हो े सकता। तो करीब -करीब निशाना भी नहीं हो सकता। निशाना होता है, या नहीं होता।
उस बूढ़े ने कहा आ जा पास। वह युवक वहीं बैठ गया, उसने कहा क्षमा करें, मैं उतने पास नहीं आ सकूंगा। और मैं हैरान हूं कि आप वहां खड़े हैं। उस बूढ़े ने कहा, जब चित्त थिर हो जाता है, तो सब थिर होकर खड़ा हुआ जा सकता है। जा पहले चित्त की अकंपना, पहले चित्त की नॉन-वेवरिंग सीख कर आ, फिर निशाना लगाना सीख सकेगा। वह आदमी चल पड़ा बहुत दिन हो गए, खोजते-खोजते अभी तब उसे कोई बताने वाला नहीं मिला कि चित्त अकंप कैसे हो सकता है? वह जगह-जगह गांव-गांव में पूछता है कि चित्त अकंप होने की क्या तरकीब है? मैं आपको तरकीब बताए देता हूं, अगर वह भटकता हुआ कहीं आपको मिल जाए, तो आप उसे बता देना। क्योंकि यह तो मैं जानता हूं कि इसे आप अपने काम में न लाओगे, इसलिए मैंने कहा, किसी को बता देना। कोई अपने काम में नहीं लाता, इसलिए मैंने कहा कि मिल जाए कभी कोई पूछता हुआ, तो उसको बता देना कि यह तरकीब है।

चित्त अकंप होता है, एक बहुत सरल तरकीब से। चित्र अकंप होता है विश्राम से। चित्र अकंप होता है रिलैक्जेशन से। रेस्ट से। चित्त कंपित क्यों है? चित्त कंपित है तनाव से। टेंशन से। अगर हम एक वीणा के तार को खींचे, टेंस हो जाएगा, खिंच जाएगा तन जाएगा और अगर छोड़ दें, तो तार झन-झनाता हुआ कपंता रहेगा, बड़ी देर तक कंपता रहेगा। वह कंपन कहां से आया? वह कंपन क्या है? वह कंपन है एक तनाव को विसर्जित करना। तनाव भर गया खींचने से तार में, अब तार अपनी जगह वापस लौटना चाहता है। एकदम से नहीं लौट सकता, तनाव की ताकत भर गई है, ताकत को विसर्जन करना पड़ेगा। वो ताकत को विदरअवे करना पड़ेगा, तो वह तार हिल-हिल कर उस ताकत को बाहर फेंक देगा। जब सारी ताकत बाहर फिंक जाएगी, जो आपने हाथ से खींच कर पैदा कर दी थी, तार अपनी जगह वापस पहुंच जाएगा। कंपन है अपनी जगह पहुंचने की कोशिश। चित्त अपनी जगह पहुंचना चाहता है। लेकिन हम उसे चौबीस घंटे खींच-खींच कर परेशान किए दे रहे हैं। तान कर परेशान किए दे रहे हैं। वह एक कंपन पूरा नहीं हो पाता कि अंगुलियां फिर तार को खींच देती हैं। जीवन भर हम मन को खींचे चले जाते हैं। ताने चले जाते हैं। और ये तनाव और ये टेंशन चौबीस घंटे मन को कंपाए रखता है। कंपाए रखता है। इस कंपित मन के कारण जीवन के सत्य के कोई दर्शन नहीं हो पाते। क्या करें? थोड़ी देर को मन को बिल्कुल रिलैक्स छोड़ दें। कुछ भी न करें। थोड़ी देर को कुछ भी न करें। चौबीस घंटे में घड़ी-आधा घड़ी किसी अंधेरे कोने में, ऐसे पड़ जायें जैसे कि आप नहीं हैं। और मन के साथ कुछ भी न करें। राम-राम भी न जपें क्योंकि वह भी एक तनाव है, माला भी न फेंरें, क्योंकि वह भी एक काम है, मन फिर खिंचेगा। कुछ भी न करें लेकिन आप कहेंगे हम कुछ भी न करें, तो भी क्या है, मन तो कुछ करेगा। मन तो सोचेगा, विचार करेगा। जरूर। मन सोचेगा, विचार करेगा, क्योंकि जीवन भर के खिंचाव, उसे कंपा रहे हैं। हम एक गाड़ी के चाक को, एक साइकिल के चाक को चला दें, फिर हम हाथ ही अलग खींच लें तो भी चाक उसी वक्त थोड़े ही रुक जाएगा। चाक को मोमेंटम मिल गया, गति मिल गई, चाक थोड़ी देर चलेगा, चल कर उस गति को बाहर फेंकेगा। फिर धीरे-धीरे, धीरे रुकेगा। और इस बीच अगर आपने फिर चाक को चला दिया, तो रुकने का कोई सवाल नहीं है।

साइकिल चलती इसी नियम पर है। आप पैडल लगाते हैं, चाक गतिमान हो जाता है, जब तक उसकी गति खत्म हो, पैंडिल उसे दुबारा गति दे देता है, साइकिल चलती चली जाती है। चित्त भी वैसी ही एक साइकिल बन गई है, हम उसे रोज तनाव दिए चले जाते हैं, उसको हम कभी छोड़ते नहीं कि कोई तनाव विसर्जित हो जाए। तो मैं निवेदन करूंगा प्रक्रिया है सरल लेकिन करने वाला मिलना है कठिन। प्रक्रिया बहुत सरल है। आधा घड़ी को किसी कोने में, एकांत में चुप-चाप पड़े रह जायें, मन काम करेगा, उसके कंपन भरे हुए हैं वे चलेंगे, उनको चल लेने दें, देखते रहें। जैसे कोई रास्ते पर चलते हुए लोगों को देखे। कोई नदी के किनारे बहती नदी की धार को देखे। कोई आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की कतार को देखे, ऐसे ही विचारों की चलती कतार को, कंपन को चुपचाप बैठे देखते रहें। कुछ भी न करें उसके साथ। कुछ भी न करें, न रोकने की कोशिश, न हटाने की कोशिश क्योंकि सब कोशिश फिर तनाव पैदा कर देती है, कोई इफर्ट तनाव पैदा कर देगा। कोई एफर्ट न करें। आपने देखा कि अगर रात में नींद न आती हो और आप कोशिश करें नींद लाने की फिर नींद नहीं आ सकती, क्योंकि हर कोशिश नींद की दुश्मन है। अगर कोई कोशिश न करें तो नींद तो अपने आप आ जाएगी, नींद आप ला नहीं सकते, वह अपने आप आती है। आपके लाने की कोशिश में दूर हो जाएगी। विश्राम भी आप ला नहीं सकते, वह अपने आप आता है, आप कुछ भी न करें तो वह आएगा।
बुद्ध एक गांव के पास ठहरे, प्यास लगी थी उन्हें जंगल में, अपने एक भिक्षु को भेजा कि पानी ले आ। वह गया, जिस नाले से पानी लाना था, उसमें से बैलगाड़ियां निकल गईं थी, वहां कचरा और मिट्टी ऊपर उठ आयी थी। वह खाली हाथ वापस लौट आया और उसने कहाः बहुत मुश्किल है, वह पानी तो एकदम गंदा हो गया। अब मैं क्या करूं, कैसे उस पानी को ठीक करूं? और मैं ठीक करने अंदर घुसा था तो मेरे पैरों ने और कीचड़ उठा दी। बुद्ध ने कहाः पागल! किनारे बैठ जाना था, और चुपचाप बैठे रहना था। अपने आप धूल के कण नीचे बैठ जाते। उठे हुए पत्ते बह जाते, वह जो जल एकदम गंदा हो गया है, निर्मल हो जाता, जाओ किनारे बैठ जाओ और कुछ करना मत। तूने कुछ भी किया तो पानी फिर गंदा हो जाएगा। वह युवक गया और किनारे बैठ गया, एक झाड़ से छिप कर बैठा रहा, बैठा रहा गंदा पानी बहता गया, उठी हुई कीचड़ नीचे बैठती गई। सूखे पत्ते बहते चले गए, थोड़ी देर में देखते-देखते वह हैरान हो गया, वह पानी जो बिल्कुल गंदा था, एकदम निर्मल हो आया था। वह पानी भर कर नाचता हुआ वापस लौटा और बुद्ध के चरणों में गिर पड़ा, उसने कहा पानी तो ठीक मन के संबंध में भी एक बात समझ में आ गई। यह जो सरा उपद्रव मन का है, कहीं किनारे हम बैठ जाएं तो ठीक हो जाए।
मन के किनारे बैठ जाने का नाम विश्राम है। चलने दें मन को और किनारे बैठ जाएं। तनाव अपने आप विसर्जित हो जाएंगे और एक घड़ी आएगी कि थोड़े दिनों में प्रेम से प्रतीक्षा करने पर जब कि मन एकदम निष्तरंग हो जाएगा, नहीं आज हो जाएगा, नहीं कल, जल्दी नहीं हो सकती। क्योंकि जीवन भर के तनाव हैं, और जो जानते हैं वह यह भी जानते हैं कि जीवन भर के नहीं, बहुत जीवन तनाव हैं। उनका भारी बोझ है, भारी खिंचाव है, लेकिन अगर हम शांति से प्रतीक्षा करें और किनारे बैठ सकें मन के, तट पर बैठ सकें और देख सकें चुपचाप। रोज अगर एक घड़ी मन के साथ केवल चुपचाप बैठे रहने में बीत जाए, तो किसी दिन आपको अनुभव होना शुरु हो जाएगा कि तरंगें कम होनी शुरु हो गई हैं। मन की लहरें बैठने लगी हैं। कूड़ा-करकट बहने लगा है, एक निर्मलता, एक इनोसेंस, एक पवित्रता, एक शांति एक निष्तरंगता पैदा हो रही है, और एक दिन, वह घड़ी आ जाती है, जो प्रतीक्षा करता है कि जब मन बिल्कुल ही शांत और मौन हो जाता है। उसी दिन धर्म का अनुभव होता है, उसी दिन सत्य की प्रतीति होती है। उसी दिन स्वयं के भीतर जो छिपा है, उसका बोध होता है। और उसी दिन जीवन कुछ और हो जाता है। और फिर और, फिर आजीविका नहीं रह जाती जीवन, जीवन हो जाता है। फिर हम चलते- फिरते मुर्दे नहीं रह जाते, हमारे भीतर कोई जीवंत धारा जन्म ले लेती है और प्रकट हो जाती है। फिर, फिर ही अनंत से संबंध है, फिर ही परमात्मा से संबंध है। नहीं किसी मंदिर में उसे खोजा जा सकता, लेकिन जिसका मन मंदिर बन जाता है, मौन होकर; वह वहां मौजूद हो जाता है। नहीं उसे पत्थर की दीवालों और मूर्तियों में खोजा जा सकता, लेकिन जिसके प्राण शांत हो जाते हैं वहीं चेतना की चिन्मय मूर्ति उपलब्ध हो जाती है। वह वहां है, वह सबके भीतर है।

जो उसे खोजना चाहेंगे, जो उसके लिए प्यासे होंगे, जिनकी आतुरता होगी आनंद को और अर्थ को खोज लेने की, वह उनके साथ खड़ा है, सिर्फ आंख फेर कर देखने की बात है।
एक छोटी सी कहानी और मैं अपनी चर्चा को पूरा करूंगा।
निष्तरंगता धर्म की बुनियादी आधारशिला है। और निष्तरंगता का उपलब्ध करने का सूत्र, सीक्रेट है--विश्राम। निष्तरंगता, धन विश्राम बराबर धर्म का अनुभव। और शिक्षा से यह बात जिस दिन भी संयुक्त होगी उस दिन हम नये आदमी को पैदा कर लेंगे।
एक छोटी सी कहानी अपनी बात मैं पूरी कर दूंगा।
एक गांव के बाहर एक मरघट पर आधी रात को भटकता हुआ एक फकीर पहुंच गया। चिता जल रही थी, सर्द रात थी, उसने सोचा चिता के पास थोड़ी गर्मी मिल जाएगी। लेकिन चिता के पास पहुंच कर उसने देखा कि एक औरत खड़ी है, आंखों से आंसू बह रहे हैं, हाथ जोड़े खड़ी है। और आकाश की तरफ देख कर कह रही है, अगर मेरे प्यारे को वापस नहीं लौटाते हो, तो मुझे भी इस चिता में समा जाने की आज्ञा दे दो। और यह कह कर वह दौड़ पड़ी है चिता की तरफ। फकीर तो कुछ भी समझ भी नहीं पाया और दौड़ कर उसके कंधे को पकड़ा है और रोका है कि क्या करती हो? सांझ उसका पति चल बसा था। गांव के लोग उसे चिता पर चढ़ा कर वापस लौट गए हैं, आधी रात उसकी विधवा पत्नी वह युवती मरघट पर मरने उसके साथ आ गई। फकीर ने उसे रोका, रुकना नहीं चाहती है, कूदना चाहती है। फकीर ने उसे ताकत से रोका और कहाः पागल हो? उस युवती ने एक बड़ी अदभुत बात उस फकीर के सामने रख दी। उसने कहाः आप एक वचन देते हो तो मैं बच जाऊं? क्या मेरा प्रेमी वापस लौट सकता है, नहीं तो मेरे रहने का कोई प्रयोजन नहीं, अर्थ नहीं। वहीं था मेरा आनंद। और फकीर भी ब.हुत अदभुत रहा होगा, मुश्किल से वैसा फकीर मिलता है। फकीर ने घर लौट चलो, तीस दिन बाद तेरा प्र्रेमी वापस लौट आएगा। विश्वास करने जैसी बात न थी, लेकिन उस फकीर ने इतने आश्वासन से कहा था, उसकी आंखों में ऐसी दृढता थी। वह स्त्री वापस लौट आई, उसने कहा कोई हर्ज नहीं, तीस दिन बाद भी मैं मर सकती हूं। तीस दिन प्रतीक्षा करना कोई लंबा समय न था। गांव भर में यह खबर फैल गई, गांव भर में चर्चा हो गई, उस स्त्री ने अपनी चूड़ियां भी नहीं फोड़ीं, उस फकीर ने कहा चूड़ियां फोड़ने की जरूरत नहीं है, लौट आएगा तेरा प्रेमी। तू विधवा नहीं हुई है। और रोज संध्या वह फकीर उसके घर आने लगा। कुछ उससे कहता होगा, किसी को पता नहीं क्या उसने उससे कहा? लेकिन तीस दिन एक-एक करके बीत गए। गांव के लोग हैरान जरूर थे, वह युवती धीरे-धीरे-धीरे दुख के बाहर होती चली गई। जैसे उसके चेहरे से सारी उदासी मिट गई, मृत्यु की छाया विलीन गई। जैसे वह फिर ताजी और हरी हो आई, फिर जीवन की कोपलें उसमें निकल आईं। वह फिर वापस वैसी हो गई, जैसी थी, मृत्यु का यह आघात जैसे जा चुका था।
तीस दिन पूरे हो गए, इकत्तीसवें दिन की सुबह आ गई, सारा गांव पांच बजे
से उसके द्वार पर इकट्ठा हो गया। लोग दरवाजा ठोकने लगे, दरवाजा खोलो। लौट आया है क्या वह व्यक्ति जो मर गया था? असंभव है यह बात। लेकिन आज परीक्षा होनी थी। आज लौटने का क्षण था। वे बाहर चिल्ला रहे हैं, भीतर कोई गीत गा रहा है, और नाच रहा है, पता नहीं क्या वह लौट आया है? उसकी पत्नी नाचती है। बामुश्किल दरवाजे को खोल कर वे भीतर गए, नाचती थी वह स्त्री, पूछा उससे रोक कर, लौट आया तेरा प्रेमी? उसने कहाः हां, लौट नहीं आया, मैंने जान लिया वह कहीं गया ही नहीं। वह मेरे भीतर मौजूद है। इधर इन तीस दिनों में मैं जैसे- जैसे शांत होती गई, जैसे-जैसे मौन होती गई, जैसे-जैसे चित्त निष्तरंग हुआ, मैंने पाया कि प्रीतम तो भीतर मौजूद है, मैं उसे कहां बाहर खोज रही हूं। वह मेरे भीतर मौजूद है। और जो चल बसा है, वह मेरा प्यारा नहीं था, केवल दर्पण था, जिसमें मेरा भीतर छिपा प्यारा दिखाई पड़ता था। केवल दर्पण टूट गया है। प्यारा मेरे भीतर मौजूद है। जिसको तुम चिता पर चढ़ा आए हो, वह एक दर्पण था। जिसमें मैंने अपने प्रेमी को देखा था, जिसकी आंखों में मैंने झांका था और अपने को पाया था। लेकिन मैं भूल करती थी, मैं समझती थी वहीं मेरा प्रेमी है। प्रेमी मेरे भीतर है।

जगत एक दर्पण है, प्रेमी भीतर है। लेकिन जो शांत होता है, जो मौन होता है, वह उसे खोज लेता है। उसी प्रेमी को पा लेने का रास्ता धर्म है, और ऐसी शिक्षा अधूरी है, खतरनाक है, जो भीतर के उस प्रेमी से जोड़ने के मार्ग पर न ले जाती हो।
मैंने ये थोड़ी सी बातें आपसे कहीं हैं। पता नहीं मेरी यह बात तुम्हारे खयाल में भी आएगी या नहीं, पता नहीं किसी दिन तुम उस राह पर चलोगे या नहीं, जो परमात्मा से मिला देती है, और प्रेम के सागर तक ले जाती है। लेकिन मैंने अपनी बात कह दी, हो सकता है, कोई बीज तुम्हारे मन में पड़ा रह जाए और किसी दिन वर्षा आए जीवन की और उस जीवन में अंकुर आ जाएं। और किसी दिन जीवन का सूरज उगे और उस अंकुर में गति हो जाए, विकास हो जाए, और तुम उसे पा लो जिसे पाने के लिए मनुष्य पैदा होता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे मैं बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं।
मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सम्यक शिक्षा
तीसरा प्रवचन

सच्चा शिक्षक

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य के जीवन में सबसे ज्यादा आश्चर्यजनक, सबसे ज्यादा विरोधाभासी, सबसे ज्यादा उलझी बात शिक्षा के संबंध में ही है। यदि मनुष्य को शिक्षित न किया जाए। तो मनुष्य पैदा ही नहीं होता। और यदि मनुष्य सिर्फ शिक्षित होकर रह जाए, तो भी मनुष्य पैदा नहीं हो पाता है। ऐसा ही कुछ है कि जैसे कोई आदमी सीढ़ियां न चढ़े तो भी ऊपर के भवन में नहीं पहुंचता है। और सिर्फ सीढ़ियां ही चढ़ कर रुक जाए, तो भी ऊपर के भवन में नहीं पहुंच पाता है, सीढ़ियां चढ़नी भी पड़ती हैं और सीढ़ियां छोड़नी भी पड़ती हैं, तो आदमी ऊपर के भवन में पहुंच पाता है। शिक्षित होना भी जरूरी है और शिक्षा को छोड़ भी देना जरूरी है। तो ही मनुष्य ठीक अर्थों में विकसित हो पाता है। और यही उलझन है। या तो दुनिया में अशिक्षित लोग हैं, या दुनिया में शिक्षित लोग हैं, वह तीसरा आदमी नहीं है दुनिया में जो शिक्षित हो और अशिक्षित जैसा हो। और उस तीसरे आदमी की जरूरत है। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है, क्योंकि मेरी दृष्टि में सारे जगत के सामने विशेषकर शिक्षकों के सामने, उन सारे लोगों के सामने जो शिक्षा के संबंध में सोच-विचार करते हैं, यही एकमात्र समस्या है।
आपने सुना होगा, कोई तीस-चालीस वर्ष पहले, बंगाल के जंगल में दो छोटे बच्चे, भेड़िए उठा कर ले गए और उन भेड़ियों ने उन बच्चों को पाला। आदमी के बच्चे, लेकिन जब शिकारी उनको पकड़ कर लाए तो वो करीब-करीब भेड़िए हो चुके थे। वे न आदमी की भाषा बोल सकते थे, न आदमी की तरह दो पैर से चल सकते थे, वो चार पैर से दौड़ते थे, भेड़ियों की तरह आवाज करते थे, भेड़ियों की तरह खूंखार थे, भेड़ियों की तरह कच्चे जानवर को चबा जाते थे। अभी पिछले कोई पांच वर्ष पहले उत्तर प्रदेश में भी एक जंगल से तेरह-चौदह वर्ष का युवक पकड़ा गया, वह भी भेड़ियों की मांद से ही पकड़ा गया था। छह महीने तो उसे दो पैर से खड़ा होना सिखाने में लग गए। वह दो पैर से खड़ा नहीं हो सकता था। आप यह मत सोचना कि आप दो पैर से खड़े होते हैं, ये आपका स्वभाव है। यह शिक्षा है। अगर यह न सिखाया जाए तो आप दो पैर से खड़े नहीं होंगे। आप चार हाथ-पैर से ही चलते रहेंगे। आप यह भी मत सोचना कि आप जो आदमी की तरह बोलते हैं, यह आपका स्वभाव है। यह शिक्षा है। अगर यह न सिखाया जाए, तो आप आदमी की तरह कभी नहीं बोलेंगे। शिक्षा वही नहीं है, जो स्कूल में हमें मिल रही है। अगर हम आदमी की जांच-पड़ताल करें तो हमें पता चलेगा कि आदमी जैसा है, उसमें नब्बे प्रतिशत से ज्यादा शिक्षा है। और आदमी को अगर बिल्कुल बिना शिक्षा के छोड़ दिया जाए, सारी शिक्षा के बिना छोड़ दिया जाए, तो आदमी एक पशु होगा; पशुओं और आदमी में एक ही फर्क है, कि आदमी ने शिक्षा का एक नया आयाम अपने साथ जोड़ लिया है, और कोई पशु शिक्षा का आयाम अपने साथ नहीं जोड़ सका है। आदमी और पशु में जो फर्क है, वह बुनियादी रूप से शिक्षा से पैदा हुआ है।
तो वह जो युवक तेरह-चौदह साल का पकड़ा गया था। उसे छह महीने तो सीधा खड़ा करने में लग गए। उसकी रीढ़ ने सीधा होने से इनकार कर दिया। चौदह वर्ष तक वह चार हाथ-पैर से ही चला था। एक वर्ष उसे अपना नाम बोलने में लग गए, उसका नाम राम रखा था। एक वर्ष लगा उसे सीखने में कि वह राम बोल सके। बस वह इतनी ही भाषा सीख पाया। और सिखाने की कोशिश में उसकी जान निकल गई, वह मर गया साल भर में। क्योंकि उसे जो शिक्षकों ने समझाने और सिखाने की सारी कोशिश की, वह इसमें इतना घबरा गया, इतना परेशान हो गया कि उसकी मौत हो गई। अब तक दुनिया में कई मुल्कों में भेड़ियों के द्वारा पाले गए बच्चे पकड़े गए हैं। लेकिन उनको सिखाना बहुत मुश्किल रहा है। मुश्किल इसलिए रहा कि वे कुछ सीख चुके, उन्होंने भेड़ियों की शिक्षा ले ली। एक अर्थ में वे भी अशिक्षित नहीं हैं, उन्हें भी शिक्षा मिल गई। वे भेड़ियों की शिक्षा ले लिए। हमें हैरानी होगी कि भेड़ियों की शिक्षा लेकर भी कब क्या कोई आदमी भेड़िया हो सकता है? आप हिंदुओं की शिक्षा लेकर हिंदू हो जाते हैं, मुसलमान की शिक्षा लेकर

मुसलमान हो जाते हैं, जैन की शिक्षा लेकर जैन हो जाते हैं, आपको कभी खयाल नहीं आता कि ना आप जैन पैदा होते हैं, न हिंदू पैदा होते हैं, न मुसलमान पैदा होते हैं, पैदा आप एक कोरी स्लेट की तरह पैदा होते हैं। और जो आप पर लिख दिया जाता है, जिंदगी भर आप अपने को वही समझते रहते हैं।
हिंदू होना, मुसलमान होना, ईसाई होना शिक्षा है। अगर आदमी को न सिखाया जाए तो दुनिया में कोई आदमी हिंदू नहीं होगा, कोई मुसलमान नहीं होगा, कोई ईसाई नहीं होगा। अगर हम आदमी को अशिक्षित छोड़ दें, तो वही हो जाएगा, जो परिस्थितियां उसे सिखा देंगी। जो कुछ सिखा देंगी। आदमी को अशिक्षित तो नहीं छोड़ा जा सकता है, हालांकि शिक्षा से जो दुष्परिणाम हुए हैं, उससे कई विचारशील लोग घबरा गए हैं और वो चाहते हैं कि आदमी को अशिक्षित छोड़ दो, तो भी कोई हर्ज नहीं।
डी. एच. लारेंस ने कुछ वर्षों पहले एक वक्तव्य में कहा कि मैं एक प्रार्थना करता हूं, सारी दुनिया से कि सौ वर्षों के लिए सारी शिक्षा बंद कर दी जाएं, अन्यथा आदमी बिल्कुल नष्ट हो जाएगा। डी.एच. लारेंस की बात में बल है। उसके कहने में कोई सार्थकता है, क्योंकि शिक्षा ने आदमी को जैसा बना दिया है, उसके परिणाम में आदमी के जीवन की सारी शांति, सारा आनंद, सारा स्वभाव, जो भी स्पांटेनियस है, जो भी नैसर्गिक है, वह सब खो गया है। आदमी एक झूठा आदमी बन कर खड़ा हो गया है, जो वह है ही नहीं। और शिक्षा ने आदमी को एक ऐसा खतरनाक अहंकार दे दिया कि उस अहंकार के कारण जीवन को जीना भी कठिन है, उस अहंकार के कारण जीवन एक सतत संघर्ष और युद्ध बन गया और एक हिंसा बन गई। और शिक्षा ने आदमी को यह भाव दे दिया कि मैं जानता हूं, और जिस आदमी को यह ख्याल पैदा हो जाता है कि मैं जानता हूं उसकी जीवन की श्रेष्ठतम खुशियों के सारे द्वार बंद हो जाते हैं, जिस आदमी को यह खयाल पैदा हो जाता है कि मैं जानता हूं, उसके जानने के सारे मार्ग अवरुद्ध हो जाते हैं। जिस आदमी को यह खयाल पैदा हो जाता है कि मैं जानता हूं उस आदमी की सत्य की, ज्ञान की, खोज की, यात्रा समाप्त हो जाती है। आदमी को जितना शिक्षित किया गया है, उतना ही आदमी अज्ञानी होता चला गया है, यह भी बहुत हैरानी की बात है। अगर बुद्ध और महावीर को हम अपने स्कूल में लाकर परीक्षा दें, परीक्षा लें उनकी तो बुद्ध और महावीर परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सकते। हम उनकी बजाय ज्यादा ज्ञानी साबित हो जायेंगे। लेकिन फिर भी हम जानते हैं कि किन्हीं अर्थों में बुद्ध और महावीर ज्यादा ज्ञानी हैं, और हमारी उस ज्ञान की तरफ कोई भी गति नहीं।
बुद्ध और महावीर के पास कुछ ज्ञान है। जो हम शिक्षित लोगों के पास नहीं है। लेकिन एक भ्रम हमारे पास भी है कि हम जानते हैं। और इस जानने के भ्रम ने कितनी मुसीबत खड़ी कर दी है। इसे देख कर डी. एच.लारेंस जैसा अगर कोई आदमी कहे, अगर सौ वर्षों तक सारी शिक्षा बंद कर दो, सारी युनिवर्सिटीज, सारे स्कूल सब बंद कर दो। सौ वर्ष के लिए कुछ भी मत सिखाओ आदमी को, सौ वर्ष तक आदमी के मन को खाली छोड़ दो, ताकि आदमी फिर स्वभाव के अनुकूल और करीब आ सके। वह अपने स्वभाव से ही उलटा चला गया है। लेकिन डी.एच.लारेंस की बात कितनी ही सार्थक हो, मानी नहीं जा सकती। क्योंकि मान लेने का परिणाम और भी खतरनाक होगा। आदमी को अशिक्षित छोड़ देने से आदमी बेहतर नहीं हो जाएगा। आदमी को अशिक्षित छोड़ देने से आदमी, आदमी ही नहीं रह जाएगा। और इसलिए इस उलझन को, इस पहेली को समझ लेना जरूरी है, आदमी को अशिक्षित भी नहीं छोड़ा जा सकता, और आदमी को मात्र शिक्षित करके भी नहीं छोड़ा जा सकता।
पुराने जमाने का आदमी अशिक्षित था, आदिवासी आज भी अशिक्षित है। हम दया करके उसको शिक्षित करने के सारे उपाय कर रहे है, बिना इस बात को सोचे कि हम जो शिक्षित हैं, हमने क्या उपलब्ध कर लिया है?
बर्ट्रेंड रसल ने कहीं लिखा है कि मैं पहली बार आदिवासियों के बीच गया, उनके गीत, उनके नाच, उनके आनंद को देखकर मुझे ऐसा लगा कि इसके मुकाबले सारी शिक्षा छोड़ी जा सकती है। उनके नाचते हुए, उनके आनंद से भरे हुए व्यक्तित्व को देख कर उनके सरल पौधों और पशुओं जैसी उनकी सहजता, फूलों की तरह उनके व्यक्तित्व और उनकी आंखों को देख कर उसे लगा कि यह सारी शिक्षा छोड़ने में हर्ज कुछ भी नहीं। अगर हम ऐसे हो सकें।

जो लोग सोचते हैं, उनको यह लगता है कि आदमी ने शिक्षित होकर कुछ खो दिया है। दूसरी तरफ से सोचें तो भी ऐसा लगेगा कि आदमी को अगर अश्क्षित छोड़ दें, तो भी बहुत खतरा है। फिर उपाय क्या है? मेरी दृष्टि में उपाय तीसरा है। और वह उपाय यह है कि आदमी को इस भांति शिक्षित किया जाना चाहिए कि शिक्षित होकर भी निरंतर वह इस बोध से भरा रहे कि मुझे अभी और शिक्षित होना है, मैं शिक्षित हो नहीं गया हूं। पूरी तरह से शिक्षित होकर भी मैं अशिक्षित हूं, अभी शिक्षा शेष है, यह भाव अगर कायम रखा जा सके, तो अशिक्षित आदमी का जो सुख है, वह बचाया जा सकता है। और शिक्षित आदमी के जो लाभ हैं, वे भी उठाए जा सकते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि शिक्षित आदमी को शिक्षित होने का अहंकार पैदा नहीं हो जाना चाहिए, इसका मतलब यह हुआ कि शिक्षित आदमी जितना जाने, उतना ही उसे पता चलना चाहिए कि मैं बहुत कम जानता हूं, ना के बराबर जानता हूं। उसकी मनः स्थिति वैसी ही होनी चाहिए, जैसा मरते समय न्यूटन ने कहा, लोग कहते हैं कि मैं बहुत जानता हूं, और मरते समय न्यूटन कहने लगा कि मेरी अपनी स्थिति यह है कि जितना मैं जानता गया हूं, उतना ही मैं डरने लगा हूं कि अंजाना तो बहुत ज्यादा शेष है। एक समुद्र के किनारे जहां अनंतवा रेत के कण हों, वहां जैसे मैं अपने हाथ में रेत के थोड़े से बालूकण लिए हुए खड़ा हूं, यह मेरा ज्ञान है, जो मेरी मुट्ठी में बंद है, और यह मेरा अज्ञान है, जो अनंत फैला हुआ है, सागर के तट पर। इस छोटे से ज्ञान को कहां मैं चिल्लाऊं कि मैं जानता हूं? न्यूटन ने कहा कि जो मैंने जाना है उससे मुझे सिर्फ इतना ही पता चला है कि जानने को अनंत शेष है, जो मैंने जाना है वह नाकुछ है, जो मैं नहीं जानता हूं वह बहुत कुछ है, जितना मेरी समझ बढ़ी है, उतना ही मुझे अपनी नासमझी का दर्शन और प्रत्यक्ष हुआ है। अगर ज्ञान ऐसा हो कि अज्ञान का साक्षात्कार करा सके, तो तो ठीक है, अन्यथा ज्ञान खतरनाक निश्चित ही बन जाता है। क्या ऐसी शिक्षा हो सकती है कि हम शिक्षित भी करें, साथ भी व्यक्ति को अशिक्षित होने की संभावना को भी खुला रखें। क्या यह हो सकता है कि व्यक्ति जाने भी साथ ही यह भी जाने कि वह कुछ भी नहीं जानता है। अगर ए दोनों बातें संभव हों, जानना एक तल पर संभव हो, न जानना दूसरे तरफ पर द्वार खोले रहे, वह डायमेंशन, वह आयाम खुला रहे, तो व्यक्ति सम्यक अर्थों में शिक्षित होता है, अन्यथा नहीं होता।
यह आज तक संभव नहीं हो पाया। यह आज भी संभव नहीं हो पा रहा है। इसलिए सारी शिक्षा व्यर्थ होती चली जा रही है, जैसा मैंने कहा, सीढ़ियों पर हम चढ़ा देते हैं, फिर सीढ़ियों से उतरता ही नहीं वह आदमी, सीढ़ियों पर चढ़ जाता है फिर कहता है जिन सीढ़ियों पर मैं चढ़ा हूं, उनसे उतरने के लिए तो नहीं चढ़ा था। अगर उतरना ही था, तो मैं चढ़ता क्यों? और वह आदमी यह भूल जाता है कि सीढ़ियों से अगर नहीं उतरेगा, तो सीढ़ियों पर चढ़ना व्यर्थ हो गया। सीढ़ियों पर चढ़ना जरूरी है, ऊ पर पहुंचने के लिए, और ऊ पर पहुंचने के लिए सीढ़ियों को छोड़ देना भी जरूरी है।
मैंने सुना है, दो फकीर एक गांव से यात्रा करते थे। उनमें एक फकीर का
यह विश्वास था कि पैसा पास में रखना व्यर्थ है। पैसे के पास में होने से कोई भी फायदा नहीं होता। दूसरे फकीर का विश्वास था कि बिना पैसे के तो एक क्षण नहीं चला जा सकता है, पैसे का होना तो बहुत जरूरी है। राह में चलते एक तीसरा फकीर उन्हें मिला, उसने दोनों का विवाद सुना और वह हंसने लगा। उन दोनों ने पूछा कि आप हंसते क्यों हो? उसने कहा, समय आएगा तो मैं बताऊंगा। वे तीनों साथ हो लिए। सांझ एक नदी के किनारे पहुंचे, जो फकीर मानता था कि पास पैसा रखना फिजूल है, उसके पास तो एक पैसा भी नहीं था। नदी उन्हें पार करनी थी, लेकिन नाव वाला पैसे मांगता था। उसके पास पैसे नहीं थे, जो फकीर मानता था कि पैसे पास में थोड़े होने बहुत जरूरी हैं, उसने कहा अब देखो, अब नदी पार नहीं हो सकते और रात इस जंगल में बितानी पड़ेगी और जीवन का खतरा है। और अब मैं तुम्हें बताता हूं कि पास में पैसे होना कितने जरूरी है? पहला फकीर हारता हुआ मालूम पड़ा, दूसरे फकीर ने पैसे निकाले, नाव वाले को पैसे दिए, वे तीनों फकीर नदी को पार कर गए।
नदी पार करके पैसे वाले फकीर ने कहा, कि देखा तुमने, तब फिर वह तीसरा फकीर हंसने लगा, उन लोगों ने पूछा आप हंसते क्यों हैं? और उस फकीर ने कहा

कि मैं इसलिए हंसता हूं, कि पैसे का होना भी जरूरी है, और छोड़ देना भी जरूरी है। पैसे थे, पैसों से तुम नदी पार नहीं हुए हो, पैसे न होते, तो भी तुम नदी पर नहीं हो सकते थे। पैसे थे, तो भी तुम नदी पार नहीं होते, अगर तुम कहते कि पैसे छोड़ने को हम राजी नहीं हैं। तुम नाव वाले को पैसे देने को राजी हुए, पैसे थे और पैसे छोड़े जा सके, इसलिए तुम नदी पार हो गए हो। मैं तब इसलिए हंसा था कि तुम दोनों गलत हो। पैसे का न होना, साधन खो देना है, पैसे का होना और पैसे को पकड़ लेना साधन को पकड़ लेना है। ठीक वैसी ही हालत शिक्षा के संबंध में भी है। मैं उन दोनों तरह के लोगों के पक्ष में नहीं हूं। जो लोग आदमी को पागल की तरह शिक्षित करते चले जाना चाहते हैं, बिना इस बात की फिकर किए कि शिक्षा की सीढ़ी पर चढ़ाकर तुम आदमी को शिक्षा की सीढ़ी से उतार सकोगे या नहीं? अगर नहीं उतार सके, तुम आदमी को पागल कर दोगे। दुनिया के अधिक शिक्षा शास्त्री आदमी को बस शिक्षित करते चले जाना चाहते हैं। इसकी कोई फिकर नहीं है कि जिस साधन पर हम चढ़ते हैं, एक दिन उसे छोड़ देना पड़ता है। जीवन में सारे साधन छोड़ देने पड़ते हैं। शिक्षा साध्य नहीं है, वह कोई एंड नहीं है, वह सिर्फ मीन्स है, और सब मीन्स छोड़ने की क्षमता होनी चाहिए। और जिस मीन्स को छोड़ने की क्षमता आदमी खो देता है, वह परेशानी में पड़ जाता है, क्योंकि मीन्स छोड़ने के लिए ही है, ताकि एंड पाया जा सके। एक आदमी पैसे कमाता है और कंजूस की तरह पकड़ कर बैठ जाता है, फिर उनको छोड़ता नहीं, वह आदमी पागल हो गया। क्योंकि पैसे का उपयोग पैसे को छोड़ने में था। पैसे को इकट्ठा इसलिए किया जाता है ताकि छोड़ा जा सके। यह बात बड़ी उल्टी मालूम पड़ती है। लेकिन पैसे को इकट्ठा करने का यही अर्थ है कि उसे छोड़ा जा सके।
अमीर होने का एक ही मजा है कि गरीब होने की क्षमता कायम रहती है। छोड़ा
जा सके। और अगर छोड़ा न जा सके, तो पैसा व्यर्थ हो गया। क्योंकि पैसे की उपयोगिता उसके छोड़ने से फलित होती थी। जीवन के सारे साधन छोड़े जा सकें, तो ही सार्थक हैं, अगर पकड़ कर बैठ जाएं तो सार्थक नहीं र्हैं। शिक्षा भी साधन है, लेकिन दुनिया में धन को पकड़ने वाले को तो हम कहेंगे कि यह कंजूस है, लेकिन शिक्षा से मिले ज्ञान और प्रमाण पत्रों को पकड़ने वालों को कोई कंजूस नहीं कहता। वे भी कंजूस हैं, किसी भी तरह के साधन को पकड़ लेना कंजूसी है। कंजूसी मूलतः है। वह इस बात का सुबूत है, कि साधन का जो उपयोग था, वही व्यर्थ हो गया। वह छोड़ने के लिए था, तो उसका मजा था, उसको पकड़ कर बैठ गए। दुनिया में जो लोग शिक्षा को बढ़ाया जाने की पागल दौड़ में हैं, वो कहते हैं कि आदमी को बस शिक्षित करते रहो, बिना इस बात की फिकर किए कि आदमी को किसलिए शिक्षित किया जाता है?
अब वे सोचते हैं रूस में, सारी दुनिया में सोचना पड़ेगा क्योंकि इतना ज्ञान का भंडार इकट्ठा हो गया है, कि दस पंद्रह साल बच्चों को पढ़ाने से उसे ट्रांस्फर नहीं किया जा सकता। अब वो जमाने गए, कि बच्चों को हम चार क्लास पढ़ा देते थे, और पुरानी पीढ़ी का सारा ज्ञान हस्तांतरित हो जाता था। अब पच्चीस और तीस साल तक आप युनिवर्सिटी में बच्चों को पढ़ाते रहें, वो पीएच डी होकर निकलें, तब भी पुराने जमाने में प्राइमरी का बच्चा, अपनी पुरानी पीढ़ी की सारी ज्ञान की स्थिति उपलब्ध कर लेता था, आज की पीएचडी को पार किया हुआ लड़का भी पुरानी पीढ़ी के सारे ज्ञान को उपलब्ध नहीं कर लेता। आज का पीएचडी पुराने प्राइमरी ज्ञान के मुकाबले भी खड़ा नहीं हो सकता है। इस तुलना में कि पुरानी पीढ़ी के पास इतना कम ज्ञान था देने को कि प्राइमरी की शिक्षा में वह बात पूरी हो जाती थी। अब बड़े खतरे की बात है अगर पच्चीस या तीस साल में एक युवक पीएच डी होकर निकले और उसके पास क ख ग है अभी, उसकी पुरानी पीढ़ी ने जितना ज्ञान अर्जित किया है, वह उसको संक्रमित नहीं हो पाया है। तब तो बड़ा खतरा है। प्रति सप्ताह कोई सात हजार नये ग्रंथ प्रकाशित हो जाते हैं, प्रति दिन एक हजार नये ग्रंथ सारी दुनिया में प्रकाशित हो रहे हैं। इन सात हजार नये ग्रंथों को हम नई पीढ़ी को कैसे दे पायेंगे? यह ज्ञान इतनी तीव्रता से बढ़ रहा है, इतनी दिशाओं में बढ़ रहा है कि करीब-करीब ऐसी हालत हो गई है कि आज दुनिया में कोई भी एक आदमी नहीं है, जो यह कह सके कि मैं सारे जीवन के अलग-अलग ज्ञानों के संबंध में थोड़ी बहुत भी जानकारी रखता हूं। जितना ज्ञान बढ़ता है, उतना ही एक शाखा और प्रशाखा,

इस्पेशलाइजेशन, एक छोटी सी चीज के बाबत जानकारी बढ़ती है, शेष सारी चीजों के बाबत अंधकार हो जाता है।
मैंने एक मजाक सुना है। पचास वर्ष बाद इक्कीसवीं सदी में, एक आदमी एक डाक्टर की दुकान पर जाता है और उससे कहता है कि मेरी आंख खराब है, आप आंख के डाक्टर हैं, मैंने बाहर पट्टी देखी है, कृपा कर मेरी आंख की जांच कर लें, वह डाक्टर पूछता है, पहले यह बताएं आपकी बाईं आंख खराब है, या दाईं आंख, मैं सिर्फ दाईं आंख का डाक्टर हूं। बांई आंख का डाक्टर थोड़ी आगे जाकर, चौराहे पर रहता है।
इस बात की संभावना है। एक जमाना था, एक आदमी डाक्टर होता था, आंख का या कान का नहीं होता था। डाक्टर होना काफी था, इतना कम ज्ञान था। एक आदमी डाक्टर होता था, वह आंख भी देखता था, कान भी देखता था, पैर भी देखता था, पेट भी देखता था। फिर इतना ज्ञान बढ़ता चला गया कि आज तो आंख के संबंध में इतना ज्ञान है कि एक आंख का डाक्टर भी पूरा आंख के संबंध में जो भी उपलब्ध हुआ है, उसको समझ नहीं सकता। न अध्ययन कर सकता है, न खोज कर सकता है। इस बात की बहुत संभावना है कि हमें आंख के भी विभाजन करने पड़ें और आंख के भी स्पेश्लाइजेशन के अलग-अलग क्षेत्र खोज लेने पड़े। यह खतरा रोज बढ़ता चला जाता है।
एक जमाना था कि फिलोसफी अकेला शास्त्र थी। फिर फिलॉसफी के टुकड़े होने शुरु हुए। फिर साइंसिज बनीं, अब एक-एक सांइस के छोटे टुकड़े होने शुरु हुए। अब छोटे टुकड़ों के भी छोटे टुकड़े होने शुरु हुए। और धीरे-धीरे यह मालूम होता है कि चीजें इतनी विशाल हैं और इतनी रहस्यपूर्ण हैं कि हम टुकड़े करते चले जायेंगे, और धीरे-धीरे हर आदमी कुछ जानेगा, लेकिन कोई भी आदमी पूरे को नहीं जानेगा। और जीवन पूरा अस्त-व्यस्त हो जाएगा। और जीवन अस्त-व्यस्त होता चला जा रहा है। सारी दुनिया के वैज्ञानिक और शिक्षाशास्त्री इस संबंध में चिंतित हैं कि सारे ज्ञान का समुच्चय कैसे हो? एक आदमी आंख के संबंध में जानता है, एक आदमी नाक के संबंध में जानता है, एक आदमी कान के संबंध में जानता है, और तीनों आदमी दूसरे के संबंध में कुछ भी नहीं जानते। और आदमी कुछ ऐसा है कि उसमें नाक भी है, कान भी है, आंख भी है, वो तीनों इकट्ठे हैं। और उन तीनों के ज्ञान का समुच्चय कैसे हो कि हम पूरे आदमी के बाबत कुछ जान सकें। असंभव होता जा रहा है। अब इस बात की फिकर करनी जरूरी होगी कि बच्चों को यह सारा ज्ञान किस प्रकार दिया जाए? तो रूस में वो साचते हैं कि अब बच्चों के पैदा होने के बाद, पाचं साल भी खराब नहीं किए जा सकते। उनको पांच साल में भी कुछ न कुछ शिक्षा दी जानी चाहिए। और अब वे यह कहते हैं कि बच्चों की नींद का समय भी व्यर्थ नहीं खोया जा सकता। उनको स्लीप टीचिंग की भी व्यवस्था होनी चाहिए, नहीं तो हम यह ज्ञान दे नहीं सकते। तो अब वे इस बात की फिक्र में लगे हुए हैं, रात जब बच्चा सोया हो तो टेप-रिकार्डर से रात भर फोन लगा रहे, और टेप-रिकार्डर रात भर उसको शिक्षा देता रहे। वह नींद में भी रहे, और उसके मन में विचार और ज्ञान डाला जाता रहे। अब वे यह भी कह रहे हैं कि इतने से काम नहीं चलेगा कि तीस और पच्चीस में कोई युवक विदा हो जाए, युनिवर्सिटी से। इतने से काम नहीं चलेगा। ज्ञान इतनी तेजी से बढ़ रहा है कि हर चार-पांच साल में बदल जाता है। पांच साल पहले के आदमी को हम अज्ञानी कह सकते हैं। आज पश्चिम में बड़ी किताबें लिखना बहुत मुश्किल हो गया है, अगर कोई आदमी कोई बड़ी किताब लिखना चाहता है, तो नहीं लिख सकता, क्योंकि बड़ी किताब लिखने में वर्ष-दो वर्ष लग जाते हैं, दो वर्ष में किताब आउट आफॅ डेट हो जाएगी। इसलिए छोटी किताबें लिखने पर पश्चिम में जोर बढ़ गया है, एकदम बड़ी किताब नहीं लिखी जा सकती। क्योंकि आप जब तक किताब लिखेंगे तब तक जो अपने इकट्ठी की, मेहनत की वह तब तक आउट ऑफ डेट हो जाएगी इंफार्मेशन, तब तक नये ख्याल आ जाएंगे, नई खोजें हो जाएंगी। तो छोटी-छोटी किताबें प्रकाशित हो रही है, छोटे पीरियाडिकल्स प्रकाशित हो रहे हैं ताकि जो ज्ञान है, वह अभी ताजा लोगों तक पहुंच जाए, नहीं तो वह पहुंच नहीं सकेगा। और इस ज्ञान का इतना तीव्रता से भार बढ़ता जा रहा है, कि इन बच्चों को कैसे इसे दिया जा सके, इस बात की संभावना मालूम पड़ती है कि हम बहुत उपाय खोजेंगे, इसको ट्रांसफर करने के। एक अंतिम उपाय जिसके बाबत चर्चा चलती है,

वह यह है कि जो शिक्षित बहुत शिक्षित लोग मरते हैं, अगर उनकी माइंड की पूरी मैमोरी को, नये बच्चों को दिया जा सके, तो ही ज्ञान ट्रांसफर हो सकता है, नहीं तो नहीं हो सकता।
जैसे आइंस्टीन मरे, तो मरते वक्त आइंस्टीन की खोपड़ी के सारे मांस-मज्जा के हिस्से को उस सारे हिस्से को जहां स्मृति संगृहीत होती है, उस पूरे हिस्से को निकाल कर अगर नये बच्चे में ट्रांसप्लांट किया जा सके, तो आइंस्टीन ने जो जाना था वह ट्रांसप्लांट हो सकता है। इसकी संभावना है, वह ट्रांसप्लांट हो सकता है। इस बात की पूरी संभवना है कि स्मृति का पूरा का पूरा रील, जैसा कि टेप-रिकार्डर में पूरी रील है, वैसी स्मृति की पूरी की पूरी रील नये बच्चों को दी जा सकती है। लेकिन वे नये बच्चे जन्म से ही बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे। इस बात की कल्पना करनी बहुत मुश्किल है कि छोटे से बच्चे को आइंस्टीन की खोपड़ी मिल जाए तो वह कितनी मुश्किल में पड़ जाएगा? मैंने एक लड़की देखी है, उस लड़की को मेरे पास लाए थे। उसे अपने तीन जन्मों की स्मृतियां याद हैं। उस लड़की की उम्र मुश्किल से जब वे मेरे पास लाए थे, तो कोई बारह वर्ष थी। लेकिन उस लड़की को देख कर, उसकी आंखों को देख कर आपको लगेगा कि उसकी उम्र नब्बे वर्ष है। वह इतनी परेशान जैसे नब्बे वर्ष बूढ़ी हो सकती है। उसको तीन जन्मों की स्मृतियां हैं। आदमी बूढ़ा होता है, स्मृति से। आदमी शरीर से बूढ़ा नहीं होता, शरीर का बुढ़ापा बहुत गौण हैं, असली बुढ़ापा आता है स्मृति से। नब्बे वर्ष की याददाश्त, उसके प्राणों को मथे डाल रही है। इसी जीवन की चिंता नहीं है उसे, पिछले जीवन की भी चिंता है। उसने तीनों जन्मों के अपने पिछले परिवार के लोगों से संबंध स्थापित कर लिए, वे सारे परिवार उसने खोज लिए, अब उसकी बड़ी मुश्किल हो गई। वह पिछले जन्म में किसी की पत्नी थी, उस आदमी से उसका मोह अभी जिंदा है। पिछले जन्म में उसके बेटे थे, बेटियां थीं, उनसे उसका मोह जिंदा है। उसके दामाद हैं, उनसे उसका मोह जिंदा है। पिछले जन्म के मोह जिंदा हैं, नये जन्म के नये मोह पैदा हो गए और तीसरे जन्म के भी मोह की हलकी झलक उसके भीतर मौजूद है। उन सारी चिंताएं उसके प्राणों को घेरती हैं। वह अभी से उदास और परेशान हो गई। वह अभी से घबरा गई है। मैंने उसके मां-बाप को कहा कि तुम इसकी स्मृति को भुलाने की कोशिश करो, अन्यथा यह लड़की पागल हो जाएगी। यह लड़की है ही नहीं, वह खेल नहीं सकती, क्योंकि हमें ऊपर से दिखाई पड़ता है, वह बारह साल की है, भीतर से तो वह नब्बे साल की है। उसे खेल-खिलौनों में कोई रुचि नहीं है। उसे स्कूल में पढ़ने जाने में, बड़ी बेचैनी और परेशानी होती है, वह यह मान ही नहीं सकती कि वह छोटी है।
अगर किसी भी दिन हमने बूढ़े गुजरने वाले लोगों की प्रतिभा और स्मृति
को बच्चों में ट्रांसप्लांट किया, तो बच्चे बहुत मुसीबत में पड़ जाएंगे। लेकिन बच्चों की मुसीबत से हमें कोई मतलब ही नहीं है। बच्चों की मुसीबत से हमें क्या करना है? हमें तो बच्चों को शिक्षित करते चले जाना है। लेकिन किसलिए? शिक्षा किसलिए, हम बच्चों को किसलिए घोटते चले जाएं और उनके दिमाग में कुछ भी भरते चले जाएं? छोटा सा बच्चा स्कूल जाता है, किसी को दया नहीं आती। इतनी किताबें लादे हुए है, जितना उसका खुद का वजन नहीं है। वह दाबे चला जा रहा है। इससे मतलब क्या है हमें? सवाल है शिक्षित करना है। जैसे कि शिक्षित करना, अपने आपमें कोई लक्ष्य हो। क्या परिणाम होगा इसको शिक्षित करने का? अगर इसको हम सिर्फ शिक्षित करने में समर्थ हो गए और हमने सारी इंफार्मेशन इसके दिमाग में भर दी, तो हम सिर्फ इसको, बेचैन, अशांत और परेशान कर देंगे और कुछ भी नहीं। जो कपड़े पहनाते हैं हम लोगों को, उन कपड़ों को उतारने की संभावना होनी चाहिए, अन्यथा आदमी कभी भी निश्चितं नहीं हो सकता। अगर आपको लोहे के कपड़े पहना दिए जायें, जिनको आप कभी न उतार सकें, तो आपकी मौत हो गई। सोएंगे बिस्तर पर और कपड़े छाती से सटे रहेंगे, चलेंगे रास्ते पर और कपड़े छाती से सटे रहेंगे, उनको आप कभी नहीं बदल सकते। कपड़े इसीलिए आरामदायक हैं कि आप उनको उतार कर रख सकते हैं और सो जाते हैं, मेरी अपनी दृष्टि में वही शिक्षा सम्यक है, जिसे आदमी कपड़ों की तरह उतारकर कभी भी रख दे, और अशिक्षित हो जाए। और चौबीस घंटे में अगर घंटे-दो घंटे को वह अपने सारे ज्ञान के बोझ को एक तरफ न रख सके, तो उस आदमी की हम जान ले लेंगे।

वह आदमी जिंदा नहीं रह सकेगा, विक्षिप्त हो जाएगा। और सारी मनुष्यता धीरे- धीरे विक्षिप्त हो रही है। सारी मनुष्यता धीरे-धीरे पागल होती जा रही है। मैं क्या कहना चाहता हूं, मैं यह कहना चाहता हूं, बच्चों को इस भांति शिक्षित करें कि शिक्षा उनका लक्ष्य न बन जाए, जीवन का लक्ष्य न मालूम पड़ने लगे। आज तो ऐसा ही मालूम पड़ता है कि शिक्षा जीवन का लक्ष्य है। किसी बच्चे से पूछो, तुम क्या? वह कहता है मैं पढ़ना चाहता हूं। किसलिए पढ़ना चाहते हो? मां-बाप पढ़ाने में लगे हैं, शिक्षक पढ़ाने में लगे हैं। बच्चे पढ़ने में लगे है, लेकिन ये सब इतना बड़ा कारोबार किसलिए चल रहा है? बहुत जान लेना अपने आप में सार्थक नहीं है। जानना तभी सार्थक है, जब वह जीने में सहयोगी बनता हो, बाधा न बन जाता हो। जानने का और कोई अर्थ नहीं है, वह जीने में सहयोगी बनना चाहिए। शिक्षा जीने में सहयोगी बन रही है या जीने में बाधा डाल रही है? लेकिन हम देखते ही नहीं चारों तरफ। देखेंगे तो यह स्पष्ट सूत्र खयाल में आ सकते हैं। पहला सूत्रः बच्चे को इस भांति शिक्षित किया जाना चाहिए कि वह हर हालत में शिक्षित होकर भी शिक्षा के वस्त्रों को उतार कर रखने में समर्थ हो, किसी भी क्षण। और किसी भी क्षण नई चीज को समझने के लिए शिक्षा की सारी की सारी धारा को एक तरफ कर सके, हटा सके। नये बच्चे की तरह खड़ा हो सके। वह जो लर्निंग है, उसको हटा सके कभी भी और अनलर्निंग में खड़ा हो सके।
रमन महर्षि के पास एक जर्मन विचारक आया और उसने पूछा कि मैं कुछ सीखना चाहता हूं, परमात्मा के संबंध में। रमन महर्षि ने कहा, फिर बाद में आना, पहले तुमने जो सीखा हो संसार के विषय में, उसको अनसीखा कर आओ। वह अनलर्न कर आओ। क्योंकि अगर तुम लर्निंग को लेकर आते हो, तो फिर परमात्मा को नहीं सीख सकते। क्योंकि जिसके दिमाग में यह ख्याल है कि मैं जानता हूं, उसका दिमाग सख्त हो जाता है। फ्लैक्सिबल नहीं रह जाता। जिसके दिमाग में यह ख्याल है कि मैंने जान लिया, मैंने पा लिया, मैंने सीख लिया, मैं युनिवर्सिटी हो आया, मेरे पास पदवियां हैं, पद हैं, उपाधियां हैं। उस आदमी का मन सब तरफ से द्वार बंद कर लेता है, वह क्लोज्ड हो जाता है। अब वह कुछ भी नहीं सीख सकता। और जो हम सिखाते हैं, वह कचरा है, और जो हमें सीखना है, वह अमृत है। वह सीखने से वंचित रह जाते हैं। अगर विश्वविद्यालय किसी दिन अपनी सीढ़ियों से विदा करते हुए विद्यार्थियों को यह कह सकें कि तुम यह मत भूल जाना कि तुमन जो सीखा है, वह कुछ भी नहीं है, लेकिन यह आखिरी घड़ी में नहीं कहा जा सकता, यह पहले दिन से ही सिखाना जरूरी है। सिखाओ भी, और इतना भी मत सीख लेने दो, वह पकड़ जाए, जड़ हो जाए। सिखाओ भी, लेकिन इस भांति मत सिखाओ कि वह संस्कारित हो जाए, कंडीशनिंग बन जाए, सिखाओ भी लेकिन सीखने को पार करने की क्षमता भी दो। उसे ट्रांसेंट कर सके, वह उसे पार कर सके। वह सब सीख ले और भूल सके, फिर अनसीखा खड़ा हो जाए, ताकि जिंदगी और नई चीजें सिखाने को आए, तो उसके द्वार खुले हों, उसका माइंड एक आपनिंग हो, एक खुलापन हो। वह क्लोज्ड न हो जाए। शिक्षित आदमी से ज्यादा क्लोज्ड आदमी खोजना बहुत मुश्किल है। शिक्षित आदमी को कुछ बात समझाना ही मुश्किल है। वह इतना समझा हुआ है कि बहुत मुश्किल हो जाता है।
जर्मन में एक संगीतज्ञ था, वेजनर। वेजनर बहुत अजीब आदमी था, उसने अपने दरवाजे पर एक तख्ती लगा रखी थी कि जो लोग संगीत पहले से सीखे हुए हों, वह कृपा करके इस भवन के भीतर न आएं। लोग बहुत हैरान होते, उसके पास दूर-दूर से लोग सीखने आते। एक दूर से संगीतज्ञ सीखने आया था, वेजनर के पास। उसने जाकर कहा, आपने यह क्या तख्ती लगा रखी है कि जो लोग संगीत पहले से सीखे हुए हैं, भीतर न आएं। वेजनर ने कहाः जो सीखे हुए हैं, उन्हें सिखाया नहीं जा सकता। आना फिजूल है। और अगर कोई आता है, तो जो सीखा हुआ है, उससे मैं दोहरी फीस लेता हूं, जो कुछ भी नहीं सीखा हुआ है, उससे मैं आधी फीस लेता हूं। जो सीखा हुआ है, उससे दुगनी फीस लेता हूं। क्यों? वह संगीतज्ञ पूछने लगा, क्यों? वेजनर ने कहा कि पहले मुझे भुलाना पड़ता है, जो सीखा हुआ है आदमी। भुलाने में मेहनत करनी पड़ती है, उसकी फीस अलग, जब वह भूल जाता है, फिर कोरी किताब हो जाता है, फिर कुछ नई बात लिखी जा सकती है। क्या यह हो सकता है कि बच्चे की किताब सीखने के बाद भी कोरी बनी रहे? अगर यह नहीं हो सकता तो शिक्षा

असफल हो जाएगी। मुझे लगता है कि यह हो सकता है। यह बिल्कुल हो सकता है कि हम सिखायें भी और बच्चा सीखे भी, और फिर भी कोरा रह जायए। जाने भी लेकिन जानने का अहंकार मजबूत न हो। सीखे भी, लेकिन सीख गया, पहुंच गया, ऐसी भ्रांति पैदा न हो। यात्रा जारी रहे, और उसे ध्यान रहे बहुत कुछ सीखने को शेष है, बहुत कुछ सीखने को शेष है। ऐसा कुछ सीखने को शेष है, जिसे विद्यालय में कभी सिखाया नहीं जा सकता। जिसे कोई शिक्षक कभी सिखा नहीं सकता। जिसे कोई मां-बाप कभी सिखा नहीं सकते। ऐसा कुछ शेष है, जो खुला हुआ मन जिंदगी की चारों तरफ की हवाओं से पकड़ता है, और सीखता है। ऐसा कुछ शेष है, जो चांद-तारे और सूरज सिखाते हैं। ऐसा कुछ शेष है, जो अदृश्य उतरता है। लेकिन वह उतरता है उस मन में, जिसके द्वार खुले हैं। जिसके द्वार बंद हैं उस मन में वह नहीं उतरता है।
शिक्षा होनी चाहिए, लेकिन पत्थर की तरह नहीं। पानी की तरह। पत्थर पर लकीरें हम खींचते हैं वे मजबूत हो जाती हैं, पानी पर भी लकीरें खींचते हैं, खींचते भी नहीं कि विलीन हो जाती हैं, मिट जाती हैं। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, पत्थर की तरह मजबूती से पकड़ न ले आदमी को, पानी की तरह लकीर खींचे और खो जाए। आदमी जान ले और फिर भी जानने का भ्रम और अहंकार पीछे न छूट जाए। जिस दिन हम विश्वविद्यालय से विनम्र लोगों को निकाल सकेंगे, उस दिन शिक्षा सार्थक हो सकती है। वह तो पुराने ऋषियों ने कहा था कभी कि विद्या वही है, जो विनम्रता सिखाए, लेकिन ऐसी विद्या दुनिया में कहीं नहीं, जो विनम्रता सिखाती हो। अगर विद्या विनम्रता न सिखाए तो विद्या ही नहीं है अविद्या हो गई। और हमारी सारी विद्या, विनम्रता छीनती है, सिखाती नहीं है। सिखाती है अहंकार। सिखाती है मजबूत ईगो।
तो मैं तो निरंतर यह कहता हूं कि हमारे विद्यालय अविद्यालय हैं, अभी विद्यालय उन्हें बनना है, अभी वे बन नहीं सके हैं। जहां अहंकार मजबूत होता हो, वह विद्यालय नहीं है। जहां अहंकार क्षीण होता हो, टूट जाता हो, वह विद्यालय है। लेकिन कैसे यह हो सकता है? इसे होने के लिए बिल्कुल नये तरह का शिक्षक चाहिए। क्योंकि शिक्षक अभी कहता है कि मैं जानता हूं। और मैं तुम्हें सिखाता हूं। वह जो शिक्षक का यह भाव है कि मैं जानता हूं, और सिखाने वाला हूं; यही भाव बच्चों के मोम जैसे मन पर मजबूती से पकड़ता जाता है। कल वे भी इन्हीं बातों को जान लेंगे, और अपने से छोटों से कहेंगे कि हम जानते हैं, हम तुम्हें सिखाते हैं। नहीं शिक्षक को भी कहना चाहिए, मैं भी खोज रहा हूं तुम्हारे साथ, तुमसे दो कदम आगे हूं, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मैं जानता हूं।
हम रास्ते पर चल रहे हैं, कोई चार कदम पीछे है, कोई चार कदम आगे है। जो चार कदम आगे है उसे चार कदम आगे की चीजें दिखाई पड़ती हैं, लेकिन अज्ञान उसका भी उतना ही घना है, जो चार कदम पीछे है, क्योंकि जिंदगी बहुत रहस्यपूर्ण है। शिक्षक को यह भ्रम छोड़ देना चाहिए कि मैं जानता हूं। इतना ही पर्याप्त है कि मैं तुमसे दो कदम आगे हूं, और वो दो कदम आगे होना भी कोई अहंकार नहीं है। वह केवल जन्म का संयोग है कि मैं तुमसे दो दिन पहले पैदा हो गया हूं। इससे ज्यादा और कोई संयोग नहीं है। शिक्षक का अहंकार नहीं टूटता है, तो हम विद्यार्थी के अहंकार को कभी नहीं तोड़ सकेंगे। और शिक्षक में भारी अहंकार है। दुनिया भर के शिक्षक में भारी अहंकार है कि वह जानता है। क्या जानते हैं हम? कुछ भी नहीं जानते हैं। कुछ भी हमें पता नहीं है। जिंदगी के असली रहस्यों का हमें क ख ग भी मालूम नहीं है। नहीं लेकिन कुछ हमने सीख लिया है और जिन्होंने हमें सिखाया था, उन्होंने भी दावे से कहा था कि वे जानते हैं। हालांकि हमें अब तक पता चल गया होगा कि वह जानना किसी बड़े मूल्य का नहीं है। सिर्फ रोटी-रोजी मिल जाती है। और जिस ज्ञान से सिर्फ रोटी-रोजी मिलती हो, उस ज्ञान का मूल्य उतना ही हो सकता है, जितना रोटी-रोजी का मूल्य होता है। ज्ञान से मिलना चाहिए जीवन, ज्ञान से मिलना चाहिए अमृत, ज्ञान से मिलना चाहिए परमात्मा। वह तो नहीं मिलता। लेकिन वह भ्रम नहीं छूटता। अपने से छोटे बच्चों के सामने फिर यह अकड़ आ जाती है कि मैं जानता हूं। वे बच्चे बेचारे विरोध भी क्या कर सकते हैं। वे मान लेते हैं कि आप जानते होंगे, आप जब कहते हैं तो जानते ही होंगे। नहीं, शिक्षक को

विनम्र होना पड़ेगा और निवेदन करना पड़ेगा, मैं भी खोज रहा हूं। तुम से दो कदम आगे हूं उम्र में, तुमसे थोड़े दिन ज्यादा खोज की है, लेकिन मैं भी पहुंच नहीं गया हूं। यह पहुंच जाने का भ्रम टूट जाना चाहिए शिक्षक के मन से, तो बच्चे में भी विनम्रता की संभावना पैदा होगी। अन्यथा बच्चा भी विनम्र नहीं हो सकता। शिक्षक भी सीख रहा है। शिक्षक सिखा ही नहीं रहा है, और मजा तो यह है कि जितना जब कोई हमें सिखाता है तब हम नहीं सीख पाते, जितना हम तब सीख पाते हैं, जब हमें किसी को सिखाना पड़ता है। शिक्षक भी सीख रहा है। वह सिर्फ बड़ी उम्र का विद्यार्थी है, विद्यालय में। उसकी एक और तरह की शिक्षा शुरु हुई है। लेकिन शिक्षक कोई भी नहीं है। सब शिक्षार्थी हैं, और सब सीख रहे हैं।
अगर यह संभावना पैदा हो सके, और शिक्षक के अहंकार को हम विदा कर सकें,
तो बच्चों में उसकी प्रतिछवि पैदा होनी बंद हो जाएगी, और तब बच्चे भी सीखेंगे, लेकिन सीख नहीं जाएंगे; जितना जानेंगे, उतना अंजाना द्वार खुलता चला जाएगा। जितना प्रवेश करेंगे, उतना ही पता चलेगा कि पहुंचना बहुत मुश्किल है। सागर में कूद जाना आसान है, लेकिन फिर दूसरा किनारा पा लेना मुश्किल है। ज्ञान के सागर में भी कूदना आसान है, दूसरा किनारा नहीं मिलता। और जिनको खयाल है कि हम दूसरे किनारे पर पहुंच गए हैं, वे ध्यान रखें कि जहां तक सौ में निन्यानबे संभावना यह है कि वे कूदे ही नहीं हैं। और पहले ही किनारे पर खड़े हुए हैं। कूदने वाला आदमी तो यह कहेगा कि मुश्किल है पहुंचना, अनंत है सागर, नहीं पहुंचता हूं, कूद तो गया हूं; पहुंचता नहीं हूं। डूब तो गया हूं, भीग तो गया हूं, पहुंचता नहीं हूं। लेकिन जो आदमी कहता है, पहुंच गया हूं, सौ में निन्यानबे मौके यह हैं कि उस किनारे से भी नहीं कूदा है। वह पहले किनारे पर ही खड़ा है, और सोच रहा है कि दूसरे किनारे पर पहुंच गए हैं।
सारे शिक्षा के जगत में, एक अदभुत अहंकार शिक्षक को पकड़े हुए है। उस अहंकार की प्रतिध्वनियां बच्चों के प्राणों में गूंजनी शुरु हो जाती है, फिर हम चिल्लाते हैं कि बच्चे आज्ञा नहीं मानते, अहंकार ने कभी किसी की आज्ञा मानी है? अहंकार को मजा आता है, आज्ञा तोड़ने में। अहंकार को आज्ञा मानने में मजा नहीं आता। और अहंकार को मजा आता है, आज्ञा मनवाने में। शिक्षक का अहंकार है कि आज्ञा मनवाए, और विद्यार्थी का अहंकार है कि आज्ञा को तोड़े। और जो शिक्षालय सिर्फ अहंकार को जन्म देते हों, वहां कभी भी अनुशासन नहीं हो सकता है। अहंकार से ज्यादा डिस्टर्बिंग, अहंकार से ज्यादा अनुशासन को तोड़ने वाला, कोई तत्व नहीं है। लेकिन शिक्षक यह मानने को और देखने को राजी नहीं है कि उनके अहंकार का ही प्रतिबिंब बच्चों के व्यक्तित्व में बनना शुरु होता है। और फिर जितनी वो कोशिश करते हैं दबाने की, उतना ही दबना मुश्किल होता चला जाता है। हां पुराने जमाने के बच्चे दब जाते थे, क्योंकि वे अशिक्षित घरों से आते थे। उनका अहंकार मजबूत नहीं होता था। अब बच्चे शिक्षित घरों से आ रहे हैं, उनके मां-बाप के पास भी शिक्षक जैसा ही शिक्षित होने का अहंकार है। अब इन बच्चों को दबाया नहीं जा सकता। अब ये जितनी शिक्षा बढ़ती चली जाएगी, उतनी ही अनुशासनहीनता अनिवार्यरूपेण बढ़ेगी। क्योंकि यह शिक्षा अहंकार को जन्माती है। अहंकार अनुशासनहीनता का स्वरूप है। अहंकार कभी भी अनुशासन मानने को राजी नहीं है। अहंकार का मतलब ही यह है कि किसी को मत मानना। और जब यह भाव मजबूत होता है, तो शिक्षक परेशान होता है। लेकिन परेशान होकर यदि वह सोचेगा, तो उसे पता चल जाएगा, उसका अहंकार ही बच्चों में प्रतिफलित होता है।
शिक्षक के अहंकार को विसर्जित हो जाना चाहिए। शिक्षक के अहंकार के विसर्जित होते ही, अगर शिक्षक विनम्र हो, इतना विनम्र हो कि कह सके कि मैं भी सीख रहा हूं तुम्हारे साथ। दावा नहीं करता हूं तुम्हें सिखाने का, सुझाव देता हूं। उपदेश नहीं करता हूं, जबरदस्ती तुम्हें समझा नहीं देना चाहता हूं। मैं जो कहता हूं वह सत्य ही नहीं है। मैं सिर्फ तुम्हारी प्यास जगाना चाहता हूं।
सुकरात कहता था, और सुकरात को मैं कहूंगा कि वह सुप्रीम टीचर है। वह जिसको हम कहें सुप्रीम मास्टर। जिसको हम कहें सच्चा शिक्षक। सुकरात कहता

था कि मैं क्या कर सकता हूं, मैं एक दाई की तरह हूं, मिडवाइफ की तरह, मैं तुम्हारे जन्म में सहयोगी हो सकता हूं, मैं तुम्हें जन्म नहीं दे सकता। मैं सिर्फ सहयोगी हो सकता हूं, जैसे एक दाई, एक मिडवाइफ एक बच्चे के जन्म में सहयोगी हो जाती है। वह ठीक कहता था, इतना ही विनम्र होना पड़ेगा शिक्षक को, वह बच्चे के जन्म में सहयोगी हो सकता है। जो भी मूल्यवान है वह बच्चे के भीतर से आएगा, शिक्षक नहीं दे सकता उसको। लेकिन वह सहयोगी हो सकता है। और वह जितना अच्छा सहयोगी होना चाहे, उतना ही विनम्र होना जरूरी है, जितना अहंकार होगा, उतना ही वह सहयोगी नहीं हो सकता। क्योंकि अहंकार कहता है कि दूसरे को अपनी छाया में ढालो। दूसरे को अपने जैसा बनाओ। आज तक दुनिया के सारे शिक्षक बच्चों को अपनी शक्ल में ढालने की कोशिश करते रहे हैं, और इसलिए दुनिया रोज बर्बाद से बर्बाद होती चली गई है। किसी बच्चे को, किसी की शक्ल में ढालने की जरूरत नहीं है, बच्चा अपना ईमेज, अपनी शक्ल लेकर पैदा हुआ है, हम सहयोगी हो सकें कि वह अपनी शक्ल पा सके, हमारा काम पूरा हो गया। फिर हमें चुपचाप हट जाना चाहिए, जैसे दाई हटा जाती है। बच्चे का जन्म हो गया, और दाई विदा हो गई। उसको फिर कोई और बीच में खड़े होने की जरूरत नहीं होती। शिक्षक हमेशा हटता हुआ होना चाहिए। वह सहयोगी हो सके और हट जाए। जब शिक्षक हटेगा, तो कल शिक्षा भी हट सकती है। और जब विनम्रता होगी, सीखने की विनम्रता होगी, सीखने का द्वार खुला होगा, तो हम एक ऐसा मनुष्य पैदा कर सकते हैं, जो शिक्षित भी हो, और जो अशिक्षित भी हो। जो जानता भी हो, और यह भी जानता हो कि बहुत कुछ है, जो मैं नहीं जानता हूं। इस बात का बोध कि मैं नहीं जानता हूं, अगर ज्ञान की पाठशालाएं दे सकें, तो हम मनुष्य को जीवन के परम सत्यों तक पहुंचाने में समर्थ हो सकते हैं। और वह विद्यालय जो मंदिर का भी द्वार नहीं बन जाता, बहुत खतरनाक है।
विद्यालय मंदिर का द्वार भी बन ही जाना चाहिए। लेकिन विद्यालय हमारा मंदिर का द्वार नहीं बन पा रहा। वह नहीं बनेगा। क्योंकि मंदिर के द्वार पर लिखा है, वे ही प्रविष्ट हो सकते हैं, जो नहीं हैं। मंदिर के द्वार पर लिखा है, वे ही प्रविष्ट हो सकते हैं, जो नहीं हैं। जिनको होने का खयाल है, मंदिर के द्वार में उनका काई भी प्रवेश नहीं है। और हमारी शिक्षा हर एक को समबडी, कुछ होने का खयाल से भर देती है। मंदिर के द्वार बंद हो जाते हैं। नहीं बहुत शिक्षित करने का सवाल नहीं है, इस भांति शिक्षित करने का सवाल है कि आदमी शिक्षित ही होकर न रह जाए। बहुत सूचनाएं भर देने का कोई प्रयोजन नहीं है, बहुत ज्ञान लादने का बहुत प्रयोजन नहीं है, थोड़ा सा ज्ञान जो नाव बन जाए, और जीवन के अंनद सागर में ले जाने लगे। पहाड़ न बन जाए, और आज वह पहाड़ बन गया है।
बुद्ध की एक छोटी सी घटना और अपनी बात मैं पूरी करूंगा।
बुद्ध एक दिन कहते थे अपने भिक्षुओं को कि मैंने आठ लोगों को नदी पार करते देखा, एक नाव में उन्होंने नदी पार की। फिर नदी पार करके वे सोचने लगे कि जिस नाव ने हमें इस पार तक पहुंचाया, उसे छोड़ना तो बड़ी अकृतज्ञता होगी, जिस नाव ने हमें नदी पार करवाई, उसे हम छोड़ दें यह तो बड़ी अधार्मिकता होगी, अनैतिकता होगी, तो वे सोचने लगे, हम क्या करें? तो उनमें से एक समझदार ने सुझाव दिया और समझदार हमेशा खतरनाक सुझाव देते हैं, उसने सुझाव दिया कि इस नाव ने हमें नदी पार करवाई, अब इस नाव को सिर पर हम ले चलें। क्योंकि जिस नाव ने हमें नदी पर करवाई, कृतज्ञतावश क्या हम उसे अपने सिर पर न ले चलें। लोगों ने कहाः यह तो बिल्कुल ठीक है, हम उस पर सवार हुए, अब उसको हम पर सवार होने दें। यह बिल्कुल गणित ठीक था, उन्होंने आठों आदमियों ने नाव सिर पर रख ली, और बाजार में चले। गांव में हर आदमी पूछने लगे, मित्रो! यह क्या हो गया? नाव पर आदमी देखे थे, आदमियों पर नाव नहीं देखी थी! क्या हो गया तुम्हें? वे कहने लगे, अकृतज्ञ हो तुम। आज तक किसी आदमी ने नाव के प्रति कृतज्ञता, ग्रेटीट्यूड न दिखाया, हम नाव पर सवार हुए थे, अब हम नाव को अपने पर सवार रखेंगे, यही कृतज्ञता की सूचना है।
बुद्ध कहने लगे, ऐसे आठ आदमी शायद खोजने मुश्किल हों, लेकिन जिंदगी में हर जगह ऐसे ही आदमी मिलेंगे, साधनों को सिर पर ढोते हुए। जिन साधनों से पार होना चाहिए और छोड़ देना चाहिए, उन साधनों को कृतज्ञतावश सिर पर लिए

हुए आदमी चलता है। शिक्षा एक साधन है, जरूरी है कि एक उम्र में उस नाव से गुजरा जाए, लेकिन यह भी जरूरी है कि नाव फिर छूट जाए, और नाव को पीछे लेकर न चला जाए। लेकिन गांव-गांव में, घर-घर पर आदम लिखे हुए है, अपना नाम छोटे में और बहुत बड़े अक्षरों में एम ए, एलएल बी, पीएच डी नाव ढो रहा है, बेचारा। सिर पर नाव रखे हुए है। कृतज्ञतावश। जितनी बड़ी नाव जिसके सिर पर है, वह उतना बड़ा आदमी है, छोटी नाव है आपके सिर पर, आप कुछ भी नहीं हैं। नाव बड़ी चाहिए। उपाधियों की, पदवियों की भारी नाव पीछे लिए हुए आदमी... लेकिन नाम के पीछे लिख लो कोई हर्जा नहीं है, क्योंकि तख्ती पर कुछ बोझ नहीं पड़ता। लेकिन मन के भीतर लिखा हुआ है, वह एम ए, पीएच डी और एलएल बी की डिग्रियां तख्तियों पर लिखी हों तो कोई हर्जा नहीं है, मन में पत्थर की तरह लिखी हुई हैं, आदमी उनको भूल ही नहीं पाता। सोते-जागते वह याद है। वह पकड़े हुए है। वे आगे की खोज को बंद कर देते हैं। क्या ऐसी शिक्षा हो सकती है कि आदमी शिक्षित भी हो, और शिक्षा के बोझ से भी न भरे। मैं इसी प्रश्न के साथ अपनी बात छोड़ दे रहा हूं। शिक्षक सोचें अगर हम ऐसी शिक्षा पैदा कर सकते हैं जो शिक्षा हो, लेकिन शिक्षा का भार न बने। एक ऐसी नाव जो नदी पार करवा देती हो, और हम उसे भूल जाते हों और आगे बढ़ जाते हों। तो शायद हम एक अच्छी दुनिया बनाने में समर्थ हो सकते हैं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सम्यक शिक्षा
चौथा प्रवचन

सभ्यता: हमारी शिक्षा का फल

मेरे प्रिय आत्मन्!
भविष्य की एक कथा से बात शुरू करना चाहता हूं।
अभी लिखी नहीं गई वह कथा, लेकिन आदमी जैसा चल रहा है, उसे देखते हुए लगता है, जल्द ही लिखी जाएगी। भविष्य के किसी पुराण में लिखी जाएगी। कथा है कि तीसरा महायुद्ध हो चुका, अभी हुआ तो दूसरा ही है। लेकिन आदमी को देख कर ऐसा नहीं लगता कि तीसरा नहीं होगा। प्रथम के बाद अनेक लोग सोचते थे, दूसरा महायुद्ध नहीं होगा, दूसरा हुआ। दूसरे के बाद अनेक लोग सेचते हैं, तीसरा नहीं होगा; लेकिन आदमी जैसा है उसे देख कर लगता है कि तीसरा हुए बिना नहीं रह सकता। तीसरा महायुद्ध हो चुका है, सारी मनुष्य-जाति नष्ट हो गई है। वे सारे भवन जो संस्कृति ने खड़े किए थे और वे सारे सपने जो सभ्यता ने निर्मित किए थे, धूल-धूसरित हो गए हैं। सारी पृथ्वी पर सिवाय धुएं के और आग के कुछ भी नहीं है। चारों तरफ मृत्यु है, सुनसान है। एक छोटे से वृक्ष पर एक बंदर बैठा हुआ है, उदास, चिंतित। सुबह की धूप निकल रही है, चारों तरफ धुआं है, चारों तरफ आग है, सब जल गया है। वह अपनी बंदरिया के पास बैठ कर कहता है, बहुत दुख से शैल बी बिगेन ऑल ओवर अगेन। क्या हमें दुनिया फिर से शुरु करनी पड़ेगी।
डार्विन होता और अगर यह बात सुन लेता, तो बहुत खुश होता। लेकिन डार्विन और उसके साथ मनुष्य की सारी सभ्यता कभी की समाप्त हो गई है, उस तीसरे महायुद्ध में। और बंदरों को सोचना पड़ रहा है, क्या हम फिर से शुरु करें? शैल बी बिगेन ऑल ओवर अगेन?
यदि मनुष्य नहीं बदलता है, तो किसी न किसी दिन बंदरों को यह सोचना पड़ेगा। अच्छा है कि बंदरों को सोचने की बजाय हम स्वयं सोचें कि हमने जो सभ्यता निर्मित की है, कहीं वह ऐसी तो नहीं है कि हम फिर से सब शुरु करें? और सभ्यता का प्राण है शिक्षा, और संस्कृति का आधार है शिक्षा। कहीं ऐसा तो नहीं है कि शिक्षा फिर से आमूल निर्मित हो? क्या यह जरूरत नहीं दिखाई पड़ती है? जिस भांति हम मनुष्य को शिक्षित करते रहे हैं आज तक, उससे किस तरह का मनुष्य पैदा हुआ है? आखिर कसौटी क्या है हमारी शिक्षा की, हमारी संस्कृति की? मनुष्य जो हमने पैदा किया है। इस मनुष्य को देख ेकर ऐसा लगता है कि जो शिक्षा हम देते रहे हैं, दे रहे हैं, वही शिक्षा योग्य है कि आगे भी हम देते रहें? जो भी हमें चारों तरफ दिखाई पड़ रहा है, सड़ा-गला समाज, हिंसा और ईर्ष्या से भरी हुई मनुष्य-जाति। क्रोध, तनाव और अशांति से भरे हुए मनुष्य के प्राण। ये चारों तरफ जो धुआं ही धुआं और अंधेरा ही अंधेरा है, और जीवन करीब-करीब मृत्यु से बदतर हो गया है, इसको देख कर यह शक, यह संदेह, यह जिज्ञासा नहीं जगती है मन में कि जो शिक्षा हम आज तक देते रहे हैं, और दे रहे हैं वो बुनियादी रूप से गलत तो नहीं है। क्योंकि मनुष्य ही कसौटी है उस शिक्षा की जो हमने उसे दी है। जो समाज हम निर्मित करते हैं, जो जीवन का फैलाव हमने किया है, अगर वह दुखपूर्ण है, अंधकारपूर्ण है और अगर वह नर्क जैसा बन गया है।
पुराणों में कहा है कि देवता पृथ्वी पर पैदा होने को तरसते हैं, अब नहीं तरसते होंगे। अब देवता प्रार्थना करते होंगे, सुबह-शाम कि हे भगवान! पृथ्वी पर मत भेज देना। मैंने तो यहां तक सुना है कि एक आदमी मर गया था, उसकी पत्नी बहुत उत्सुक थी कि अपने मरे हुए पति की आत्मा से कोई बातचीत कर ले। एक प्रेतात्मविद के पास वह गई और उसने कहा कि क्या यह हो सकता है कि मैं अपने पति की आत्मा से मैं बात कर सकूं? उस प्रेतात्मविद ने उसके पति की आत्मा को अंधकार में किसी मनुष्य के ऊपर बुलाया। उस पत्नी ने अपने मरे हुए पति से पूछा कि तुम जहां भी हो, सुख में तो हो। मैं बहुत चिंतित हूं। उसके पति ने कहा सुख में, मैं बहुत सुख में हूं एकदम आनंद में हूं। निश्चित ही पत्नी ने समझा कि पति स्वर्ग में है, उसने कहा और स्वर्ग के संबंध में कुछ बताओ? उसके पति ने कहा स्वर्ग? मैं नरक में हूं देवी। तो उसकी पत्नी ने

कहाः नरक में हो और कहते हो बहुत सुख में हूं। तो उसके पति ने कहा, पृथ्वी को देखने के बाद नरक ही देखने को मिला है, वह बहुत ही सुखद मालूम हो रहा है। यह जो हमने जीवन, यह जो हमने पृथ्वी बसा रखी है, क्या है हमारी संस्कृति और सभ्यता के पास? कौन सी सुगंध, कौन सा संगीत? ऐसे कौन से फूल हैं जो मनुष्य के जीवन में खिलते हैं, जिन्हें हम कह सकें कि हमारी शिक्षा ने उन्हें सींचा, उन बीजों को, उन फूलों को? ऐसी कौन सी सुगंध है, जो हमारे जीवन से उठती है कि हम कहें कि हमारे विश्वविद्यालयों ने, हमारे शिक्षालयों ने, ये फूल जन्माएं हैं। जीवन को देख कर ऐसा लगता है कि शिक्षा निश्चित ही गलत होनी चाहिए, अन्यथा जीवन ऐसा कैसे हो सकता है? आदमी जो है, वह शिक्षा के कारण है। और आदमी जो भी होगा, वह शिक्षा के कारण ही होगा। आदमी जो नहीं है, वह किसी शिक्षा के अभाव के कारण है।
शायद जरूर तुमने सुना होगा कि आज से कोई तीस वर्ष पहले बंगाल के जंगलों में दो लड़के पकड़ लिए गए थे, भेड़िए उठा कर ले गए थे उन बच्चों को, और भेड़ियों ने उन बच्चों को अपनी मांद में पाला था। उनकी उम्र दस और बारह वर्ष के करीब थी। जब शिकारी उन बच्चों को कलकत्ता लाए, बारह वर्ष का बच्चा भी दो पैर से खड़ा नहीं हो सकता था। क्योंकि भेड़ियों ने शिक्षा दी थी, उसे, वह चार हाथ-पैर से चलता था। छह महीने तक मुश्किल से प्रशिक्षण, मालिश, दवा सबका प्रयोग करके बामुश्किल उन बच्चों को खड़ा किया जा सका। छह महीने में। और फिर भी जैसे ही आंख चूके कि वे चारों हाथ-पैर से चलने लगें। एक शब्द नहीं बोल सकते थे, बारह वर्ष के बच्चे। भेड़ियों की आवाज कर सकते थे, क्योंकि उसकी ही उन्हें शिक्षा मिली थी। कच्चा मांस खा सकते थे, आदमी को नोच सकते थे, आदमी को कच्चा खा सकते थे; वही उन्होंने सीखा था। भेड़ियों की तरह तेज दौड़ सकते थे, उनके नाखून, उनके हाथ के पंजे आदमियों जैसे नहीं रह गए थे। उनको बहुत कोशिश की साल भर तक आदमी बनाने की उस कोशिश में वे दोनों मर गए। जिंदा रहना संभव नहीं हुआ। फिर अभी दो वर्ष पहले उत्तर प्रदेश में भी एक बच्चा पकड़ लिया गया, वह चौदह साल का था। अखबारों में तुमने नाम सुना होगा, राम, उसको नाम दे दिया। चौदह साल के बच्चे के साथ ही वही हुआ कि वह डेढ़ साल के भीतर मर गया, उसको शिक्षा देने की कोशिश की थी।
चौदह साल तक जो भेड़ियों के शिक्षालयों में पढ़ा हो, उसे फिर आदमी बनाना बहुत मुश्किल हो जाता है। और उस चौदह साल के बच्चे में, एक शब्द नहीं बोल सकता था, डेढ़ साल मेहनत करने पर अपना नाम सीख पाया, इतना बोल देता था, राम। बस इससे ज्यादा कुछ भी नहीं बोल सकता था।
यह मत सोचना कि तुम जो हो, मैं जो हूं, हम जो हैं, ये हम शिक्षा के बिना
हो सकते थे। और यह भी ध्यान रखना कि जो हम हैं, इस शिक्षा की वजह से हैं। जितनी घृणा हम में है, जितनी हिंसा हम में है, जितना द्वेष, जितनी प्रतिस्पर्धा हम में है, जीवन को गलत ढंग से जीने का जैसा रवैया हम में है, वह हमारी शिक्षा पर निर्भर है। जो भी हम हैं, अच्छे और बुरे, शुभ और अशुभ, प्रकाशपूर्ण और अंधकारपूर्ण उसका जिम्मा हमारी शिक्षा में छिपा है। हम क्या ठीक हैं? अगर हम ठीक हैं, तो गलत आदमी कैसा होगा? हमारा समाज ठीक है, तो गलत समाज कैसा हो सकता है? हमसे गलत और क्या हो सकता है? इसे अगर सोचते हैं, तो पूरी शिक्षा पर पुनर्विचार करना जरूरी हो जाता है।
तीन हजार साल के इतिहास में मनुष्य-जाति ने पंद्रह हजार युद्ध लड़े। तीन हजार वर्ष में पंद्रह हजार युद्ध, थोड़े मालूम पड़ते हैं। प्रति वर्ष पांच युद्ध। अगर तीन हजार वर्ष में हम एक-एक दिन की गिनती करें, जब युद्ध चलता रहा पृथ्वी पर कहीं न कहीं, और उन दिनों की गिनती करें, जब युद्ध न चला हो, तो तेइस सौ वर्ष युद्ध चला है, सात सौ वर्ष नहीं चला। इकट्ठा नहीं सात सौ वर्ष, कभी एक दिन, कभी दो दिन युद्ध होता रहा। नहीं तो युद्ध कहीं न कहीं चल रहा है। पृथ्वी पर ऐसा एक भी दिन नहीं है, जब युद्ध न चल रहा हो। चल ही रहा है। और जिन दिनों युद्ध नहीं चलता, तो यह मत सोचना कि युद्ध नहीं चलता, कोल्ड वार भी है, वह ठंडा युद्ध चलता है। और यह मत सोचना कि जब युद्ध बंद रहता है, तो शांति रहती है, नहीं, जब युद्ध बंद रहता है तब यह सिर्फ इसलिए बंद रहता है कि पुराना युद्ध तोड़ गया होता है, ताकत, नये युद्ध को करने की

ताकत जुटानी पड़ती है। बीच में वक्त की जरूरत पड़ती है। मनुष्य के इतिहास में शांति का कोई काल नहीं देखा है अब तक।
दो तरह के कालखंड हैं इतिहास में, युद्ध का काल और युद्ध की तैयारी का काल। पहला महायुद्ध हुआ उन्नीस सौ चौदह में फिर दूसरा महायुद्ध हुआ उन्नीस सौ उंतालीस में बीच में जो थोड़े से वर्ष निकले, यह मत सोचना कि वो शांति के वर्ष थे, उन दिनों हम युद्ध की तैयारी कर रहे थे। वह युद्ध की तैयारी का वक्त था। क्या आदमी लड़ने को ही पैदा हुआ है, और लड़ना जिंदगी हो सकती है? और क्या लड़ने के माध्यम से जीवन में आनंद संभव है? क्या आदमी हिंसा करने को ही पैदा हुआ है? क्या हम एक दूसरे की गर्दन दबाने के लिए ही हैं। अगर पृथ्वी को कोई मंगल पर बैठ कर देखता होगा किसी उपग्रह से अगर पृथ्वी को देखता होगा, तो एक बात बिल्कुल ही निश्चित है कि वे समझते होंगे, पृथ्वी एक मैड हाउस है, एक पागलखाना है। उनको तो कुछ भी पता नहीं होगा कि कौन हिंदुस्तान है, कौन पाकिस्तान है? क्योंकि बीच में कोई रेखाएं पृथ्वी पर खिंची हुई नहीं हैं, सब रेखाएं आदमी की बेवकूफी से पैदा हुई हैं। पृथ्वी के नक्शे पर कोई रेखा नहीं है। सब रेखाएं आदमी की स्टूपिडिटी के सुबूत हैं। कहां है कोई रेखा? कल करांची उन्नीस सौ सैतालीस के पहले तक करांची में जो आदमी पैदा होता था, वह हमारा भाई था। हम कराची में पैदा हुए आदमी के लिए मरते हैं। उन्नीस सौ सैतालीस के बाद करांची में जो पैदा हुआ है, वह हमारा दुश्मन है। और अब हम उसको मारने के लिए मरेंगे। और वह हमको मारने के लिए मरेगा।
मंगल के उपग्रह पर बैठ कर अगर कोई देखता होगा, तो उसकी समझ के बाहर होगा कि यह आदमियत है कैसी? कभी भी उखड़ पड़ती है, और बस शुरु कर देती है लड़ना। उतने दूर से उनको कुछ भी पता नहीं होगा, कि हमारी राजधानियों में देश के सब पागल इकट्ठे हो गए हैं। उन्हें कुछ पता नहीं होगा। उन्हें कुछ भी पता नहीं होगा कि जिस आदमी का भी दिमाग खराब हो जाता है, वह राजनीतिज्ञ हो जाता है। उनको क्या बेचारों को पता होगा, उनको हमारे राजनीतिज्ञों की कोई खबर नहीं है। ये सारी की सारी पृथ्वी को अगर थोड़े दूर खड़े होकर अगर तटस्थ भाव से देखें तो बड़ी हैरानी होगी, क्या? किस पागल की तरह हम युद्ध की तैयारी में लगे हैं? इस समय पृथ्वी पर पचास हजार उदजन बम तैयार हैं। और शायद तुम्हें पता नहीं होगा, पचास हजार उदजन बम जरूरत से ज्यादा हैं। इनकी कोई जरूरत ही नहीं है। अगर पूरे आदमियों को खत्म करना हो, तो ये सात गुना ज्यादा हैं। एक-एक आदमी को सात-सात बार मारने की हमने व्यवस्था कर ली है। हालांकि एक आदमी एक ही बार में मर जाता है, अब तक ऐसा सुना नहीं कि किसी आदमी को दुबारा मारना पड़ा हो। लेकिन राजनैतिक बड़े कैल्कुलेटिंग हैं, सब हिसाब लगाकर रखते हैं कि कोई भूल-चूक से बच जाए, ऐसी गलती नहीं करनी है। एक-एक आदमी को सात-सात बार मारने का आयोजन है। और वह आयोजन भी इतना हिंसक कि वह हमारी कल्पना के बाहर है। हम कल्पना भी न कर सके हैं। हिरोशिमा और नागासाकी में जो एटम बम गिरा था, उसकी कहानी ठीक-ठीक पढ़ लेना, मत पढ़ना रामायण, मत पढ़ना गीता, लेकिन हिरोशिमा-नागासाकी ठीक से समझ लेना। क्योंकि जिंदगी कल उसी तरह होने वाली है। जो नागासाकी और हिरोशिमा में हुआ है।
एक मेरे मित्र ने जापान से मुझे एक तस्वीर भेजी, एक छोटे से बच्चे की तस्वीर है, बच्ची की। एक नौ साल की लड़की हिरोशिमा में, रात में खाना खाकर अपनी सीढ़ियों से चढ़ रही है, ऊपर जा रही है, बगल में बस्ता लटकाया हुआ है, किताबें हैं, स्लेट है, वह होमवर्क करने अपने ऊपर के कमरे में जा रही है। तभी हिरोशिमा में एटम बम गिरा। बीच सीढ़ी पर ही वह लड़की राख होकर दीवाल से चिपक गई है। अपने मय बस्ते, अपनी मय किताबों के। तस्वीर मुझे किसी ने भेजी है। उस बच्ची ने कभी सोचा होगा कि ये सीढ़ियां भी पूरी नहीं हो पाएंगी? होमवर्क करना तो बहुत दूर है। क्या पता होगा उस निरीह बच्ची को कि बस खत्म हो जाना है आधी सीढ़ियों पर? पूरा गांव खत्म हो जाना है। एक लाख बीस हजार लोग एकदम से ठंडे हो जाने हैं। तुम पढ़ रहे हो, स्कूलों में, कालेजेज में, तुम्हारे मां-बाप, तुम्हारे शिक्षक आशाएं बांधे हुए हैं, तुम भी बड़े सपने देखते होंगे जिंदगी के लेकिन तुम्हें पता नहीं कि दिल्ली और कराची में, मास्को और पेचिंग में जो लोग बैठे हैं, वो इंतजाम कर रहे हैं कि होमवर्क

पूरा न हो पाए। किसी भी क्षण विस्फोट हो सकता है। जो मिसाइल आज मास्को और अमरीका के पास हैं, आज जिन हाइड्रोजन बमों और एटम बमों को उन्होंने अंबार लगा लिया है, वे खुद भी घबड़ा गए हैं कि एक आदमी का दिमाग खराब हो जाए, सिर्फ एक आदमी का, और पूरे तीन अरब आदमियों को खत्म कर सकता है। तो आज मास्को और न्यूयार्क में और वाशिंगटन में, जो सबसे बड़ी फिकर करनी पड़ रही है, वह यह कि एटम बमों की चाबी किस तरह रखी जाए। मान लो तुम्हारे हाथ में चाबी है, और पत्नी से झगड़ा हो गया, तुमने सोचा भाड़ में जाने दो इस दुनिया को, तुमने एक मिसाइल का उपयोग कर दिया। क्या किया जाए? और आदमी में ऐसे मौके आते हैं। पत्नी से झगड़ा होना तो दूर है, कलम तक ठीक से न चलती हो, तो दुनिया खत्म कर देने का दिल होने लगता है। साइकिल पंचर हो जाए, तो गुस्सा आ जाता है, सारी दुनिया पर।
ऐसे कमजोर आदमी के हाथ में इतनी बड़ी ताकत होनी बड़ी खतरनाक है। तो एक-
एक मिसाइल को चलाने की तीन-तीन चाबियां हैं और तीन-तीन लोगों के पास हैं, जब तक वे तीनों न मिलें किसी मिसाइल का प्रयोग नहीं किया जा सकता। लेकिन तीन पागल भी इकट्ठे हो सकते हैं। इसमें क्या कठिनाई है? बल्कि अक्सर ऐसा होता है कि तीन बुद्धिमान आदमियों को इकट्ठा करना मुश्किल होता है, तीन पागलों को इकट्ठा करना बिल्कुल आसान होता है। तीन बुद्धिमान आदमी इकट्ठे करने बहुत मुश्किल बात है। लेकिन तीन मूर्ख अक्सर इकट्ठे मिल जाएंगे। सच तो यह है कि मूढ़ों के सिवाय कोई संगठित होता ही नहीं है। बुद्धिमान आदमियों के कोई संगठन नहीं है, क्योंकि बुद्धिमान आदमी अकेला जीता है। बुद्धिमान आदमी अपने को पर्याप्त मानता है, जीने के लिए, किसी दूसरे का सहारा नहीं मांगता। जिनकी अपनी बुद्धि नहीं है, वह ऑर्गनाइजेशंस खड़े करते हैं। फिर चाहे ऑर्गनाइजेशन राजनीति के हों, चाहे धर्म के हों। ऑर्गनाइजेशंस मात्र नासमझ, नादान, बुद्धिहीन लोगों की ईजाद है। और जब तक दुनिया में बुद्धिहीन लोग हैं, तब तक संगठन रहेंगे, और हर संगठन खतरनाक है। क्योंकि हर संगठन किसी दूसरे के खिलाफ होता है। हिंदू इसलिए इकट्ठे होते हैं कि मुसलमान के खिलाफ हैं, मुसलमान इसलिए इकट्ठा होता है कि हिंदुओं के खिलाफ है। दुनिया में कोई संगठन मनुष्यता के लिए नहीं है। सब संगठन मनुष्य की हत्या के लिए हैं। भारत इकट्ठा होता है, पाकिस्तान के खिलाफ, पाकिस्तान इकट्ठा होता है भारत के खिलाफ; चीन इकट्ठा होता है किसी और के खिलाफ। हम सब इकट्ठे होते हैं घृणा के लिए, हिंसा के लिए, मिटाने के लिए। यह इतनी हिंसा का प्रादुर्भाव अगर है जगत में, और अब वो चरम सीमा पर पहुंच रहा है और वहां पहुंच रहा है, जहां सब समाप्त हो सकता है। तो फिर इस पूरी शिक्षा को सोच लेना पड़ेगा कि यह शिक्षा जुरूर मनुष्य के भीतर दानव को मुक्त करती है। मानव को मुक्त नहीं करती। यह मनुष्य को किसी ऐसी दिशा में ले जाती है, जहां अंधकार की शक्तियां तो मुक्त हो जाती हैं, प्रकाश की सारी शक्तियां क्षीण हो जाती हैं। यह शिक्षा मनुष्य को शैतान की तरफ अनुप्रेरित करती है, भगवान की तरफ अनुप्रेरित नहीं करती है। यह हमें ठीक से समझ लेना जरूरी है। और यह जरूरत आज से ज्यादा महत्वपूर्ण कभी भी नहीं थी, क्योंकि आज से पहले मनुष्य के हाथ में इतने खतरनाक शस्त्र नहीं थे। अब हमारे पास जो शस्त्र हैं, वे टोटल डिस्पेक्शन के हैं। वे पूर्ण विध्वंस के हैं। अब तक जो युद्ध हुए थे, वे अर्द्ध युद्ध थे, खंड युद्ध थे, अब जो युद्ध होगा वह टोटल वार है, वह पूर्ण युद्ध है। पूर्ण युद्ध का मतलब होता है जिसमें कोई नहीं जीतेगा। पहली बात। पूर्णयुद्ध का मतलब होता है, लड़ने वाले दोनों मरेंगे, सिर्फ फर्क इतना होगा कि हारा हुआ वह समझा जाएगा, जो दो क्षण पहले मरेगा, जीता हुआ वह समझा जाएगा जो दो क्षण बाद मरेगा। बस इतना ही सुख रहेगा आखिर में कि हम जरा देर से मरे। देर से रूस मरे कि अमरीका, इतना ही फर्क पड़ेगा। लेकिन पूर्णयुद्ध का मतलब यह है कि दोनों बाजियां एक साथ खत्म हो जाएंगी। क्योंकि दोनों के पास समान शस्त्र हैं, समान हिंसक... । पूर्णयुद्ध का मतलब यह है कि हमने जो शस्त्र विकसित किए हैं, उनके समक्ष जीवन की क्षमता बहुत कम पड़ गई है, मृत्यु की क्षमता पूर्ण हो गई हैं। आदमी का जीवन बहुत ही मिरेकल है, चमत्कार है।

शायद आपने कभी भी न सोचा होगा कि आदमी के जीवन की क्षमता कितनी संकीर्ण है। इसलिए तो इतने बड़े विस्तारपूर्ण विश्व में जहां अनंत विस्तार है, ऐसा लगता है कि शायद अकेली पृथ्वी पर ही जीवन प्रकट हो सका है। कितना विस्तार है जगत का! यह हमारी पृथ्वी तो बहुत छोटी सी है, इससे साठ हजार गुना बड़ा सूरज है। और सूरज दुनिया में सबसे छोटा सूरज है। उससे करोड़ों गुना बड़े सूरज हैं, जिनको हम रात में तारे कहते हैं। कोई भी तारा नहीं है, वे सब बड़े सूरज हैं। जो सूरज से करोड़ों गुना बड़े हैं। लेकिन फासला इतना ज्यादा है कि इतने छोटे दिखाई पड़ते हैं। अंतहीन फासला है। जमीन से सूरज की दूरी दस करोड़ मील है। लेकिन सूरज बहुत करीब है हमारे, बहुत ही करीब है, दस करोड़ मील कोई दूरी ही नहीं है। प्रकाश की किरण चलती है, एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील, सूरज की किरण को पहुंचने में कोई आठ-साढ़े आठ मिनट जमीन तक लगते हैं। सूरज बहुत करीब है। सूरज बहुत करीब है। सबसे निकट का जो तारा है उसकी किरण पहुंचने में चार वर्ष लगते हैं। उसी रफ्तार से चलती है किरण-एक लाख छियासी हजार मील प्रति सेकेंड। वह सबसे निकट का जो तारा है उसे चार वर्ष लगते हैं। जो थोड़े दूर के तारे हैं, उनसे सात वर्ष लगते हैं। जो और दूर के तारे हैं हजार-दो हजार, लाख-दस लाख, करोड़-दस करोड़, अरब-दस अरब, ऐसे तारे हैं जिनसे चली हुई किरण अब तक पृथ्वी पर नहीं पहुंची और चली थी तब जब पृथ्वी बनी थी। पृथ्वी को बने चार अरब वर्ष हो चुके हैं। और ऐसे भी तारे होंगे, जिनकी किरण शायद पृथ्वी पर कभी नहीं पहुंचेगी। इतने अंतहीन दूरी पर उनका विस्तार होगा। अब तक दो अरब तारों के संबंध में बोध हो चुका है। इतने बड़े विस्तीर्ण जगत में ऐसा लगता है, कि सिर्फ पृथ्वी पर ही जीवन प्रकट हुआ है। जीवन के प्रकट होने की सीमा इतनी संकीर्ण है, कि सारे इतने विस्तीर्ण जगत में, जीवन के पैदा होने का अवसर कहीं भी उपलब्ध नहीं हो सका है। और हम भी जानते हैं। इधर छियानवे डिग्री से नीचे हमारी गर्मी गिर जाए कि आदमी खत्म। उधर एक सौ दस डिग्री के ऊपर गर्मी बढ़ जाए कि आदमी खत्म। इधर चौदह डिग्री के बीच में आदमी के जीवन का फैलाव है। इतनी सी संकीर्ण जीवन की क्षमता है हमारी इस जीवन के सामने मृत्यु की हमने अनंत क्षमता को मुक्त कर दिया है। अनंत क्षमता को। एक उदजन बम के विस्फोट से जो गर्मी पैदा होगी, वह गर्मी उतनी ही होगी जितनी सूरज पर है, दस करोड़ डिग्री। दस करोड़ डिग्री गर्मी में किसी तरह का जीवन बच सकता है? उस तरह का जीवन बच सकता है जिनकी एक सौ दस डिग्री के ऊ पर गर्मी चली जाए और वो खत्म हो जाते हैं।
एक सौ दस डिग्री पर जिनका जीवन नष्ट हो जाता हो उन्होंने इंतजाम कर लिया है, दस करोड़ डिग्री गर्मी पैदा करने का। सौ डिग्री गर्मी पर पानी भाप बनता है, अगर तुम्हें उठा कर उस उबलते हुए पानी में डाल दिया जाए, तो गर्मी का सुख आएगा। लेकिन वह बहुत थोड़ा सुख है, अगर असली सुख लेना हो तो वह काफी नहीं है। पंद्रह सौ डिग्री पर लोहा पिघल कर पानी बन जाता है, उसमें डालना चाहिए किसी को। लेकिन उसमें भी पूरा मजा नहीं आएगा। पच्चीस सौ डिग्री गर्मी पर लोहा भाप बन कर उड़ने लगता है, उसमें डालना चाहिए किसी को, लेकिन आदमी का दिल इससे भी नहीं भरता। उसने दस करोड़ डिग्री गर्मी पैदा करने के उदजन बम तैयार किए हैं। उनमें हम डालेंगे आदमियत को, तब मजा आएगा पूरा। एक उदजन बम के विस्फोट से जो गर्मी का क्षेत्र होगा, वह होगा चालीस हजार वर्ग मील। चालीस हजार वर्ग मील में एक उदजन बम दस करोड़ डिग्री की भट्टी बना देगा। उस जलती हुई भट्टी में आदमी उतरने की तैयारी कर रहा है, इस आदमी के मन को स्वस्थ कहा जा सकता है? और अगर यह स्वस्थ है तो विक्षिप्त किसको कहते हैं? पागल किसको कहते हैं?
यह क्या है? यह कैसे संभव हुआ? मेरी दृष्टि में हमारी शिक्षा का पूरा यंत्र विकृत और विक्षिप्त है। इसलिए कुछ सूत्र शिक्षा के इसके अंत के बाबत कहना चाहता हूं कि ये क्यों विक्षिप्त है? पहली बात, पूरी की पूरी शिक्षा ईर्ष्या सिखाती है। पूरी शिक्षा जेलेसी सिखाती है। पूरी शिक्षा हिंसात्मक है, वायलेंट है। पूरी शिक्षा हिंसा की दीक्षा देती है। क्यों? क्योंकि पूरी शिक्षा अहंकार को पोषण देने के आधार पर खड़ी है। एक-एक बच्चे के अहंकार को हम फुसलाते हैं और कुछ भी नहीं करते। पहली ही कक्षा में

बच्चे भरती हुए, और बाप चाहते हैं कि मेरा लड़का प्रथम आ जाए, शिक्षक भी चाहता है कि प्रथम आना। लेकिन कोई नहीं पूछता कि प्रथम आने की दौड़ सिखानी अहंकार की दौड़ सिखानी है। जो आदमी दूसरों से प्रथम होने की कोशिश करता है, वह कर क्या रहा है? वह यह कहता है कि मैं कुछ हूं, समबडी। मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं। मैं प्रथम हूं। और यह जो प्रथम होने की दौड़ में जिस आदमी का चित्त पड़ जाता है, वह अनिवार्य रूप से हिंसक हो जाता है। फिर ऐसे ही व्यक्ति मिलकर समूह बनाते हैं, फिर समूह भी प्रथम होने की दौड़ में लग जाते हैं, फिर ऐसे ही व्यक्ति मिल कर राष्ट्र बनाते हैं, फिर राष्ट्र प्रथम होने की दौड़ में लग जाते हैं। सारी दुनिया में युद्ध का कारण क्या है? कि हर राष्ट्र प्रथम होने की दौड़ में है। कोई राष्ट्र किसी से पीछे नहीं खड़ा रहना चाहता। क्या दुश्मनी है अमरीका और रूस के बीच। क्या दुश्मनी है हिंदू और मुसलमान के बीच? क्या दुश्मनी है, पाकिस्तान और हिंदुस्तान के बीच? क्या दुश्मनी है, कम्युनिस्टों और कांग्रेसियों के बीच? एक दुश्मनी है कि कौन प्रथम। हू इ.ज टू बी दा फर्स्ट? कौन होगा पहले? कौन सिखाता है यह पहले होने की दौड़? हमारी पूरी शिखा का तंत्र सिखाता है। पूरी शिक्षा का तंत्र कहता है दूसरों से पहले होने वाला आदमी धन्य है। हद हो गई, बीमारी सिखाते हो और कहते हो धन्यता है। इसी पत्थर के ऊ पर टकरा कर आदमी की नाव टूट गई है।
जीसस क्राइस्ट एक अदभुत बात कहते हैं, लेकिन जीसस क्राइस्ट की कौन सुनेगा? हम सूली पर लटका देते हैं, ऐसे नामसमझ आदमियों को। ऐसे जीसस क्राइस्ट वगैराह को हम सुनते नहीं। अगर ज्यादा जोर से बोलने लगते हैं, गर्दन काट देते हैं, कि ऐसे आदमी अच्छे नहीं, इनको अलग करो। कुछ मामला ऐसा है जैसे अंधों की बस्ती में कोई आंख वाला आदमी आ जाए, तो अंधे मिल कर उसकी आंख का आपरेशन कर दें, कि यह आदमी गड़बड़ है। आंख कहीं होती है? इस आदमी को कुछ गड़बड़ चीज पैदा हो गई है, अलग करो, इसका दिमाग खराब है। ऐसी चीजें इसको दिखाई पड़ती हैं, जो हमें नहीं दिखाई पड़तीं। हो कैसे सकती हैं, जब हम सबको दिखाई नहीं पड़तीं। जीसस का ऑपरेशन कर डालते हैं, खत्म करो इस आदमी को। सुकरात को जहर पिला देते हैं, गांधी को गोली मार देते हैं। ये आदमी ठीक नहीं है, ये गड़बड़ बातें कहते हैं, हम जो कहते हैं, हम जो मानते हैं, उससे उल्टी बातें बताते हैं।
जीसस कहता हैं, धन्य हैं वे लोग जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं। अदभुत बात है। धन्य हैं वे लोग जो अंतिम खड़े होने में समर्थ हैं। मेरी दृष्टि में भी मनुष्य के जीवन में श्रेष्ठतम का जन्म उस क्षण होता है, जब वह अंतिम खड़े होने की सामर्थ्य जुटा लेता है। लेकिन सारी शिक्षा कहती है, प्रथम खड़े हो, प्रथम खड़े होओ। सारी मनुष्यता नष्ट हो जाती है। वह प्रथम होने का जो पागल, फीवरेस्ट दौड़ शुरू होती है, विक्षिप्त दौड़ शुरु होती है, वह इतने चक्कर में डाल देती है, आदमी को कि कभी चैन नहीं। चपरासी से लेकर राष्ट्रपति तक बेचैन हैं। चपरासी को और बड़ा चपरासी होना है, राष्ट्रपति को और बड़े राष्ट्र का राष्ट्रपति होना है, और सब भाग रहे हैं। चपरासी की बुद्धि में और राष्ट्रपति की बुद्धि में रत्ती भर भेद नहीं। वह जो बुद्धि है, वही प्रथम होने की है। पहली कक्षा में पढ़ने वाले बच्चे में और सत्तर साल के बूढ़े आदमी में कोई भेद नहीं, वह जो बुद्धि है वही प्रथम होने वाली है। बस आगे खड़ा होना है, सारी दुनिया से आगे खड़े हो जाएं, लेकिन किसलिए? आगे खड़े होने से मिलता क्या है? आगे खड़े होने से भीतर की सारी शांति खो जाती है, क्योंकि आगे खड़े होने के लिए संघर्ष, आगे खड़े होने के लिए हिंसा, आगे खड़े होने के लिए दूसरों के सिर को सीढ़ी बनाना पड़ता है। और आगे खड़े होने के लिए जो भी बीच में बाधा पड़ती है, उनको शत्रु बनाना पड़ता है। इसलिए पूरी मनुष्य-जाति एक दूसरे की शत्रु हो गई। तुम कभी मत सोचना यह, कक्षा में तुम पढ़ते हो, लेकिन कहते हो हम सहपाठी हैं, सह शत्रु हैं। कोई सहपाठी नहीं है। क्योंकि सब एक-दूसरे से प्रतियोगिता कर रहे हो, साथी कैसे हो सकते हो? मित्र कैसे हो सकते हो? तीस बच्चे पढ रहे हैं एक कक्षा में, तीसों एक-दूसरे की जान के पीछे हैं कि हम आगे निकल जाएं। बाकी उनतीस पीछे छूट जाएं तो उस

कक्षा में तीस दुश्मन हैं, जो प्रथम होने की कोशिश में लगे हैं, दोस्ती ऊ परी है, झूठी है, बुनियाद में दुश्मनी चल रही है।
क्या हम एक ऐसी शिक्षा विकसित नहीं कर सकते, जो व्यक्ति को प्रथम होने
की दौड़ में न लगाती हो। अगर ऐसी शिक्षा विकसित नहीं होती तो आदमी खत्म। बंदरों को फिर से सोचना पड़ेगा, शैल बी स्टार्ट अगेन? मुझे लगता है कि ऐसी शिक्षा का तंत्र हो सकता है, जो प्रथम की दौड़ न सिखाए। क्या जरूरत है उस दौड़ की। क्या हम प्रत्येक व्यक्ति को अपने विषय में रस लेना नहीं सिखा सकते हैं? क्या हम एक ही गति देने का एक ही सूत्र जानते हैं कि दूसरे के अहंकार से प्रतियोगिता करो। एक आदमी इसलिए भी संगीत सीख सकता है कि उसे संगीत सीखना आनंदपूर्ण है। और एक आदमी इसलिए भी संगीत सीख सकता है कि उसकी बरदाश्त के बाहर है कि दूसरा आदमी संगीत सीख ले। एक आदमी इसलिए भी संगीत सीखने में पागल की तरह लग सकता है कि उसे दूसरे संगीतज्ञ को पीछे छोड़ देना है। और एक आदमी इसलिए भी संगीत सीख सकता है कि संगीत में गहरे से गहरे उतर जाना, अपूर्व आनंद की यात्रा पर। एक आदमी दूसरे से जब प्रतियोगिता करता है, तो उसे संगीत से कोई भी प्रयोजन नहीं है।
संगीत केवल बहाना है, जिस बहाने वह अपने अहंकार की दौड़ को आगे बढ़ा रहा है। सच तो यह है कि जो संगीत को प्रेम करता है, वह दूसरे संगीतज्ञ की फिकर ही नहीं कर सकता। उसके लिए वह और संगीत के अतिरिक्त दुनिया में कोई भी नहीं है। हां, निश्चित ही जो संगीत को प्रेम करता है, वह भी एक तरह की प्रतियोगिता करेगा, लेकिन दूसरे संगीतज्ञ से नहीं, अपने ही कल के संगीतज्ञ से। वह जो कल था मैं, उससे मैं आगे निकल जाऊं। मैं जो कल था, उससे आगे निकल जाऊं। क्योंकि कल जो मैंने आनंद जाना, उससे गहराई में और आनंद होगा। मैं रोज अपने को पार करूं, दूसरे को नहीं। दूसरे को पार करना हीनता है, अपने को पार करना विकास है। मैं रोज अपने को पार कर जाऊं, ट्रांसेंट कर जाऊं, कल सुबह सूरज ने जहां मुझे पाया था, डूबता हुआ सूरज भी मुझे वहां न छोड़े। कल डूबते सूरज ने मुझे जहां पाया था, आज सुबह का सूरज मुझे वहां न पाए। अन्यथा वह सूरज कहेगा बेकार जीए इतनी देर, क्या किया तुमने? खो दिया इतना क्षण, जीवन बहुत छोटा है। मैं रोज बढ़ता रहूं, किसी दूसरे से नहीं, बढ़ने में कोई कंपेरिजन जब आ जाता है तो हिंसा शुरु हो जाती है। बढ़ने में कंपेरिजन नहीं, बढ़ने में तुलना नहीं, कभी भूल कर कंपेरिजन मत करना किसी दूसरे से। सदा अपने से।
मृत्यु के क्षण तक बढ़ते जाना लेकिन अपने से, रोज आगे, दूसरे पर ध्यान
मत देना। दूसरे की चिंता भी क्या है, कि दूसरा कहां जाता है? दूसरे से प्रयोजन क्या है? दूसरे के प्रयोजन में जो संलग्न हो जाता है, वह अपने को भूल जाता है। और मैं आपसे कहता हूं, हमारी शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को उसकी आत्मा भुला देती है, क्योंकि वह दूसरे पर उसको कनसनट्रेट करवाती है। वे कहते हैं दूसरे क्या कर रहे हैं? बाप कहता है, देखते नहीं, पड़ोसी का लड़का कहां निकला जा रहा है। यह बाप खतरनाक है। पड़ोसी के लड़के पर ध्यान दिलवा रहे हो तुम अपने लड़के का ध्यान उसके भीतर ले जाओ, उसकी अपनी आत्मा पर। उससे कहो तेरी आत्मा कहां जा रही है, इसकी फिकर कर। तू कहां जा रहा है, इसकी फिकर कर। दूसरे से तुलना सिखाई, कि आदमी विकृत हुआ। तुलना विकृति का सूत्र आधार है। और हमारी पूरी शिक्षा कंपेरिजन सिखाती है। वह ग्रेडेशन करती है। यह आदमी दस नंबर पर, वह आदमी बारहवें नंबर पर, यह आदमी पचास नंबर पर, ग्रेडेशन करती है। इस ग्रेडेशन के दो दुष्परिणाम होते हैं, जो आदमी प्रथम आ जाता है, वह बिगड़ जाता है, इसलिए उसके अहंकार को पोषण मिलता है कि मैं कुछ हूं।
देखो न, जरा मिनिस्टरों को रास्तों पर चलते देखो, राष्ट्रपतियों को रथों में देखो। सेनापतियों को घोड़ों पर सवार देखो। देखों उनकी आखों में है क्या? किस बात से वे आनंदित हैं? आनंद जैसी कोई भी चीज उनके पास नहीं है। सिर्फ एक है आनंद, दूसरों को हमने नीचा दिखा दिया है। दूसरे धूल पर चल रहे हैं, वे रथों पर सवार हैं। इसके सिवाय कोई आनंद नहीं हैं। और बड़े मजे की बात है कि दूसरा धूल में चल रहा है, इससे आपको कैसे आनंद आ सकता है? यह

बड़े मजे की बात है कि दूसरा गिर गया है, इससे आपको कैसे आनंद आ सकता है? यह आनंद रुग्ण है।
एक गांव में मैं जाता था, एक मित्र के घर ठहरा। उन मित्र ने एक बहुत बड़ा भवन बनाया। उस गांव में सबसे बड़ा भवन था। वही भवन था। बाकी सब झोपड़े थे। तीन दिन उनके घर रहा, कोई भी बात चले, घूम-फिर कर बात उनके भवन पर ही आ जाती थी। बस वो थोड़ी-बहुत देर में ऐसा लगता था कि वे चौबीस घंटे भवन का ही चिंतन करते हैं। कुछ भी बात चले, कोई भी बात, ऐसी कोई बात नहीं थी जो अनिवार्य रूप से भवन पर न लाते हों, ऐसा कोई रास्ता नहीं था जो रोम न पहुंच जाता हो। सब घूम कर वहीं पहुंच जाता था। भगवान से बात करो, और भवन पर खत्म होती थी। स्वाभाविक बड़े खुश थे, बड़े आनंदित थे। दो साल बाद उनके घर में फिर मेहमान हुआ। जाते से मैंने सोचा कि फिर वही भवन शुरु होगा। रात थी, मैं बहुत देर तक प्रतीक्षा किया, भवन नहीं आया, मैंने कहा रास्ते गड़बड़ हो गए। कोई डायवर्जन हो गया, क्या हुआ? रास्ते मकान पर नहीं पहुंच रहे। फिर जब सोने लगा तो मैंने कहा, क्या बात है इस बार आप भवन की बात नहीं करते। वे बड़े उदास होकर कहाः क्या खाक बात करूं, आपको शायद पता नहीं, सुबह पता चलेगा। मैंने कहा क्या मामला है? उन्होंने कहा पड़ोस में एक मकान बन गया है, जो इससे भी ऊंचा है। पर मैंने कहाः पड़ोस का मकान बने या न बने तुम्हारा मकान तो ठीक वैसा ही है। तो उन्होंने कहाः कहां ठीक वैसा ही है, माना कि मेरा मकान तो वैसा ही है, लेकिन सब बात बदल गई। जब तक उस मकान से ऊंचा न कर दूं, तब तक चैन नहीं मिलेगा। तो मैंने कहाः अब मैं तुमसे कहूं कि वह जो खुशी तुम्हारी थी, जब मैं दो साल पहले आया था, वह भी तुम्हारे मकान से संबंधित न थी, वह भी बगल में खड़े झोपड़ों से संबंधित थी। वो झोपड़े नीचे थे, उनसे तुम खुश हो रहे थे, हालांकि तुम कह नहीं रहे थे कि झोपड़ों को देख कर मैं खुश हो रहा हूं।
लेकिन यह आदमी कैसा है? स्वास्थ्य का आनंद अपने स्वास्थ्य से होता है
कि फला आदमी को टी.बी. हो गई इसमें होता है? और अगर किसी को इस तरह के स्वास्थ का आनंद आने लगे, कि गांव भर में पता लगे किसको कैंसर हो गया है, किसको टी.बी. हो गई, कौन मर गया है? और प्रसन्न हो कि आज फलां मर गया, हम जिंदा हैं। अगर दूसरे के मरने से खुद की जिंदगी का पता चले, तो समझ लेना कि तुम बहुत पहले मर चुके हो। अगर दूसरे की बीमारी से तुम्हें अपने स्वास्थ में रस आए, तो समझ लेना कि तुम्हारे पास स्वास्थ्य नहीं है। क्योंकि जिसके पास स्वस्थ्य होता है, उसे अपने स्वास्थ्य से आनंद आता है। दूसरे की बीमारी से उसका कोई भी संबंध नहीं है। जिस आदमी के पास अपना स्वास्थ्य होता है, उसे दूसरे की बीमारी से आनंद तो कभी हो ही नहीं सकता। दूसरे की बीमारी से दुखी जरूर हो सकता है। जिस आदमी के पास अपना जीवन है, वह दूसरे के मरने से कभी खुश नहीं होता। लेकिन दूसरे के जीवन के खो जाने से दुखी जरूर हो सकता है। आज हालत बिल्कुल उलटी है, शीर्षासन करती हुई। दूसरे के दुख से मिलता है, सुख। दूसरे की मौत से लगती है, अपनी जिंदगी। दूसरे के हार जाने में आती है, अपनी विजय। दूसरे के गिर जाने में लगता है, अपना उठना। यह सारी की सारी शीर्षासन करती हुई सभ्यता हमारी शिक्षा का फल है। और वह शिक्षा हमें सिखाती है, प्रथम होना। वह बीमारी का पहला बीज है। एक ऐसी शिक्षा चाहिए जो व्यक्ति को दूसरे की स्पर्धा में नहीं, स्वयं की स्पर्धा में खींच कर लाती हो। एक बात।
और दूसरी बात यह पूरी की पूरी शिक्षा का तंत्र अत्यंत बोरिंग, बोर्डम पैदा करने वाला है। इस तंत्र में न कोई रस है, न कोई खुशी है, न कोई नृत्य है, न कोई संगीत है। यह पूरा तंत्र बोर्डम की एक लंबी कथा है। पांच साल के छोटे बच्चों को... बड़े अच्छे लोग थे पहले, वे कम से कम सात साल में बोर्डम में दीक्षित करवाते थे। अब पांच ही साल में, रूस में वो फिक्र कर रहे हैं कि नहीं इतनी देर हो गई बहुत, तीन साल में। और कुछ रूस के शिक्षा शास्त्री कहते हैं कि दिन भर उनको शिक्षा देते हो, रात खाली चली जाती है, तो रात में भी टेप लगा कर कान में पिलो के पास बच्चे को सुलाओ, स्लीप टीचिंग होनी चाहिए। वह रात भर सोया भी रहे और उसकी खोपड़ी में रात भर टेप बोलता रहे। और वो सफल हुए जा रहे हैं, इसलिए टीचिंग के मैथड्स रूस में काम करना शुरु कर

दिए हैं। वे कहते हैं कि इतनी देर क्यों खराब करनी, पांच-छह घंटे स्कूल में पढ़ाया और बाकी समय खराब होता है, बच्चा जब सोता है, तब भी उसका पीछा करो। बाप पीछा कर रहा है, मां पीछा कर रही है, पड़ोसी पीछा कर रहे हैं, गुरु पीछा कर रहे हैं, वाइस चांसलर पीछा कर रहा है; छोटे-छोटे बच्चों के पीछे इतने दुश्मन पड़े हुए हैं, जिनका कोई हिसाब नहीं। और सब क्या कर रहे हैं? उसके जीवन में जरा सा भी रस नहीं पैदा होने दे रहे हैं, जरा सा भी आनंद, थिरक, पुलक नहीं पैदा होने दे रहे हैं। जाकर देखो आदीवासी के बच्चे को और देखो अपने बच्चे को, आदीवासी का बच्चा भूखा होगा, दुबला होगा, कमजोर होगा, शरीर पर चिथड़े नहीं होंगे, लेकिन देखो, उसकी आंख देखो, उसकी गति देखो, उसकी पुलक, उसमें वही रस मालूम होता है, जो एक हिरण के बच्चे में होता है। उसमें वही तीव्रता मालूम होती है, जो एक शेर के बच्चे में होती है। उसकी जिंदगी में वही लोच मालूम होती है, जो वृक्षों की शाखाओं में होती है, उसकी आंखों में वही झलक होती है, जो फूलों में होती है। हमारे बच्चे को देखो। पैदा हुआ कि बूढ़ा हो गया। बच्चे पैदा होने बंद हो चुके हैं, अब बूढ़े ही पैदा होते हैं। और हम सब उनके पीछे पड़े हैं कि कहीं कोई बच्चा पैदा हो जाए, तो बड़ी तकलीफ होती है, उसको हम कहते हैं प्रॉब्लम चाइल्ड। क्योंकि बूढ़ों की जमात में, बूढ़ों की दुनिया में अगर कोई बच्चा पैदा हो जाए तो बड़ी गड़बड़, बड़ा डिस्टर्बिंग मालूम पड़ता है। हम गीता पड़ रहे हैं और वह गाना गा रहा है, यह बिल्कुल ठीक बात नहीं है। लेकिन किसने तुमसे कहा, गीता पढ़ने से तुम हकदार हो, वह गाना गाने का नहीं। और किसने कहा कि इस दुनिया में गीता पढ़ना ज्यादा कीमती है, और गाना गाना कम कीमती है, किसने कहा? बूढ़ों की वैल्यूज हैं, उन बच्चों की वैल्यूज का कोई मूल्य नहीं है। चार बूढ़े बैठ कर बातें कर रहे हैं, फिजूल ही बात करते हैं। बच्चों से कहते हैं, चुप रहो, गड़बड़ नहीं करो यहां, बहुत ऊंची बात कर रहे हैं, सुबह अखबार पढ़ा है, वही बकवास दिमाग में भर गई है, वही कर रहे हैं, कुछ और नहीं कर रहे हैं।
प्रेम जरूरी है, जिसके बिना गणित खतरनाक सिद्ध हो गया है। क्योंकि आदमी जिसके भीतर प्रेम नहीं है, उसके दिमाग में गणित बहुत खतरनाक हो जाता है। क्योंकि अकेला गणित हिंसक हो जाएगा। अकेले गणित की जो सोचने की तरकीब है, वह बहुत वायलेंट है।
मिलिटरी में जाओ, वहां आदमियों का नाम नहीं होता, नंबर होता है, ग्यारह नंबर का आदमी, गणित का उपयोग कर रहे हैं वो। अब ग्यारह नंबर का जो आदमी है, अगर उसका नाम कुछ हो, राम हो, कृ ष्ण हो, मोहम्मद हो, कुछ हो, तो उस आदमी की मां होगी, जो घर रास्ता देख रही है, अपने बेटे का युद्ध से लौट आने के लिए; उसकी पत्नी होगी, जो रात-रात भर नहीं सोती होगी, तड़पती होगी कि पता नहीं उसका पति वापस लौटेगा कि नहीं लौटेगा? उसके बेटे होंगे, उसकी बच्चियां होंगी, जो रोज सुबह स्कूल उदास जाते होंगे, कि उनका बाप युद्ध के मैदान पर गया हुआ है, लौटने का कोई पता नहीं है। उसके मित्र होंगे, प्रियजन होंगे। लेकिन उसका नाम रख दिया गया ग्यारह नंबर। अब ग्यारह नंबर की कोई मां होती है कि ग्यारह नंबर की कोई पत्नी होती है? बता सकते हो, ग्यारह नंबर की पत्नी का कितना नंबर होता है? वह आदमी मर जाएगा, तो मिलिटरी के गजट में छपेगा कि ग्यारह नंबर गिर गया। ग्यारह नंबर मर गया। जब तुम पढ़ोगे अखबार में कि ग्यारह नंबर मर गया, तो कहीं चोट लगती है हृदय में? कोई चोट नहीं लगती है। ग्यारह नंबर मर गया, मर गया होगा, नंबरों का क्या है। गणित सब्स्टीट्यूट बना रहे हो, वह प्रेम का, यंत्र को जगह दे रहे हो, आदमियत की। न प्रेम सिखाया जा रहा है, न ध्यान सिखाया जा रहा है, न क्रोध पर संयम सिखाया जा रहा है, न भीतर के जगत की भी भूगोल है, भीतर के जगत का भी बड़ा विस्तार है, उसमें कोई गति नहीं दी जा रही। और सिखाया क्या जा रहा है? सिखाया जा रहा है टिम्बकटू कहां है? सहारा रेगिस्तान कहां हैं? भाड़ में जाने दो सहारा को, आदमी सहारा हुआ जा रहा है। सब रेगिस्तान हुआ जा रहा है। क्या फिजूल की बातें सिखा रहे हो? नहीं मैं कहता हूं भूगोल व्यर्थ है, भूगोल सिखाओ थोड़ा-बहुत, भूगोल जानना जरूरी है, लोग बहुत भूगोल जाने यह भी जरूरी है, कुछ को भूगोल भी आनंद हो सकता है, वो पूरी जिंदगी भूगोल जानें, यह भी जरूरी है। लेकिन आदमी की जिदंगी में जो बहुत आधारभूत है, उसकी कोई फिकर

नहीं। जिससे जिंदगी बनती है, उसकी कोई फिकर नहीं। चौबीस साल का लड़का निकलता है, दुनिया में आता है, वापस उसके पास कुछ भी नहीं है, मूल्यवान कुछ भी नहीं है। कोई वैल्यू नहीं है। हां, उसके पास सर्टिफिकेट्स हैं, कागज के। जिसमें किसी वाइस चांसलर ने दस्तखत करके दे दिया है कि ये आदमी कैरेक्टर का है। और वाइस चांसलर के खुद के कैरेक्टर का खुद का कोई ठिकाना नहीं है। ये कैरेक्टर लेकर तुम दुनिया में लेकर खड़े होओगे, चरित्रहीन लोगों के प्रमाण पत्र लेकर दुनिया में घूमना, फेंक देना, जला देना, मत ले जाना चरित्र का सर्टिफिकेट किसी से। क्योंकि जिनसे हम चरित्र का सर्टिफिकेट मांगे, उनके पास चरित्र नहीं है। और चरित्र उनके पास हो तो वाइस चांसलर होना बहुत मुश्किल है, यह भी ध्यान रखना। क्योंकि चरित्रहीन दुनिया में सिर्फ चरित्रहीन सीढ़ियां पार कर सकते हैं। चरित्रवान के लिए कोई रास्ता नहीं है।
ये सर्टिफिकेट्स हैं, या मैं बी.ए. पास हूं, या एम.ए. पास हूं, ये लेकर तुम जिदंगी में जाओगे, ठीक है एक दफ्तर में नौकरी मिलेगी। एक फैक्ट्री में काम करोगे, एक दुकान चला लोगे, एक स्कूल में मास्टर हो जाओगे। लेकिन ये आजीविकाएं हैं, जीवन नहीं है। ये लिविंग नहीं है, सिर्फ लिविंग के उपाय हैं। ये रोटी-रोजी कमाने का माध्यम हैं, इसका जिंदगी से कोई बहुत गहरा संबंध नहीं है। तो सारी शिक्षा सिर्फ रोटी-रोजी कमाने के योग्य बनाती है? और इस शिक्षा को हम शिक्षा कह देते हैं। रोटी-रोजी अशिक्षित को भी मिल जाती है। रोटी-रोजी जानवरों को भी मिल जाती है, पशु-पक्षियों को, पौधों को भी मिल जाती है। रोटी-रोजी ही कमाने योग्य अगर मनुष्य बन जाता है, तो ये कोई बड़ी गुणवत्ता न हुई, यह कोई मनुष्यता की बहुत ऊंचाई न हुई। यह कुछ उपलब्धि न हुई और हमारी सारी शिक्षा इसके आगे कहीं भी नहीं ले जाती। तो इसको कैसे इस शिक्षा को सम्यक कहा जा सकता है? जीवन में जो भी श्रेष्ठतम है, वह सिकुड़ जाता है, फैलता नहीं है, शिक्षित आदमी का। एक अशिक्षित आदमी ज्यादा प्रेमपूर्ण मिल सकता है, एक शिक्षित आदमी का प्रेम और सिकुड़ जाता है। क्योंकि वह कुछ तरकीबें सीख लेता है और उन तरकीबों को चलाने के लिए जरूरी है कि प्रेम कम हो। नहीं तो उन तरकीबों को चलाना बहुत मुश्किल हो जाएगा। वह कुछ तरकीबें सीख कर लौटा है, रुपये कमाने की, लोगों का गला घोटने की, लोगों की जेब में हाथ डालने की, वह सब तरकीबें सीख कर लौटा है। उन तरकीबों को चलाना और प्रेमपूर्ण होना, दोनों साथ-साथ नहीं चल सकता। तो प्रेम को सिकोड़ना पड़ता है। वह तरकीबें सीख कर लौटा है कि असत्य जीतता है। हालांकि किताबों में भी यही लिखा हुआ है कि सत्य जीतता है। अब तक सत्य जीतता हुआ दिखाई नहीं पड़ता। अब तक तो ऐसा लगता है कि सत्य रोज-रोज हारता है। फांसी पर लटकता है, सूली पर चढ़ता है, भूखा मरता है, सजाएं काटता है, अपमान झेलता है; सत्य अभी तक नहीं जीत पाया। सिर्फ किताबों में लिखा है कि सत्य जीतता है। असत्य जीतता है, यह बच्चा युनिवर्सिटी से सीख कर लौटता है। असत्य जीतता है।
जिंदगी का वहां जो अनुभव है, युनिवर्सिटी का, विश्वविद्यालय का, वहां
से सीख कर लौटता है कि असत्यमेव जयते। और अगर असत्यमेव जयते, यह सूत्र समझ में आ जाए तो इसका उपयोग कभी मत करना, कहना हमेशा "सत्य मेव जयते" वह भी एक असत्य है। कहना वही तो ही जीत सकोगे। अगर असत्य की दुकान खोलो तो बड़े-बड़े अक्षर ऊपर लिखना, सत्य यहां बिकता है, तो असत्य बिकेगा। नहीं तो असत्य भी नहीं बिक सकता। देखा होगा न, जहां-जहां अशुद्ध घी बिकता है, वहां-वहां लिखा है, शुद्ध घी बिकता है। अगर शुद्ध ही बिकता हो, तो शुद्ध घी लिखने की जरूरत है? किसी से अभिनेता प्रेम करता है, तो कहता है बिल्कुल शुद्ध प्रेम कर रहा हूं। शुद्ध प्रेम भी होता है? प्रेम होता है या नहीं होता, शुद्ध प्रेम भी कहीं सुना है। लेकिन जिस दुनिया में सब अशुद्ध हो गया हो, वहां शुद्ध का लेबल हर चीज पर लगाना जरूरी है। तो यहां पूरी शिक्षा की दुनिया में असत्य को जीतते देखकर, बेईमानी को जीतते देखकर, अशुभ को जीतते देखकर, चालाकी को जीतते देख कर, पाखंड को जीतते देख कर एक बच्चा लौटता है। हम कहते हैं ये शिक्षित होकर लौट आया। इस बच्चे की दुनिया जो बनेगी वह दुनिया कैसे शांति की, प्रेम की, अहिंसा की, सत्य की, परमात्मा की दुनिया होगी? यह समाज

कैसे परमात्मा का मंदिर बनेगा? तो मैं कहता हूं कि यह शिक्षा दूसरी जगह गलत है। और वह दूसरी जगह गलत यह है कि जीवन सिखाती ही नहीं। और जीवन के सिखाने का जो सबसे रहस्यपूर्ण और सबसे महत्वपूर्ण, और आधारभूत अंग है, वह है जीवन का रस सिखाना, जीवन का आनंद सिखाना, जीवन की उत्फुल्लता सिखानी। कोई फिकर नहीं कि एक सर्टिफिकेट कम रह जाए, कोई फिकर नहीं कि एक डिग्री नाम के पीछे कम लगाने को मिले, लेकिन अगर मुस्कुराते हुए ओंठ हों, हंसता हुआ हृदय हो, आनंद से नाचते हुए पैर हों तो तुम जिंदगी को जीत लोगे, पा लोगे, जान लोगे। और दुनिया में जितना रसपूर्ण व्यक्ति होगा, उतने ही युद्ध कम हो जाएंगे क्योंकि तुम्हें पता होना चाहिए, वॉर्स ऑर बांड आउट ऑफ बोर्डम। युद्ध हमेशा बोर्डम से पैदा होते हैं।
तुम्हें पता होगा कि अभी हिंदुस्तान और पाकिस्तान की लड़ाई चलती थी,
तब तुमने लोगों के चेहरे देखे? तब तुमने लोगों को देखा कि जो सात-आठ बजे, नौ बजे उठते थे, वो पांच बजे उठ कर पूछने लगते हैं, अखबार कहां है? रेडियो खोलने लगते, चमक देखी, लोगों की चाल में गति देखी, ऐसा उत्साह मालूम पड़ता था। कितने लोग खुश से मालूम पड़ते थे, कि कुछ हो रहा है। जिंदगी बेकार नहीं है, ऐसे सुबह उठे, सांझ सोए ऐसा नहीं, कुछ हो रहा है, कुछ घटना घट रही है। जिंदगी में कुछ हैपनिंग मालूम हो रही है, कि कुछ हो रहा है। जिंदगी एक रिपीटेटिव बोर्डम नहीं है, एक उदास चक्कर नहीं है, कि वही सुबह उठ आए, वही सांझ सो गए; कुछ हो रहा है, कुछ नया। युद्ध के वक्त में, दो महायुद्धों में पश्चिम के मनोवैज्ञानिक चकित रह गए, पहले महायुद्ध में, चार-पांच साल जब युद्ध चला, तो एक अदभुत घटना अनुभव में आई। वह अदभुत घटना यह थी कि उन पांच सालों में यूरोप में हत्याएं कम हुईं, आत्महत्याएं कम हुईं, डकैतियां कम पड़ीं, चोरी कम हुईं। मनोवैज्ञानिक चकित रह गए कि युद्ध से इन चीजों के गिराव का क्या संबंध हो सकता है? यह कभी सोचा भी नहीं गया था। यह मसला उलझ गया, यह पहेली बन गई, कि इन पांच सालों में ये सारे पाप नीचे क्यों गिर गए? फिर दूसरा महायुद्ध हुआ और हैरानी हो गई। दूसरा महायुद्ध और बड़ा था, पहले महायुद्ध में साढ़े तीन करोड़ लोग मरे थे, दूसरे में साढ़े सात करोड़ लोग मरे। दूसरे महायुद्ध में हत्याएं, आत्महत्याएं, चारी, डकैतियां, अपराध, मुकदमें और भी नीचे गिर गए। तब एक तथ्य खयाल में आया कि ऐसा मालूम पड़ता है, कि लोग इतने उदास, इतने ऊबे हुए होते हैं, कि कुछ करने का जी चाहता है और आदमी कुछ गलत कर लेता है। और जब तब युद्ध चलता है तो लोग इतने प्रफुल्लित होते हैं, इतने आनंदित होते हैं कि कुछ गलत करने का जी नहीं चाहता। और यह भी समझ में आया कि जब होलसेल गलती हो रही हो, तो फिर प्राइवेट करने की जरूरत क्या है? जब सामूहिक रूप से पागल हो गए हों लोग, तो अलग-अलग प्राइवेट होने की क्या जरूरत है, पागल। यह भी जान कर हैरान होओगे, दोनों महायुद्धों में उन क्षणों में लोग कम पागल हुए, जितने आमतौर से होते हैं। इसका मतलब यह है कि युद्ध लाता है हमारे चारों तरफ किसी तरह की ताजगी, कोई नई बात। और पुरानी ऊबी हुई जिदंगी मस्त हो जाती है। अगर दुनिया से युद्ध मिटाने हैं तो आदमी को इतना मस्त बनाओ कि उसकी जिंदगी मस्त हो, ताकि वह ऊबे न, ताकि वह ऊ बे न तो गलत चीजों में न जाए, अब सारे शिक्षक समझाते हैं, गुरु समझाते हैं, साधु-संन्यासी समझाते हैं कि लोग क्यों डिटेक्टिव फिल्म क्यों देखते हैं, नहीं देखनी चाहिए। देखेंगे लोग क्योंकि जिंदगी में कोई रस नहीं है, वहां थोड़ी पुलक, थिर पैदा हो जाती है।
एक आदमी, एक हत्यारा लगा हुआ है, कार दौड़ा रहा है, एक सौ बीस मील की रफ्तार से किसी के पीछे। तुम्हारा हृदय भी जोर से धड़कने लगता है, तुम भी उस गाड़ी में सवार हो गए हो अंजाने। मोड़ आ रहे हैं तेज और झटके से गाड़ी मुड़ रही कि जरा में पहाड़ के नीचे गिरेगी और घाटी में उतर जाएगी। थ्रिल पैदा हो गई, तुम भी उठ आए हो, देखा रीढ़ ऊंची उठ जाएगी कुर्सी पर। हॉल में देखना कि सब आदमी सजग हो गए हैं कोई आदमी टिका हुआ नहीं बैठा है। तुम्हारी रीढ़ क्यों सीधी हो रही है? कोई गाड़ी में तेजी से जा रहा है। आइडेंटिफिकेशन हो रहा है, तुमने अपने को इकट्ठा कर लिया, तुम पार्ट के हिस्से हो गए हो। गोली चल रही है।

तुमने देखा रास्ते पर कोई झगड़ा चल रहा हो, और तुम परीक्षा ही देने जा रहे हो, तो भी तबीयत होती है, खड़ी करो साइकिल, पहले देख लो झगड़ा। परीक्षा- वरीक्षा गौण है। भीड़ लगाए हैं लोग। खड़े हैं, उसमें तुम शिक्षित आदमी देखोगे, अशिक्षित आदमी देखोगे। एम पी, एम एल ए वहीं खड़े देखोगे। क्या रस आ रहा है? दो आदमी एक-दूसरे के कपड़े फाड़ रहे हैं, या गर्दन को दबा रहे हैं, तुम्हें क्या रस आ रहा है? जिंदगी इतनी ऊ बी हुई है कि कुछ नया हो रहा है, देख रहे हैं।
अमरीका में अभी उन्होंने एक नया खेल ईजाद किया है, जो शायद अब तक के दावों में सबसे खतरनाक है। एक नया खेल, सड़कों पर कारों को दौड़ाते हैं, दो कारों को दौड़ाते हैं दोनों तरफ से। एक लकीर रास्ते में डालते हैं, जिस पर दोनों तरफ से आती हुई कार का एक-एक पहिया होता है। इस तरफ से आने वाली का कार का बायां पहिया, उस तरफ से आने वाली कार का दायां पहिया। एक लकीर पर। दोनों गाड़ियों दौड़ रही हैं, सवा सौ मील की रफ्तार पर, कौन पहले नीचे गाड़ी उतार लेता है, वह हार जाएगा, इस पर दाव लगा है लाख डॉलर का। दोनों गाड़ियां आ रही हैं, एक सौ पच्चीस मील की रफ्तार है, दोनों के चक्के एक ही लकीर पर हैं। एक सेकेंड में खतरा है, और जान खत्म हो जाएगी। गाड़ियां आग लग जाएंगी। कौन उतारता है पहले गाड़ी को नीचे वह हार गया। लाखों लोग देख रहे हैं। श्वासे रुक गई हैं, हृदय ठहरा हुआ है। क्या पागलपन है, क्या कर रहे हो ये, किसलिए? स्पेन में जाओ तो वहां आदमियों को बैलों से लड़ा रहे हैं। लाखों लोग देख रहे हैं। एक आदमी की छाती में सांड के सींग घुस रहे हैं, और लाखों आदमी सांस रोककर देख रहे हैं। क्या हो गया है इस आदमी को? यह क्या कर रहे हो? यह आदमी का सारा जीवन रसहीन है। इस रसहीन जीवन में हमें रस के गलत रास्ते पैदा करने पड़ते हैं। रसपूर्ण बनाओ जीवन को, तो दूसरा सूत्र कहना चाहता हूं कि हमारी शिक्षा रसपूर्ण हो। नाचती हो, गाती हो, प्रफुल्लित हो, स्वतंत्रता हो, सहजता हो, स्वच्छंदता हो, जिंदगी एक बंधन न हो; पच्चीस वर्ष में जब एक युवक युनिवर्सिटी से लौटे तो नाचता हुआ, एक जानदार आदमी हो। तो उसकी जिंदगी में बोरडम नहीं होगी, ऊ ब नहीं होगी, उदासी नहीं होगी, वह एक अच्छी दुनिया बनाएगा, जो दुनिया भी नाचती हुई, हंसती हुई, खुश दुनिया होगी। उसे प्रेम दो, उसे संगीत दो, उसके हृदय को करुणा दो, दया दो; और हम दे रहे हैं हिंसा, हम दे रहे हैं प्रतिस्पर्धा, हम दे रहे हैं काम्पिटीशन, हम दे रहे हैं कंपेरीजन, हम जला रहे हैं उसके भीतर ईर्ष्या की आग, पैदा कर रहे हैं अहंकार; और कह रहे हैं कि हम शिक्षा दे रहे हैं। नहीं यह शिक्षा असफल हो चुकी। एक नई शिक्षा चाहिए एक नये मनुष्य को पैदा करने के लिए।
ये दो छोटे से सूत्र मैंने कहे, और बहुत सूत्र होंगे, वे मैं फिर कभी आऊं तो बात करूं। इन दोनों सूत्रों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करे।

सम्यक शिक्षा
पांचवां प्रवचन

शिक्षा और विज्ञान

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

पहला प्रश्न जो है... कि बाबत। संभव है यह बात। क्योंकि मन की क्षमता
है कि समय और दूरी को पार करके अनुभव किए जा सकें। लेकिन मन की ही क्षमता है, आत्मा से इसका कोई संबंध नहीं। तो तीन बातें समझ लें एक तो शरीर की क्षमताएं वे विकसित की जाएं, तो एक आदमी राममूर्ति बन जाए। चेतना और आनंद की बात भी आपसे भिन्न नहीं हैं। सिर्फ फेफड़ों में जो छिपी हुई शक्ति है, वे उसको अगर पूरी तरह चेंज किया जाए, तो राममूर्ति अपनी छाती पर हाथी को खड़ा कर लें। छाती आपके पास भी वही है। लेकिन छाती की कितनी संभावना है, उसका अभ्यास आपके पास नहीं है। ठीक ऐसे ही मन की क्षमताएं हैं, मन की क्षमताओं का भी अभ्यास किया जाए, तो आप बहुत से चमत्कारी परिणाम उपलब्ध कर लेते हैं। ये सब क्षमताएं आपके मन की भी हैं। लेकिन उनके भी अभ्यास की जरूरत है।
तो अब तक जो वैज्ञानिक शक्ति जो है, कि दूरी, या स्थान या समय मन के लिए बाधा नहीं है। और अभी रूस में और अमरीका में, रोमानिया में, युगोस्लाविया में सारे मुल्कों में वैज्ञानिक साथ चलते हैं। और वैज्ञानिक शोध के लिए बड़े से बड़ा कारण यही रहा है, कि जैसे ही वो अंतरिक्ष में यात्री को भेजेंगे, तो सिर्फ यंत्रों पर निर्भर नहीं रहा जा सकता, क्योंकि यंत्र किसी भी क्षण खराब हो सकते हैं। अगर रेडियेटर खराब हो जाता है, अंतरिक्ष यात्रियों की कोई भी खबर कभी भी नहीं मिलेगी। वे जीवित हैं, मर गए, कहां गए, क्या हुआ? अनंत में खो जाएंगे। तो एक अल्टरनेट कम्युनिकेशन की जरूरत है कि किसी भी क्षण अगर रेडियो यंत्र काम न करे, तो हमारे पास कुछ और व्यवस्था होनी चाहिए जो कम से कम इतनी खबर दे सके कि रेडियो यंत्र खराब हो गए हैं। इतनी खबर दे सकें कि कहां है यात्री; क्या घटित हो रहा है? इसलिए रूस और अमेरिका दोनों के वैज्ञानिक मन की टैलीपैथिक क्षमता पर बहुत खोज में लगे हैं। पहली दफा उनकी उत्सुकता मन की टैलीपैथी के बाबत बढ़ी है, क्योंकि अब वही एक अल्टरनेट इंतजाम हो सकता है। क्योंकि दूसरा कोई भी इंतजाम यंत्र का ही होगा। और वह सभी रेडियो यंत्र पर निर्भर होगा। अगर रेडियो यंत्र खराब हो जाता है, तो खबर, संचार की फिर कोई व्यवस्था नहीं है। तो क्या हम मन से खबर भेज सकते हैं, बिना किसी यंत्र के इस चितां में वे लीन हैं। और जो परिणाम आए हैं वे बहुत... हैं, खबरें भेजी जा सकती हैं। और बड़े आश्चर्य की यह बात है कि रेडियो यंत्र से ज्यादा सुनिश्चित खबरें भेजी जा सकती हैं। और रेडियो यंत्र की बजाय ज्यादा निर्भर रहा जा सकता है। लेकिन सब व्यक्तियों के अध्ययन करने की बात है। सब व्यक्तियों को अध्ययन करने की बात है। अक्सर तो ऐसा होता है कि कुछ लोग संयोगिक रूप से विकसित हो जाते हैं। डीमिक्सन है, यह संयोगिक विकास है। अचानक किसी क्षण में कोई जागरूक हो जाता है, उसके पास यह क्षमता है। लेकिन उस पर निर्भर नहीं रहा जा सकता। क्योंकि विज्ञान तो निर्भर तब हो सकता है, जब यह प्रशिक्षित हो सके। तो रूस ने इस प्रशिक्षण के काम किए हैं। और ऐसे लोगों को प्रशिक्षित किया, जिनको जीवन में कभी ख्याल ही नहीं था कि उनके पास ऐसी क्षमता हो सकती है। और अब दूरसंचार भेजा जा सकता है। अगर रेडियो यंत्र अगर नब्बे प्रतिशत परिणाम देता है, जो पिचानवे प्रतिशत परिणाम टैलीपैथी दे देती है। तो डीमिक्सन जो भी कर रही है, वह बिल्कुल संभव है। उसमें कोई अड़चन नहीं है। और इस तरह के इस समय पृथ्वी पर कम से कम पचास लोग हैं। तो बहुत तरह की मन की संभावनाओं से भरे हुए हैं।
जैसे अमेरिका में ही और व्यक्ति हैं। एक व्यक्ति है जो न केवल मन से सांसारिक संबंधित हो जाता है, बल्कि आंखों में चित्र भी उपलब्ध कर लेता है। और उसकी आंखों के फोटोग्राफ भी लिए गए हैं। अगर वह अमेरिका में बैठ कर ताजमहल के बाबत चिंतन करता है, तो ताजमहल का चित्र उसकी आंख में आ जाता है।

और वह चित्र आंख में ही नहीं आ जाता, वह उसको अनुभव होता है, उसका फोटोग्राफिक चित्र भी लिया जा सकता है। यह भी मन की दूसरी क्षमता है। अगर मन रेडियो की तरह काम कर सकता है, तो टी.बी. की तरह भी काम कर सकता है। लेकिन मेरा कोई संबंध ने तो केवल शरीर की शक्तियों से हैं और न मन की और मैं मानता हूं कि वे दोनो ही बौद्धिक हैं और उनका कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं है। चमत्कार घटित हो सकते हैं, लेकिन ये चमत्कार इसीलिए मालूम पड़ते हैं कि उनके भीतरी नियमों का हमें कोई पता नहीं है। अन्यथा इस जगत में कोई भी चमत्कार नहीं है। और वह चमत्कार हो सकता है। चमत्कार का एक ही अर्थ है कि उसके भीतर काम करने वाले नियम अभी तक ज्ञान के क्षेत्र में प्रकट नहीं हो सके हैं। चमत्कार का अर्थ है हमारा अज्ञान। और चमत्कार का कोई भी अर्थ नहीं है। जिस दिन भी नियम व्यवस्थित ज्ञात हो जाते हैं, उसी दिन चमत्कार लीन हो जाते हैं। और मैं मानता हूं कि रूस और अमेरिका दोनों ही और विशेषकर रूस, क्योंकि रूस की तो कोई धारणा ही नहीं है कि भीतर कोई चमत्कारी संभावना है। सभी कुछ नियमगत और प्राकृतिक है। तो बहुत शीघ्र इन सारी चीजों के नियम ज्ञात हो जाएंगे और मेरी समझ यह है कि इस सदी के पूरे होते- होते जैसे हम और चीजों के भी प्रशिक्षण देते हैं, ठीक हम टैलीपैथी के लिए प्रशिक्षण दे सकेंगे। देना ही पड़ेगा। क्योंकि अंतरिक्ष की यात्रा के बाद साधारण आदमी के पास जो मन है, उससे काम नहीं चलेगा। जब हम अनंत के विस्तार में प्रवेश कर रहे हैं तो हमारे पास अनंत में प्रवेश करने योग्य सक्षम मन भी चाहिए। सिर्फ यंत्रों से काम नहीं होगा। तो मेरे लिए यह और भी मूल्यवान है कि चांद पर आदमी जा रहा है, मंगल पर जाएगा। चांद और मंगल का मेरे लिए मूल्य नहीं है, मेरे लिए मूल्य है कि चांद और मंगल पर जाने के लिए उसे चेतना के भी नये आयामों में प्रवेश करना पड़ेगा। जैसे ही हम तकनीकी दृष्टि से एक चीज में आगे बढ़ते हैं, वैसे ही हमें चेतना में भी उतना ही आगे बढ़ना पड़ता है। अन्यथा तकनीक में हम ज्यादा आगे नहीं जा सकते। जैसे एटम बम है, मैं मानता हूं कि यह बहुत ही सुखद खोज है, क्योंकि एटम बम के बाद आदमी को अब पुराने ढंग की बेवकूफियां छोड़नी पड़ेंगी, या बचेगा नहीं। एटम बम के साथ ही आपको एक जाग्रत चेतना विकसित करनी पड़ेगी, राष्ट्रीय चेतना अब काम नहीं कर सकती है, क्योंकि राष्ट्रीय चेतना भिन्न साधनों से काम करती थी, वे साधन दो कौड़ी के हो गए। अब जो साधन आपके हाथ में हैं उनके लिए पूरी पृथ्वी उपयोगी है। अब आप छोटे मन से काम नहीं कर सकते। या आदमी को मिटना पड़ेगा। और आदमी मिटने को कभी राजी नहीं है। इसलिए बदलने को सदा राजी हो जाता है। लेकिन मुझे प्रयोजन नहीं है। मेरी उत्सुकता भी नहीं है। मुझे कोई अर्थ नहीं है कि चांद पर क्या हो रहा है, कहां क्या हो रहा है? एक ही प्रयोजन और एक ही उत्सुकता है कि अंतरतम में क्या हो रहा है?

प्रश्नः आपका चिंतन जनता तक क्यों नहीं पहुंचता, आप सिर्फ पैसे वालें
के लिए चिंता और चिंतन करते हैं?

इसमें थोड़ी दूर तक सच्चाई है। एक तो मैं मानता हूं कि चिंतन जनता तक पहुंच सकता है, जितना गहन चिंतन होगा उतने थोड़े लोगों तक पहुंचेगा। जितना साधारण चिंतन होगा, उतने ज्यादा लोगों तक पहुंचेगा। क्योंकि पहुंचने में चिंतन ही मूल्यवान नहीं होता, वही अर्थ वहीं नहीं होता, जिस तक पहुंचना है, वह भी अर्थवान है। तो अगर चिंतन में बहुत गहराइयां हों तो आम जनता तक उसे नहीं पहुंचाया जा सकता। आम जनता का मतलब ही यही है, कि जो बहुत सतह पर जी रही है, और जिसे गहराई तक के सवाल नहीं पहुंचाए जा सकते। लेकिन मैं मानता भी नहीं हूं कि पहुंचाने जरूरी हैं। क्योंकि इस जगत को जो, जिसे समझ लें आप चिंतन करते हैं तो आपके मस्तिष्क में होता है, पैरों तक नहीं पहुंचता, पहुंचाने की जरूरत भी नहीं है। अगर मस्तिष्क सक्रिय हो जाता है, तो पैर उसका अनुगमन करते हैं। जिसको हम आम जनता कहते हैं, वह कभी भी किसी चीज में अग्रणी नहीं होती, हो भी नहीं सकती। समाज के पास भी एक मस्तिष्क है, वही अग्रणी होता है। शेष समाज पीछे चलता है। जिन क्रांतियों को हम जनता की क्रांति कहते हैं, वे भी व्यक्तियों से अनुप्राणित होती हैं। तो मार्क्स

का चिंतन, जनता का चिंतन नहीं है। मार्क्स को बैठ कर ब्रिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में चौबीस घंटें मेहनत में लगा हुआ है। और मार्क्स जनता तक पहुंचा भी नहीं सका अपने जीवन में कुछ भी। पहुंचा भी नहीं सकता। लेकिन इंटेलिजेंस... एक समझदार वर्ग को उसने पकड़ लिया, वहां तक बात पहुंच गई, वह मस्तिष्क है। एक दफा वह अनुप्राणित होता है और चल पड़ता है, तो जनता पीछे चलती है। मेरे लिए जनता का बहुत मूल्य नहीं है। मूल्य ही नहीं मेरे मन में। मेरे लिए मूल्य ही समाज के भीतर जो, बुद्धि है उसका मूल्य है। अगर उसको अनुप्राणित किया जा सकता है, तो जनता पीछे चल पड़ती है। जनता को सीधे अनुगमन करने का कोई भी उपाय नहीं है, एक बात।
दूसरी बात यह भी थोड़ी दूर तक सत्य है कि धनिक वर्ग मेरे निकट इकट्ठा होगा। इसे भी थोड़ा समझ लेना चाहिए। जीवन जो हैं संयुक्त है। धन एकांगी घटना नहीं है। जहां धन है वहां शिक्षा भी ज्यादा होगी। जहां धन है, वहां समझ भी ज्यादा होगी; तुलनात्मक जहां धन है वहां समझ भी ज्यादा होगी, शिक्षा भी ज्यादा होगी, जहां धन है वहां सुविधा भी ज्यादा होगी; जहां धन है वहां समझने के लिए आकांक्षा भी ज्यादा होगी। उसका कारण है क्योंकि समझ को मैं लग्जरी मानता हूं। समझ गरीब आदमी का काम नहीं है। ही कैन नॉट बी अफर्टेड। समझ समग्र जीवन की सबसे अधिक विलासपूर्ण अवस्था है। तो समझ का जो फूल है, वह विलास में खिलता है। बुद्ध हों या महावीर, ये सब विलास के फूल हैं। अगर एथेंस में प्लेटो और साक्रेटीज, और अरस्तू पैदा हुए तो वे सब लक्जुरियस एथेन, विलास के शिखर हैं। अगर भारत ने भी दुनिया को शीर्ष चंतन दिया, तो वह उसी समय दिया, जब भारत दरिद्र नहीं था। और उसके स्वर्ण शिखर पर उसकी ऊं चाई थी। आज तक दुनिया में कोई दरिद्र समाज कोई गहरा चिंतन नहीं दे सका। दे नहीं सकता। समृद्धि जो है, समृद्धि का मतलब इतना है कि अब शरीर की आम जरूरतों से छुटकारा हुआ। अब आपकी चेतना किन्हीं भिन्न आयामों में प्रवेश करने के लिए छूटती है। विलास का मतलब ही इतना है कि अब आप कला में, संगीत में, साहित्य में, धर्म में, ध्यान में रस ले सकते हैं।
गरीब आदमी का मतलब क्या है? गरीब आदमी का मतलब इतना है कि अभी उसकी शरीर की भी जरूरतों को पूरा करने की सुविधा उसके पास नहीं है। जिसके पास सुविधा शरीर की जरूरतों को पूरा करने की नहीं है, उसके पास मन की जरूरतें पैदा भी नहीं होती। और जिसके पास मन की जरूरतें पूरी करने की सुविधा नहीं, उसके पास आत्मा की जरूरतें पैदा नहीं होती। ये जरूरतें सीमित हैं। सबसे पहले जो जरूरी है, वह शरीर है, जो शरीर को सुविधा जुटा पाता है, वह मन के आयाम में अतृप्त होने लगता है। जब मन की भी सुविधा जुट जाती है, तो आदमी आत्मा के आयाम में अतृप्त होता है। शरीर की सुविधा नहीं जुटती है तो आत्मा की बातचीत असंभव है। या झूठी है। या बहाना है। और उसमें बहुत गहराई नहीं हो सकती। तो मेरे मन में, गरीब का मतलब ही यह है कि जो गहन चिंतन में प्रवेश नहीं कर सकता। यही तुलनात्मक कह रहा हूं। अपार व्यक्ति हो सकते हैं, उनका मैं हिसाब नहीं रखता। विलास के साथ ही आदमी को सुविधा मिलती है कि अब वह कुछ और भी कर सकता है। चित्र पेंट करे, वीणा बजाय, ध्यान करे। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं यह कह रहा हूं कि ये चीजें फिजूल हैं, अगर एक पौधा हम लगाते हैं तो पहले तो पौधें में जड़ें होती हैं; फूल तो आखिर में आता है। और फूल तब ही आता है जब पौधों के पास सुपरथिनीयस एनर्जी हो। नहीं तो फूल नहीं आएगा। अगर पौधा अपने जीवन को ही बचाने में लगा हुआ है, तो फूल नहीं आएगा। फूल तो आएगा तभी जब जीवन के बचाव के बाद शक्ति बचती है। तो धर्म मेरे लिए फूल है। तो मेरी तो मान्यता ही यही है कि धार्मिक समाज हो ही तब सकता है जब वह समृद्ध हो। गरीब समाज धार्मिक नहीं हो सकता। और गरीब समाज के लिए मेरी स्वीकृति है कि मार्क्स ठीक कहता है, कि धर्म अफीम का नशा है। गरीब समाज के लिए धर्म अफीम का नशा है, यह मार्क्स ठीक कहता है, मेरे हिसाब से तो किसी और कारण से। यह ठीक ऐसा ही नशा है, जैसा भूखा आदमी वीणा बजाने में अपने को भुला रहा हो। भुला तो नहीं सकता, मिटा तो नहीं सकता; थोड़ी-बहुत देर के लिए गमगीन हो सकता है। न्यून हो सकता है। भूख मिटेगी नहीं, और बढ़ेगी।
एक मजे की बात है कि जब भी कोई समाज गरीब होता है, तब भी वह धर्म में उत्सुक होता है, लेकिन उसकी उत्सुकता समझने जाएं, और मैं अनुभव से कहता

हूं, गरीब आदमी मेरे पास आता है, वह कहता है मन में बड़ी अशांति है। लेकिन वह गलत शब्दों का प्रयोग कर रहा है। जब मैं उससे पूछता हूं क्या अशांति है? तब वह कहता है, लड़की की शादी नहीं हो रही है। कोई कहता है कि लड़के को नौकरी नहीं मिली। वह कहता है पत्नी बीमार है। इनका मन से कोई संबंध नहीं है। ये सब शरीर के तल की अशांतियां हैं। इनको वह मन की अशांति कह रहा है। एक अमीर आदमी मेरे पास आता है, वह कहता है मन में बड़ी अशांति है, उसकी अशांति बिल्कुल और है। लड़की की शादी हो गई है, लड़का नौकरी पर है, सब कमाई है, सब ठीक... सब ठीक है। वहां वह गरीब आदमी का सब गलत है, वहां सब ठीक है। और फिर उसको अनुभव हो रहा है कि कुछ भी ठीक नहीं। तो यह तो कोई दूसरे तल की अशांति है। यह मानसिक है। इसलिए यह बड़े मजे की बात है कि गरीब आदमी और गरीब समाज में मानसिक बीमारियां नहीं होती, हो नहीं सकती। अमीर समाज में मानसिक बीमारियां शुरु होती हैं। गरीब समाज की बीमारियां शारीरिक होती हैं, अमीर समाज की बीमारियां मानसिक होती हैं। और जब अमीरी आखिरी दशा में पहुंचती है, तब आत्मिक बीमारियां शुरु होती हैं, और इलाज तो तभी किया जा सकता है, जब बीमारी हो। और मेरी तकलीफ यह है कि आपका मन बीमार नहीं है, मैं आपको नौकरी नहीं दिला सकता। मैं आपकी लड़की की शादी नहीं करवा सकता, इससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। मैं आपके मन को शांत होने का उपाय जरूर बता सकता हूं, लेकिन मन अभी आपका अशांत नहीं है। और जब आप कहते हैं कि मेरा मन अशांत है, तब आप गलत शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं, अभी आपको पता ही नहीं कि मन की अशांति क्या है? मन की अशांति शुरु ही तब होती है, जब शरीर की सारी अशांति समाप्त हो जाए। नहीं तो मन की अशांति शुरु नहीं होती।
तो मेरी तकलीफ यह है कि गरीब आदमी मेरे पास आता है तो मैं अनुभव करता
हूं कि उसके लिए मैं कुछ भी नहीं कर सकता। कर नहीं सकने का कारण है कि वह जो वह कह रहा है, वह उसकी अशांति नहीं, जो मैं कर सकता हूं, उससे उसका कोई तालमेल नहीं है। मैं एक अमीर समाज के पक्ष में हूं। मैं गरीब समाज के बिल्कुल ही विरोध में हूं। अगर मैं कहता हूं, मैं गरीब समाज के विरोध में हूं तो मेरा विरोध समाजवादी का विरोध नहीं है। समाजवादी का विरोध यह है कि हम अमीर को विसर्जित कर दें। गरीब को बांट दें। मैं मानता हूं यह समाज को और बड़ी ला देगा। मैं अमीर समाज के पक्ष मे ंहूं, ठीक पूंजीवादी अर्थ में। मैं चाहता हूं गरीब, गरीब न रह जाए, अमीर हो। और इसलिए चाहता हूं ताकि एक दिन वह भी मानसिक अशांति का मजा ले सके। क्योंकि जो मानसिक अशांति का मजा लेगा, वही मानसिक शांति का मजा ले सकता है। और इसलिए चाहता हूं कि एक दिन वह भी आत्मिक रूप से पीड़ित हो सके। क्योंकि जो आत्मिक रूप से पीड़ित होगा, वही आत्म-साक्षात्कार की तरफ जाएगा। पीड़ा शारीरिक है। तो मेरी तकलीफ क्या है? मेरी तकलीफ यह है कि पीड़ा शारीरिक है। और उस शारीरिक पीड़ा को शरीर के तल पर मिटाया जाना चाहिए। उसको मन के तल पर मिटाने का कोई मतलब नहीं होता। उस आदमी को टेक्नालॉजी की जरूरत, धन की जरूरत है, मकान की जरूरत है। और मेरा मानना यह है कि अब तक वह गरीब इसलिए बना हुआ है कि इस जरूरत को वह ठीक से नहीं समझ रहा है। वह इसको आध्यात्मिक और मानसिक बातों में समय खराब कर रहा है। गरीब आदमी को धर्म की बात करना बिल्कुल अफीम देना है। उससे टेक्नालॉजी की बात करनी चाहिए। उसको बताया जाना चाहिए कि वह धन कैसे ज्यादा पैदा करे? अब रह गया सवाल यह कि क्या मैं गरीब आदमी को बताऊं कि वह धन कैसे ज्यादा पैदा करे? यह सवाल है। क्योंकि मन कैसे उसका शांत हो, यह अभी उसका सवाल नहीं है, इसलिए जवाब का कोई प्रश्न नहीं उठता। क्या मैं उसको बताऊं कि वह धन कैसे ज्यादा पैदा करे? क्या मैं उसको बताऊं कि वह कैसे समृद्ध हो? क्या मैं उसको बताऊं कि वह कैसे दुकान चलाए? इसमें भी मेरी कठिनाई है। क्योंकि मेरा अनुभव यह है कि आदमी जैसा है, आदमी जैसा है, उसको ज्यादा धन दे दो, इसको बड़ा मकान दे दो तो बड़े मजे की घटना घटती है कि इसके पुराने दुख तो मिट जाते हैं, फिर इसके नये दुख शुरु हो जाते हैं।
दुख नहीं मिटते, सिर्फ नये तल पर दुख शुरु हो जाते हैं। अगर मनुष्य-जाति का हम पूरा इतिहास देखें, तो हम सदा इस आशा में रहेंगे कि यह चीज हल हो जाए, तो सब हल हो जाएगा। फिर वह हल हो जाती है और कुछ हल नहीं होता। हजारों बार ऐसे मौके आए, जब हमें लगा कि यह हल हो जाए, तो सब हल हो जाएगा। लेकिन जब

भारत गुलाम था, तो सारे मुल्क के समझदार आदमियों को लगता था कि भारत स्वतंत्र हो जाए, तो सब हल हो जाए। जैसे सब हल स्वतंत्रता में ही रखा हुआ था। फिर हम स्वतंत्र हो गए, कुछ हल नहीं हुआ। वह हम बात भी भूल गए, जो हम सोचते थे सब हल हो जाएगा। नये सवाल खड़े हो गए।
अमरीका पहली दफा ठीक से समृद्ध हो गया है। तो अमरीका के तीन सौ वर्ष
के या ढाई सौ वर्ष के जितने विचारशील लोग थे, सबकी चेष्टा का फल कि अमरीका समृद्ध हो गया। पर उन सबने जो सोचा था कि समृद्धि से मिलेगा, ऐसा कुछ भी नहीं मिला। और उनमें से एक ने भी नहीं सोचा था, जो मिला। जो मिला है, उनमें से एक ने नहीं सोचा था कि यह होगा। न फर्ग्युसन ने साचा, न लिंकन ने साचा, न इमर्सन ने साचा कि हिस्ट्री पैदा होंगी। तीन सौ वर्ष के अमरीका के चिंतकों ने सोचा कि सबको सार्वजनिक शिक्षा होनी चाहिए, सब शिक्षित हो जाएंगे तो सब ठीक हो जाएगा। और सब शिक्षित हो गए, तब पता चला कि ठीक कुछ भी नहीं हुआ, बल्कि एक शिक्षित आदमी नये उपद्रव पैदा करता है, जो अशिक्षित ने कभी भी पैदा नहीं किए। आज इंग्लैंड में, फ्रांस में, स्वीडन में हिंदू- मुसलमान का झगड़ा नहीं है। ईसाई-मुसलमान का झगड़ा नहीं है, प्रोटेस्टेंट-कैथोलिक का झगड़ा नहीं है। वे सब पुराने पड़ गए। विचारक लोग सोचते थे कि जिन-जिन धर्मों में झगड़े नहीं रहेंगे, उस दिन बड़ी शांति हो जाएगी। लेकिन बड़े बेहूदे और नये झगड़े खड़े हो गए।
अभी मेरे पास दो सन्यासी आए इंग्लैड से। तो इंग्लैंड में दो ग्रुप हैं। एक लंबे बाल वाले युवकों का ग्रुप और सिर घुटे बाल वाले युवकों का ग्रुप। और झगड़े की कुल जमा फिलासफी इतनी है कि तुम्हारा सिर घुटा नहीं है। ये जो सिर घुटे वाले युवक हैं, ये लंबे बाल वालों को मारेंगे, बाल काटेंगे, चोट करेंगे, उनके सामान मिटा देंगे, हत्याएं हो जाएंगी। ये लड़कों का जो संन्यासी आश्रम था उन्होंने इसको लूट लिया। बड़ी हैरानी हुई, जो मुकदमें चलते हैं। अदालतों में जो उनके वक्तव्य हैं, वे देखने लायक हैं। क्योंकि वे यह कहते हैं कि हमें हिंसा में आनंद आता है। प्रयोजन नहीं है। वे कहते हैं कि कामवासना हमारे लिए बोर्डम हो गई, क्यांकि सब सुविधाएं हो गई, स्त्री उपलब्ध है। अब सिर्फ एक हिंसा रही, जिसमें हमें थोड़ी सी... हम किसी की छाती में जब छुरा भोंकते हैं, तो क्षण भर को हमें लगता है कि आनंदित हो गए हैं। इनके बापदादों ने पांच सौ साल में कभी नहीं सोचा था कि जिस दिन हम इनको सारी सुविधा जुटा देंगे, और जिस दिन धन होगा, और जिस दिन यह शिक्षा होगी। उस दिन ये लड़के हिंसा में ऐसा रस लेंगे। हम सबको खयाल है कि आदमी हिंसा इसलिए करता है कि उसके पास खाने को नहीं है। गलती है आपकी। हमारा खयाल है कि आदमी इसलिए लड़ता है, क्योंकि उसके पास सुंदर स्त्री नहीं है, गलती है आपकी। आपको अभी उस समाज का पता नहीं, जहां जिसमें सब सुंदर स्त्री उपलब्ध है, और धन उपलब्ध है, और सब सुविधा उपलब्ध है। तब आदमी हिंसा बेकारण कर सकता है, इसका हमें ख्याल भी नहीं है। तो जैसा मैं देखता हूं, मेरा मानना ऐसा है कि जैसा समाज है, समाज सदा दुखी रहेगा। एक मेरी धारणा है। जैसा समाज है, सदा दुखी रहेगा, दुख के तल बदलेंगे। दुख के आयाम बदलेंगे, दुख के ढंग बदलेंगे, समाज सदा दुखी रहेगा। समाज कभी भी सुखी नहीं हो सकता। व्यक्ति सुखी हो सकता है। और व्यक्ति के सुख का मतलब उसको आत्म रूपांतरण करना पड़ेगा, तो वह सुखी होगा है। अगर दुख के कारण बाहर है, जैसा कि दो सौ वर्ष का चिंतन है सारी दुनिया का कि दुख के कारण बाहर हैं। तो दुख के कारण जहां मिट गए हैं, वहां सुख आ जाना चाहिए था, वहां सुख नहीं आ सका।
मेरी अपनी दृष्टि है कि दुख के कारण बाहर नहीं हैं और यह धर्म की सदा
की दृष्टि है। लेकिन अब मैं मानता हूं कि इसके लिए वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध हैं, अब तक नहीं थे। बुद्ध ने भी कहा है कि सुख बाहर के कारणों पर निर्भर नहीं है। लेकिन बुद्ध इसके लिए प्रमाण नहीं दे सकते थे। लेकिन अब प्रमाण उपलब्ध हैं। क्योंकि जिन समाजों में बाहर के सब कारण मिटा दिए गए हैं, वहां दुख घना हो गया है, कम नहीं हुआ। तो मेरे लिए मूल्यवान व्यक्ति है, समाज नहीं। यही मैं राजनैतिक और धार्मिक व्यक्ति की दृष्टि का अंतर मानता हूं। मेरे लिए तुम मूल्यवान हो, समाज नहीं, क्योंकि तुम भीतर जा सकते हो, समाज भीतर नहीं जा सकता। और अगर मैं कहता हूं, समाज की गरीबी मिटे,

तब मैं तुम्हारे भीतर जाने की यात्रा शुरु करूंगा, तो तुम भी मिट जाओगे, मैं भी मिट जाऊं गा। और समाज तो चलता रहेगा।
तो समाज के नाम पर पोस्टपोंडिंग करने के लिए मैं राजी नहीं हूं। तो मेरा मानना जो भी इस स्थिति में आयें, जो अंतर्यात्रा पर जा सकें वे जाएं। जो नहीं हैं इस स्थिति में वे अपनी बाहरी तरफ यात्रा पर लगे रहें, आज नहीं कल जब उनको सुविधा मिल जाएगी, तब उनको भी अंतर्यात्रा पर जाना पड़ेगा। उनमें जो बुद्धिमान हैं, वो आज भी अंतर्यात्रा पर जा सकते हैं। क्योंकि बुद्धि का मतलब ही इतना है कि वह भविष्य को भी देख पा सकें। लेकिन गरीब आदमी भी अगर बुद्धिमान है तो अंतर्यात्रा पर जा सकता है। अमीर आदमी बुद्धिहीन है, तो भी अंतर्यात्रा पर जा सकता है। क्योंकि उसकी सिच्युएशन उसको भटका देती है, गरीब आदमी की सिचुएशन उसको भटका नहीं देती। उसका चिंतन ही भटका दे सकता है। और मेरी उत्सुकता इसमें बिल्कुल नहीं है, सामाजिक रूपांतरण दुखों को मिटा देगा, यह मिथ्या पुरानी कल्पना है, यह बात समाप्त हो गई है। यह कभी नहीं होने वाला। क्योंकि हमने सब करके देख लिया, कियी को लगता था कि शिक्षा नहीं है, इसलिए सब है, तो शिक्षा हो गई, और दुख बढ़ गए। शिक्षित समाज ज्यादा दुखी है, अशिक्षित समाज की बजाय। और अशिक्षित समाज अगर दुखी है तो सिर्फ इसीलिए कि शिक्षित सुख उठा रहे होंगे। बड़ा मजे का मामला है। बड़ा मजे का मामला है।
मेरी उत्सुकता नहीं है कि सबको सुख आयें, मेरी उत्सुकता है कि शिक्षित हों या अशिक्षित हों, भीतर जाने की प्रक्रिया उनके खयाल में आए। मैं यह जानता हूं कि शिक्षित को जल्दी आ सकती है, इसलिए शिक्षित हो जाएं तो अच्छा है। लेकिन यह मेरी धारणा नहीं कि शिक्षित होने से उनका दुख मिटने वाला है। न, उससे नहीं मिटने वाला है। इसलिए मैं सीधा उत्सुक नहीं हूं। मैं सीधा उत्सुक नहीं हूं। मैं सीधा उत्सुक नहीं हूं। क्योंकि मेरी अपनी समझ यही है कि चाहे जीवन के मूल्यों का सवाल हो, चाहे कोई और सवाल हो। एक छोटा सा वर्ग नेतृत्व करता है। मैं लोकतांत्रिक नहीं हूं। डेमोक्रेटिक मेरी दृष्टि नहीं है। और मैं मानता हूं कि डेमोक्रेसी सौ साल से ज्यादा दुनिया में नहीं चल सकती। और तभी तक चल सकती है, जब तक पूरी नहीं आ गई। जिस दिन पूरी आ जाएगी, उस दिन उसकी मूढ़ता आनी दिखाई पड़ जाएगी।
कठिनाई यह है कि जब तक कोई चीज पूरी न आए, तब तक उसकी मूढ़ता हमें दिखाई
भी नहीं पड़ सकती। वह पूरी आए तो जिस चीज से हम, जो मौजूद होती है, उससे हम लड़ते हैं, क्योंकि उसकी बुराई दिखाई पड़ती है। जो मौजूद नहीं है, उसके लिए हम लड़ते हैं, क्योंकि उसकी भलाई दिखाई पड़ती है। जब वह पूरी तरह आ जाए, जैसे आज सार्वभौम शिक्षा अमरीका में मूर्खतापूर्ण हो गई है। और बुद्धिमान लड़के युनिवर्सिटी छोड़ कर भाग रहे हैं। जिनका भी आई क्यू थोड़ा ज्यादा है, वे ड्रॉप आउट हो जाते हैं, और जिनका आई क्यू छोटा है, युनिवर्सिटी में पढ़ रहे हैं। जिनके पास बुद्धि कम है, वो लगे हैं पढ़ने में। जिनके पास बुद्धि है, वह युनिवर्सिटी के बाहर आ रहे हैं, क्योंकि वह कह रहे हैं कि तुम्हारी युनिवर्सिटी से कुछ भी नहीं मिला। तुम्हारी शिक्षा से कुछ नहीं मिला, वह एक धोखा था। लेकिन यह धोखा तब तक चल सकता था, जब तक शिक्षा पूरी नहीं हुई, अब वह पूरी हो गई है। अब मुसीबत पता चली तो वह धोखा साबित हुई, उससे कुछ मिलने वाला नहीं है। अगर आज लड़के को उसका बाप कह रहा है कि तुम विश्वविद्यालय में पढ़ो तो वह लड़का पूछ रहा है, तुम पढ़े थे, तुम्हें क्या मिला? तुम्हें कुछ मिला हो तो हमें कहो। अब बाप यह नहीं कह सकता कि नौकरी मिली। क्योंकि नौकरी तो आज अमरीका में गैर पढ़े-लिखे को भी मिलती है। यह गरीब बाप कह सकता है कि नौकरी मिलेगी, कपड़ा मिलेगा, मकान मिलेगा। आज अमेरिका में बाप यह भी नहीं कह सकता कि कपड़ा मिलेगा, कि मकान मिलेगा, कि नौकरी मिलेगी। यह तो बिना इसके भी मिल सकता है। यह कोई सवाल न रहा। और लड़का यह कह सकता है कि तुमको कपड़ा मिल गया, मकान मिल गया, कार मिल गई, सब मिल गया लेकिन जिंदगी कहां है तुम्हारे पास? तुम कुम्हला गए इस सबको पाने में, सड़ गए। न तुमने कभी प्रेम किया, न तुमने कभी गीत गया, न तुम नाचे। तो कपड़े तो मिल जायेंगे, ठीक इतने अच्छे नहीं मिलेंगे, लेकिन हम नाचना चाहते हैं। गाना चाहते हैं। प्रेम करना चाहते हैं।

आज अमरीकन लड़का अपने बाप से कह रहा है कि तुम्हारी सारी शिक्षा ने सिवाय युद्धों के और क्या पैदा किया है? हम लड़ना नहीं चाहते, हमें प्रेम करना है। आज अमरीका में हिप्पी बोर्ड लगाए हुए हैं, बी लव नॉट वॉर। और उसका कहना ठीक है, वह कहता है कि जब तक कोई समाज प्रेम करने में समर्थ नहीं होगा, तब तक वह लड़ेगा ही। वह बच नहीं सकता। इसलिए सभी युद्धखोर प्रेम के खिलाफ बोलते होते हैं। अगर सैक्स सप्रेस किया जाए, तो ही तुमको लड़वाया जा सकता है, नहीं तो लड़वाया नहीं जा सकता। इसलिए हमेशा होता है कि जब भी कोई समाज बहुत पड़ जाता है सेक्स के मामले में, तो फिर जीत नहीं पाता। हार जाता है। आज अगर अमरीका वियतनाम में नहीं जीत सकता, तो इसका कारण है कि जिस सैनिक से वह लड़ रहा है, वह भूखा है, वह आतुर है, कामवासना से अतृप्त है। और अमरीकन लड़का न भूखा है, न आतुर है, न काम वासना से अतृप्त है, लड़ने का उसे कोई कारण नहीं है। तुम हमें जबरदस्ती लड़ा रहे हों, हमारा कोई कारण नहीं है। कोई वजह नहीं समझ में आती इसको कि लड़ना किस लिए है? यह मजे की बात है कि जब भी कोई श्रेष्ठ सभ्यता किसी निकृष्ट सभ्यता से लड़ेगी तो निकृष्ट जीत जाएगी और श्रेष्ठ हारेगी। यह भारत का दो हजार साल का अनुभव है। हम उन सभ्यताओं से हारे, जिनके पास कुछ भी नहीं था। लेकिन भूख थी, वासना थी, काम अतृप्त था। तो मुगलों ने, तुर्कों ने हूणों ने हमें रौंद डाला। हमारे पास लड़ने का कोई कारण नहीं था। जब भी आपके पास सब होता है, तब आप चाहते हैं झंझट न हो। अगर सुख नहीं हो तो तब आप चाहते हैं, झंझट हो जाए। क्योंकि झंझट से शायद कुछ निकल भी आए, और सदा निकलता है। सदा निकलता है। क्योंकि खोने को कुछ होता नहीं। झंझट से कुछ न कुछ मिलेगा ही, और मिलेगा ही, नहीं मिलेगा तो कुछ खोने वाला नहीं हैं। तो यह जो तकलीफ है। अब अमरीका शिक्षित हुआ तब पता चला कि यह शिक्षा तो अब डूब जाएगी, यह चल नहीं सकती। अमरीका धनी हुआ तो पता चला कि धन बिल्कुल बेकार है। अमेरिका टेक्नालॉजिकली आज सशक्त हो गया, तो आज अमरीका को लग रहा है कि हमें मशीन से छुटकारा चाहिए। मशीन जान लिए ले रही है। क्योंकि मशीन धीरे-धीरे आदमी पर कब्जा किए जा रही है, हमको दिखाई नहीं पड़ता, पता भी नहीं चलता, क्योंकि हम आदी हो जाते हैं। जब आप चौरस्ते से गुजरते हैं और लाइट आपको रास्ता न दे, तो आप चुपचाप खड़े रहते हैं, आपको खयाल भी नहीं कि मशीन आपको आज्ञा कर रही है। मशीन आज्ञा कर रही है और आप रुके हुए खड़े हैं। और कहीं खयाल नहीं आ रहा है कि मशीन की गुलामी है। अमरीका को पता चला क्योंकि यह लाइट का ही मामला नहीं है, चौबीस घंटे सब तरफ से मशीन गुलाम किए हुए है।
अभी लड़कों ने बढ़ती हुई युनिवर्सिटी में खड़े होकर एक कीमती रॉल्स रॉयल गाड़ी जलाई, सिंगल सीटर। वे मशीन से छुटकारा चाहते हैं। कोई चीज जब पूरे पैमाने पर आती है, तब पता चलता है। न्यूयार्क में उन्नीस सौ में बग्गी से, घोड़ा गाड़ी की रफ्तार साढ़े ग्यारह मील थी, और अब कार की रफ्तार साढ़े सात मील है प्रति घंटा। और यह अगर पांच साल चला तो, कार की रफ्तार आदमी की पैदल रफ्तार से कम हो जाएगी। लेकिन यह तब तक आपको पता नहीं चल सकता जब तक कारें पूरी तरह से उपलब्ध न हो जाएं। हमारी तकलीफ यह है कि कोई भी चीज जब तक पूरी न हो जाए... लोकतंत्र मरेगा, सौ साल से ज्यादा जिंदा नहीं रह सकता। गरीब मुल्कों में जिंदा रहेगा, अमीर मुल्कों में खत्म होगा। खत्म होगा, उसका कारण है क्योंकि अब साफ समझ में आना शुरु हुआ कि जितना तुम नीचे के आदमी से सलाह लेते हो, उतनी नीची सलाहें मिलती हैं। मिलेगी ही, उसका कोई और उपाय नहीं है। और जब नीचे का आदमी चुनाव करने लगता है, तो ठीक है, जिनको उसका प्रारंभिक... है उनको चुनता है। इसलिए लोकतंत्र न्यूनतम राजनीतिज्ञ को ऊपर पहुंचाने में समर्थ होते जाते हैं। जो जितना न्यूनतम है, उतना जल्दी ऊ पर पहुंच सकता है।
अब मेरी दृष्टि यह है कि सवाल यह नहीं है कि गरीब को कैसे प्रशिक्षित किया जाए श्रेष्ठ मूल्यों के लिए? मेरे लिए सवाल यह है कि जो श्रेष्ठ है, उसको कैसे प्रशिक्षित किया जाए कि वह भीड़ से जगत को बचाए। मेरी जो प्रॉब्लम है, वह बिल्कुल और है। जिसको आप डेमोक्रेसी कहते हैं, वह डेमोक्रेसी नहीं है। वह लोकतंत्र नहीं है, भीड़तंत्र है। और भीड़ मजबूत होती चली जा रही है, सब तरफ से गर्दन कटती जा रही है। और मजे की बात यह है कि

इस गर्दन कटने में भीड़ अपना भी नुकसान करेगी। मगर उसको पता भी नहीं चल सकता। उसको पता भी नहीं चल सकता। उसको पता भी नहीं चल सकता है। आज भीड़ कहती है कि तुम्हारे पास धन ज्यादा नहीं होना चाहिए, कल भीड़ कहेगी कि कुछ लोगों के पास बुद्धि ज्यादा क्यों? क्योंकि धन से क्या खिलाफत है? धन से यह खिलाफत है, कि जिसके पास धन है, वह मालकियत करता है। या फिर पढ़ने वाला, जिसके पास बुद्धि है, वह मालकियत करेगा। मालकियत से कठिनाई है। आज नहीं कल भीड़ कहेगी कि आदमी में बुद्धि ज्यादा क्यों होनी चाहिए? बुद्धि का वितरण कर दो। अगर कोई बच्चा सौ आई क्यू से ज्यादा है, तो उसको तुम नीचे लाओगे, क्योंकि वह तल पर होना चाहिए, किसी के पास ज्यादा बुद्धि होगी तो वह खतरनाक है। खतरनाक इसलिए है कि वह अनंतताओं तक पहुंच जाएगा, वहां उसका मैलीपुलेट करेगा। आखिर बचोगे कैसे?
रूस ने यह इंतजाम कर लिया है कि अमीर और गरीब को हम नहीं बचने देंगे, मिटा देंगे। लेकिन क्या फर्क पड़ता है, आज अमरीका में एक गरीब आदमी जितनी ऊंचाई पर पहुंच सकता है, न भी पहुंचे तो गरीब रह कर भी जितना अमीर होता है, रूस का आदमी उतना अमीर नहीं है। रूस का जो नोबल प्राइज विनर है, उसको भी एक प्राइवेट कार मिल जाए तो वह समझता है कि स्वर्ग मिल गया। रूस का जो, जिसको हम कहें अमीर वर्ग, वह अमरीका के गरीब वर्ग से पीछे है। मगर एक लिहाज से तृप्त है। क्योंकि ईर्ष्या के लिए मौका नहीं है कि उनमें कोई अमीर नहीं हैं। गरीब की तृप्ति इसमें नही है कि वह गरीब न रह जाए, उसकी तृप्ति इसमें है कि कोई अमीर न बन जाए। मगर मजा यह है कि अगर अमीर नहीं रह जाता, तो गरीब की सारी की सारी गति बंद हो जाती है, वह अपने हाथ पर कुल्हाड़ी मार रहा है। क्योंकि गति वह आगे का वर्ग कर रहा है। वह कुल्हाड़ी मार देता है।
दूसरा मजे का मामला यह है कि वह जो बुद्धिमान है, वह तो किसी ने किसी बात से... जाता है। आदमी कल गरीब को लगेगा कि बुद्धि ज्यादा नहीं होनी चाहिए, आदमी कल गरीब को लगेगा कि एक आदमी के पास सुंदर औरत, दूसरे आदमी के पास कुरूप औरत क्यों होनी चाहिए? ये सवाल अगर लोकतंत्र की पूरी अंतरात्मा में हम प्रवेश करें, तो वह इस बात का है कि जो एक के पास है वह सबके पास होना चाहिए। इसका एक ही मतलब हो सकता है कि परिवार न रह जाए, वेश्यालय हों। इसलिए जो प्राथमिक समाजवादी थे, मार्क्स से पहले उनका तो खयाल था कि आज नहीं कल हमें स्त्री सोशियोलाइज करना पड़े... लाइज करना पड़े, क्योंकि वह बड़ा भारी झगड़ा है। अगर हम आदमी के भीतर घुसें तो दो ही झगड़े हैं, इसको वैज्ञानिक कहते हैं, पैरिटोरियल और सेक्सुअल। उसकी मालकियत होनी चाहिए कुछ चीजों पर और उसकी कामवृत्ति होनी चाहिए। पेट और काम आदमी के दो बुनियादी उपद्रव हैं। पेट पर तुम समानता लाते हो, तो कल काम पर समानता लाने दोगे। और ये सारी समानता, इतने जाल पैदा कर दें, और इतने उपद्रव पैदा कर दें, तब तुम पता चले कि असमानता कैसे है? उसके पहले पता नहीं चल सकता। तो मेरी कठिनाई, मेरे लिए सवाल नहीं है कि लोकतंत्र कैसे जीते? समाजवाद कैसे जीते? मेरे लिए सवाल यह है कि मनुष्य की चेतना भीड़ से कैसे मुक्त रहे, क्योंकि वही मुक्त चेतना इस भीड़ को भी सत्य रास्ते पर ले जा सकती है। तो मेरा काम तो बुनियादी रूप से पद की गिनती है। इसलिए जो मुझे समझते हैं, वे भला गलत अर्थ भी लेते हों, लेकिन मेरा काम ही गिने हुए थोड़े से लोगों के लिए है। मेरी उत्सुकता भी नहीं है। मेरी उत्सुकता भी नहीं है आम में। और यह मेरी वृत्ति नहीं है। और इसके प्रति मैं बिल्कुल साफ हूं। मेरा अपना, अपना कोण ऐसा है, एक स्कूल की क्लास में तीस बच्चे हैं। लोकतंत्र की दृष्टि यह है कि क्लास में जो आखिरी बच्चा है, उसे सब भांति सब ज्ञान देना है, ज्यादा से ज्यादा। ठीक भी लगता है। जो सदबुद्धि कम है, उसपर ज्यादा ध्यान दिया जाए तो वह बुद्धिमान हो जाएगा। लेकिन उसका दूसरा परिणाम होने वाला है कि जो क्लास में प्रथम है, वह उपेक्षित रह जाएगा। और मेरा मानना है कि अंतिम पर कितना ही ध्यान दिया जाए, वह प्रथम नहीं हो सकता। और इस प्रथम पर ध्यान दिया जाए तो यह प्रथम से भी आगे जा सकता है। अगर मेरे हाथ में शिक्षा हो, तो मैं प्रथम पर ध्यान देने पर जोर दूंगा, मैं सार्वजनिक शिक्षा के पक्ष में नहीं हूं, जो शिक्षित किए जा सकते हैं, उनको ही शिक्षित किया जाना चाहिए। जो शिक्षित किए जा सकते हैं, उनको ही शिक्षित

किया जाना चाहिए। अगर इस मुल्क में पचास हजार व्यक्ति शिक्षित किए जा सकते हैं, उनको पूर्ण रूप से शिक्षित किया जाना चाहिए। वो इस मुल्क को सोने सा चमका देंगे। हम पूरे पचास करोड़ को शिक्षित करने में लगे हैं। एक मीडियाकर समाज पैदा होगा, उससे कुछ होने वाला नहीं है। और वह जो शिक्षित नहीं हो सकते हैं, वे जबरदस्ती शिक्षित किए जाते हैं, तो वो सब तरह के उपद्रव पैदा कर रहे हैं और करेंगे। आदमी युनिवर्सिटी में छुरा लेकर खड़ा हो रहा है, और नकल कर रहा है, ये वे लोग हैं जो शिक्षित नहीं किए जा सकते हैं, लेकिन इनके भीतर भी आत्म-महत्वाकांक्षा जगाई कि वह प्रथम आता है, तुमको भी प्रथम आना है। तुम्हें भी गोल्ड मेडल लाना है, तो वो इस तरह से गोल्ड मेडल ले सकते हैं। और तो कोई उपाय नहीं है। नकल से ले सकते हैं, चोरी से ले सकते हैं। और सारी की सारी व्यवस्था को तोड़े जा रहे हैं। और वह जो प्रथम आ सकता था, वह यह सब नहीं कर सकता, वह पिछड़ा जा रहा है। वह पिछड़ा जा रहा है, उसकी समझ के बाहर हुई जा रही है, सारी बात।
मेरा मानना है कि प्रतिभा शिक्षित होनी चाहिए, सार्वजनिक शिक्षा बिल्कुल बेईमानी है। और जो व्यक्ति बौद्धिक रूप से प्रतिभाशाली नहीं है, हो सकता है शारीरिक रूप से प्रतिभाशाली हो, तो उसकी शारीरिक शिक्षा होनी चाहिए। शिक्षित सब किए जाने चाहिए, लेकिन किसी लोकतांत्रिक दृष्टि से नहीं, व्यक्ति की क्षमताओं की दृष्टि से। मैं व्यक्तिवादी हूं, समाज मेरे लिए बिल्कुल मूल्यवान नहीं है। अगर तुम्हारे पास शरीर अच्छा है, जो राममूर्ति हो सकते थे, तो मैं कहता हूं फिकर छोड़ो बुद्धि की, क्योंकि बुद्धि अगर अच्छी नहीं है, तो तुम आइंस्टीन कभी नहीं होने वाले, और राममूर्ति होने से भी बच जाओगे, और आइंस्टीन नहीं मीडियाकर रह जाओगे। मीडियाकर आदमी बड़े खतरनाक हैं, क्योंकि महत्वाकांक्षा उनकी भारी होती है, और क्षमता उनकी होती नहीं, वो सब तरह के उपद्रव पैदा करते हैं, और आखिरी उपद्रव उनका यह है कि अगर हम नहीं पहुंच सकते प्रथम, तो पहले से हम एक बात पक्की कर लें कि कोई भी प्रथम न पहुंचे। इतना पक्का हो जाता है। तो वे समाज को पीछे किए हैं।
तो एक अर्थ में मैं व्यक्तिवादी हूं और दूसरे अर्थ में मैं अभिजात्य
का पक्षपाती हूं। हर व्यक्ति का अभिजात्य है, उसका कुछ खास है, जो कि शिक्षित होना चाहिए। और ये ही हो उसमें, सब चिंता छोड़ देनी चाहिए, हम उसके खाने-पीने-रहने का इंतजाम कर दें, यह पर्याप्त है, वे शांति से जी लें पर्याप्त है। तो अभिजात्यवादी भी मैं हूं। यानी मेरा मानना है कि हम कोई भी उपाय करके आइंस्टीन पैदा नहीं कर सकेंगे, चाहे कितना भी समाजवाद हो, चाहे कितना भी लोकतंत्र हो, आइंस्टीन ही आइंस्टीन हो सकेगा, और अगर हमने जिद की, और इसकी संभावना है, क्योंकि रूस में वो फिकर कर रहे हैं इस बात की कि बुद्धि माप करीब कैसे लाया जा सके। तो बड़े मजे की बात है कि नीचे वाले का बुद्धिमाप ऊ पर नहीं लाया जा सकता, लेकिन ऊ पर वाले का नीचे लाया जा सकता है। यह बड़ा मजा है, बड़ा मजा है, जो है उसे छीना जा सकता है, लेकिन जो नहीं है, उसे पैदा नहीं किया जा सकता। अगर एक बच्चा ईडियट पैदा होता है, तो हम उसे जीनियस नहीं बना सकते, लेकिन जीनियस को हम इडियट बना सकते हैं। क्योंकि यह जो जीनियस है, यह इतना डेलिकेट मामला है कि छोटा सा इंजेक्शन भी इसको नष्ट कर देता है। एक इंजेक्शन मार दें हम आइंस्टीन की खोपड़ी पर, तो कितनी ही बड़ी खोपड़ी हो उसका क्या करोगे? और इंजेक्शन मारने वाले को कोई आइंस्टीन से बड़ी खोपड़ी नहीं चाहिए, मारने के लिए। खोपड़ी होनी चाहिए, तो कोई भी मार सकता है, इसमें कोई... ।
तो मेरा जो अपना दृष्टिकोण है, वह एक ऐसे जगत का है जो अभिजात्य का जगत हो। वह गरीब के भी हित में है, और गरीब मेरे लिए मल्टी-डाइमेन्शियल सत्य है। कई तरह की गरीबियां हैं। धन की गरीबी है, बुद्धि की गरीबी है, भाव की गरीबी है, नीति की गरीबी है, हजार तरह की गरीबियां हैं। और तुम एक गरीबी मिटाओ तो दूसरी गरीबी मांग करना शुरु कर देती है। अब हमारी तकलीफ सदा यह है कि जो मौजूद होता है, हम उसके पार उठ कर कभी नहीं देख पाते। भविष्य मैरिटोथेरेपी का है, भविष्य में तो जो गुणवान है, उसके हाथ में सत्ता जानी चाहिए। मैरिट के हाथ में जानी चाहिए। गरीबी कोई गुण नहीं है। और मैं नहीं

मानता हूं, कि गरीब जो भी बातें करता है, वह उसके भी पक्ष में हैं, ये भी बड़ी तकलीफ है, वो उसके भी पक्ष में नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

नहीं, बिल्कुल नहीं, जरा भी नहीं, क्योंकि मेरा मानना यह है कि राजनीति भी बीमारी है। और हमें मनुष्य को एक दृष्टिकोण देना चहिए, जो कम से कम राजनैतिक हो। तो हम इस बीमारी से छुटकारा पा सकते हैं। राजनीति रहेगी, सदा रहेगी, आवश्यक है। लेकिन राजनीति मनुष्य के शीर्ष पर केंद्रीय नहीं हो जानी चाहिए, केंद्रीय होगा तो बीमारी है। और अभी केंद्रीय है। अभी ऐसा है कि बाकी सब गौण हैं। सब कोने में हैं। मंदिर की जो वेदी है, वह राजनैतिक है। तो मेरी दृष्टि यह है कि हम जितना ज्यादा गैर-राजनैतिक व्यक्तित्व पैदा कर सकें, उतना अच्छा है। और गैर राजनैतिक व्यक्तित्व जितने खत्म हो सकें समाज में, उतना ही राजनीतिज्ञों की मूढ़ताओं से लड़ना आसान होगा।
इस मुल्क ने एक प्रयोग किया था, और उस प्रयोग के मैं पक्ष में हूं, इस मुल्क में साधुओं को, संत को, सन्यासी को प्रथम कोटि पर रखा था, राजनेता को, राजा को दूसरी कोटि पर रखा था; और अगर एक सम्राट भी होता और एक फकीर होता, तो फकीर के चरणों में सम्राट को सिर रखना पड़ता। ब्राह्मण को नंबर एक रखा था, और ब्राह्मणों का उन दिनों में अर्थ था, उन दिनों का बुद्धिमान वर्ग। इंटेलिजेंस ग्रुप। क्षत्रिय को नंबर दो रखा था। शक्ति कितनी ही बड़ी हो, नंबर दो होनी चाहिए बुद्धि के सामने। तो, मेरे हिसाब में तो ब्राह्मण लौटना चाहिए। मेरे हिसाब में तो ब्राह्मण लौटना चाहिए। समाजवाद, लोकतंत्र सब शूद्र को प्रथम रखने की चेष्टा है, क्षत्रिय को ही नहीं। अंतिम को।
तो मैं इस प्रश्न में मनु से बहुत राजी हूं। वह आदमी बहुत बुद्धिमान था। और गांधी और विनोबा बचकाने हैं उनके सामने। क्योंकि सवाल ब्राह्मण का नहीं, सवाल यह है कि हम किस तथ्य को ऊ पर रखते हैं। और एक बड़े मजे की घटना इस मुल्क में घटी, और वह घटना यह थी कि जब हमने ब्राह्मण को ऊपर रखा, तो ब्राह्मण ने न धन की फिकर की, न पद की फिकर की, क्योंकि जिसके पास बुद्धि है, और एक बार बुद्धि को प्रथम स्थान उपलब्ध होता हो, तो उसे न धन की फिकर है न पद की। बुद्धि इतना बड़ा पद है अपने आप में कि फिर उसे कुछ भी नहीं चाहिए। तो ब्राह्मण भूखा भी रहा, भीख भी मांगी, लेकिन उसने राजनीति को और, धन की और पद की कोई चिंता नहीं की। और पद इस मुल्क में बुद्धि की अंतिम... है, बहुत अंतिम... । जिस दिशा में भी इस मुल्क ने अपनी बुद्धि को लगाया, वह आत्यंतिक हो गई, उस दिशा में फिर कोई मुल्क आगे नहीं जा सका। और आज भी मजे की बात यह है कि दुनिया का सारा विकास ब्राह्मणों के द्वारा हो रहा है, आज भी। मेरे लिए आइंस्टीन एक ब्राह्मण है और मार्क्स भी। और फ्रायड एक ब्राह्मण है। बड़े मजे की बात है कि दुनिया का सारा विकास ब्राह्मणों के हाथ से होता है। सदा हुआ है, और उनके ही हाथ से हो सकता है, क्योंकि वे ही नया विचार जगत को देते हैं, नई दिशा और नई दृष्टि देते हैं। लेकिन ताकत आज उनके हाथ में नहीं है। और ये बड़े मजे की बात है, एटम बम की वजह से पश्चिम को खयाल आया--और आइंस्टीन को, हेमर को, लीनियस पादेन को, इन सबको खयाल उठा कि हमने तो एटम बम बनाया है, लेकिन चलाने का हक तो राजनीतिज्ञ के हाथ में चला जाएगा। न जॉनसन के पास बुद्धि है, न लिंकन के पास बुद्धि है, और न इंदिरा के पास बुद्धि है, और न विक्ट्रो के पास बुद्धि है। लेकिन बुद्धि के शिखर पर जो भी ताकत उपलब्ध होगी, वह इनके हाथ में चली जाएगी। एक खयाल पश्चिम में पैदा हुआ। लीनियस पावले ने दस हजार वैज्ञानिकों को, जो सारी दुनिया के, और उन्होंने कोशिश की कि एक हम एक इंटरनेशनल ताकत बनाना शुरु करें, और वह तय करें तभी हम कोई ताकत का उदघोषण करें, अन्यथा वह ताकत उदघोषित न की जाए। यह ब्राह्मण की सत्ता में लौटने की चेष्टा है। इसका मतलब क्या है, इसका मतलब है कि हम खोजेंगे, और कल तुम हमारी भी नहीं सुनते। लीनियस पावेल खड़ा है, वाशिंगटन में भूखा व्हाइट हाउस के सामने और कह रहा है, एटम बम का प्रयोग

नहीं होना चाहिए, दो पुलिसवाले पकड़ कर बंद कर देंगे। जिन लोगों ने एटम बम बनाया, उनकी कोई ताकत नहीं है, बनाने के बाद। और अब तक इतनी मीटिंग खोज कर गई है, सारी दुनिया में कि अगर सब राजनीतिज्ञ के हाथ में आ गईं, तो आदमी का कोई भविष्य नहीं। एटम बम तो कुछ भी नहीं है, और भी नई खोजें और खतरनाक हैं। अब तो अपके मस्तिष्क में पैदा होते से ही, एक इलेक्ट्रोड डाला जा सकता है, आपको पता ही नहीं चलेगा, वह तो सब बचपन में हो जाएगा। और एक छोटे से ऑपरेशन से एक छोटी सी इलेक्ट्रोड आपके मस्तिष्क में डाल दी जाएगी। फिर आपको आज्ञा दी जा सकती है, दिल्ली से, आप कहीं भी दुनिया में हों। और जो आज्ञा उसके विपरीत आपको मिलती है। और आपको लगेगा कि यह आज्ञा मेरे भीतर से आ रही है। अब ये सारी की सारी खोज ब्राह्मणों की है, लेकिन ताकत तो कैबिनेट के हाथ में चली जाने वाली है।
तो मेरी दृष्टि यह है कि राजनीति को कमजोर करना है। ज्ञान को, ब्राह्मण को, धर्म को प्रतिष्ठित करना है। तो मैं किसी को राजनीति को घेरने और भेजने में उत्सुक नहीं हूं। मैं तो राजनीति में भी कोई बुद्धिमान आदमी दिखाई पड़े, तो उसे खींचने को हूं। और हमें इस तरह के स्तंभ समाज में खड़े करने पड़ेंगे कि जो अपनी प्रतिष्ठा है, राजनीतिक फिजिक्स को कम करें। नहीं तो फिजिक्स की कमी हो सकती है। और अभी हालत यह है कि साधु को भी प्रतिष्ठित होना है, तो मिनिस्टर की खुशामद करनी है, और अगर एक साहित्यकार को भी प्रतिष्ठित होना है, और उसे पदमभूषण होना है, तो उसका कोई उपाय नहीं है। एक कवि एक संगीतज्ञ, वह भी दिल्ली की तरफ नजर रखे हुए है कि कब उसको प्रतिष्ठा राष्ट्रपति से मिलेगी? और कोई नहीं पूछता कि राष्ट्रपति के पास क्या है? न संगीत है, न साहित्य है, न बुद्धि है, न विज्ञान है कुछ भी नहीं है। लेकिन राष्ट्रपति की... । शतरंज के खेल का हिसाब है, बस उतना ही है, और उससे सब प्रतिष्ठित होंगे। राजनीतिज्ञ की प्रतिष्ठा और महिमा कम करनी है, और उसका एक ही उपाय है, कम करने का कि राजनीति के मुकाबले नये आयाम खड़े हों। और राजनीति से पृथक प्रतिष्ठा के स्रोत बनें। तो मैं ऐसे संन्यासी जरूर खड़े करना चाहता हूं, ऐसे आश्रम भी जरूर बनाना चाहता हूं, जो गरिमाओं के नये स्रोत उपलब्ध करायें। एक संगीतज्ञ संगीत की वजह से प्रतिष्ठित हो, एक साहित्यिक साहित्य की वजह से प्रतिष्ठित हो। और राजनीति को सम्मान देना बंद किया जाए। आज नहीं कल एक हालत आनी चाहिए जब राजनीतिज्ञ भी तभी सम्मानित हो सके, जब ये दूसरी प्रतिभाएं उसे सम्मान दें, अन्यथा सम्मनित न हो सके। मगर ये सारा का सारा आत्मव्यैक्ति दृष्टिकोण है। इसका लोकतंत्र, समाजवाद से सीधा विरोध है। तो मेरी उत्सुकता यही है, उत्सुकता मेरी है पर दूसरी दिशाओं में।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

एक तो भगवान दुख-दर्द दूर करें, ये गरीब आदमी की आकांक्षा है, यह भगवान
का लक्षण नहीं है। क्योंकि भगवान तो सदा से है, और दुख-दर्द दूर हुआ नहीं। अगर भगवान है, तो सदा से है। दुख-दर्द तो दूर हुआ नहीं। गरीब आदमी की आकांक्षा जरूरत है कि वह दूर करे। गरीब आदमी को भगवान भी तभी महत्वपूर्ण है, जब वह उसकी बीमारी दूर करे, दर्द दूर करे। गरीब आदमी को गरीबी दूर करवानी है। भगवान तो गौण है, उसका कोई प्रयोजन नहीं है। और मेरा मानना है कि भ्रांत आकांक्षा उसके गरीब बने रहने का कारण है। गरीबी भगवान से दूर होने वाली नहीं है, नहीं तो कभी की दूर हो गई होती। गरीबी भगवान के रहते बड़े मजे से चल रही है। राम के रहते चलती है, कृष्ण के रहते चलती है, जीसस के, बुद्ध के रहते चलती है। साफ मामला है कि गरीबी के दूर करने का मामला कुछ और है, भगवान नहीं है। तो पहली तो बात यह मै कहना चाहता हूं कि भगवान से गरीबी दूर नहीं होगी। और जिन मुल्कों में दूर हुई है, उन्होंने भगवान को जिस मात्रा में छोड़ा है, उस मात्रा में दूर हुई है। भगवान को जितने जोर से पकड़े हुए मुल्क हैं, उतनी मुश्किल है गरीबी दूर होनी। क्योंकि आकांक्षाएं गलत हैं। अब ये मामला ऐसा है कि मैं सोच रहा हूं कि सूरज के निकलने से मेरा टी.बी. ठीक होगा। अगर उसका कोई संबंध ही नहीं है, तो मैं मरूंगा और टी.बी.

दूर करने के जो उपाय हो सकते हैं, वह भी नहीं खोजूंगा। गरीब आदमी को ठीक से जान लेना चाहिए कि गरीबी का कारण न तो भगवान है, इसलिए दूर करने का कारण भी नहीं हो सकता। दूर करने का कारण वही हो सकता है, जो उसको बनाने का भी कारण हो। अगर भगवान ने गरीबी बनाई हो, तो भगवान गरीबी दूर करे। गरीबी आदमी की व्यवस्था है। उसके उपकरण और उसकी टेक्नालॉजी अर्थतंत्र की बाई-प्रॉडक्ट हैं। उसको अपना तंत्र बदलना पड़ेगा गरीबी बदलने के लिए। वह आदमी की जिम्मेवारी है। उसका भगवान से लेना-देना कुछ भी नहीं है। सामाजिक घटना है गरीबी, धार्मिक घटना नहीं है। क्योंकि हर चीज को धार्मिक घटना बना देने से उपद्रव शुरू होता है, फिर हम इलाज भी नहीं खोज पाते। यह मेरा मानना है कि रूस भगवान को बिल्कुल ही इनकार कर दिया, तो भी गरीबी दूर कर सकता है। भगवान से कोई लेना-देना नहीं है, गरीबी के होने न होने का। बल्कि एक मात्रा में भगवान से यह भरोसा कि वह गरीबी दूर कर देगा, गरीबी को बनाए रखने का साधन हो गया है। तो मैं मानता हूं कि गरीब को जानना चाहिए कि गरीबी के आर्थिक कारण हैं, धार्मिक कारण नहीं है। आर्थिक कारण बदलेंगे, तो गरीबी बदल जाएगी। दूसरी बात मुझे कोई भगवान कहे, या मुझे कोई शैतान कहे, ये कहने वालों
के संबंध में खबर देता है, मेरे संबंध में कुछ भी नहीं। लोग हैं जो मुझे शैतान कहते हैं, उन्हें मैं शैतान दिखाई पड़ता हूं। किसी को मैं भगवान दिखाई पड़ता हूं। उसे दिखाई पड़ता हूं। मेरे में... यानी कि मैं शैतान को, जो मुझे शैतान कहता है, मैं उसे समझाने जाऊं कि मुझे शैतान मत कहो। और मेरे समझाने से वह मानेगा, जो मुझे शैतान मानता है, वह मेरे समझाने से मानेगा कि मुझे शैतान न कहे? बल्कि यह समझाना उसे और भी मुझे शैतान कहने का कारण बन जाएगा। मेरी उत्सुक्ता क्या है? ठीक मजे की बात यह दूसरी तरफ भी ऐसे ही है, जो मुझे भगवान कहता है, यह उसका दृष्टिकोण है, उसे दिखाई पड़ता है। वैसे ही किसी को शैतान दिखाई पड़ता है। अगर मैं उसे समझाने जाऊं कि मैं भगवान नहीं हूं, तो यह उसे और भी भगवान कहने का कारण बनता है। यह बहुत मजे की बात है, कि यदि आप मेरे पैर को छुएं, और मैं कहूं नहीं, नहीं मत छुओ, बिल्कुल मत छुएं, तो और पैर छूने का कारण बन जायेंगा। बल्कि कई बार तो मैंने अनुभव ऐसा किया कि आप पैर छू रहे हों, और मैं आपका सिर हाथ से लगा दूं, या मैं भी सिर छू दूं, तो क्या आप दुबारा आते हैं। आदमी के मन का काम करने का ढंग बड़ा कंटेडिक्टिव है। तो मैंने अनुभव किया कि दोनों उपाय हैं, अगर मुझे कोई भगवान कहता है, तो मैं स्वीकार कर लूं कि मैं भगवान हूं, जो कि मैं नहीं कर सकता। नहीं कर सकता इसलिए कि मैं नहीं, सब कुछ भगवान है। इसलिए विशेष रूप से किसी को भगवान कहने का कोई भी हक नहीं है। भगवान होना मेरे लिए सभी जीवन का साधार अस्तित्व है। साधारण क्वालिटी है, सभी लोग भगवान हैं। भगवान और अस्तित्व मेरे लिए पर्यायवाची हैं। तो कोई मुझे भगवान कहे, तो हां तो मैं नहीं भर सकता कि मैं भगवान हूं, सिर्फ इसलिए हां नहीं भर सकता, क्योंकि इसमें कोई अर्थ ही नहीं है। क्योंकि तुम भी भगवान हो। इससे मैं इनकार भी नहीं कर सकता। क्योंकि वह सभी कुछ भगवान है, तो मैं अपने लिए इनकार करूं तो भी विशिष्टता अपने लिए खोज रहा हूं। मेरे लिए भगवान होना ऐसा है, जैसे आप जीवित हैं। अगर मुझे कोई जीवित कहेगा तो क्या इनकार करूं और क्या हां भरूं? मेरे लिए आप भी जीवित हैं।
जो कठिनाई उठती है, वह प्रश्न करने वाले के मन से आती है। उसका ख्याल ऐसा है कि भगवान राम होते हैं, कृष्ण होते हैं, बुद्ध होते हैं। कोई भगवान होता है, बाकि तो भगवान नहीं है। असल में भगवान होना सहज अस्तित्व का गुण है। तो राम अगर भगवान होता है, तो सिर्फ इसीलिए कि आप भी भगवान हो सकते हैं, नहीं तो राम भी भगवान नहीं हो सकते। आपके भीतर जो छिपा है, आप उसे खोज ले सकें तो आपको पता चलता है। तो मैं किसको इनकार भरने जाऊं, और किसको हां भरने जाऊं? हां भरने में भी अहंकार है, और इनकार करने में भी अहंकार है। अगर मैं हां भरूं कि हां मैं भगवान हूं, तो मेहर बाबा भी हां भरते हैं कि मैं भगवान हूं, तो मैं मानता हूं इसमें अहंकार है। क्योंकि मैं स्वीकार कर रहा हूं कि मैं भगवान हूं, इसका मतलब यह हुआ कि मैं विशिष्ट हूं और मैं हूं। अगर मेहर बाबा से आप जाकर कहें कि आप ही भगवान नहीं, सामने का जो चमोली का पान वाला है, वह भी भगवान है। तो वे नाराज हो जाएंगे। चमोली की तो

बात छोड़ दें, अगर और भी कोई आदमी कहीं कह रहा है कि मैं भी अवतार हूं, तो वह नहीं मानने को राजी होंगे, वे कहेंगे कि इस युग के वही अवतार हैं, और एक युग में एक ही अवतार होता है। अगर आप यह कहें कि राम और कृष्ण और बुद्ध ये भी सब अवतार थे, तो भी उनको कठिनाई होती है, वे कहते हैं कि सब आंशिक अवतार थे, मैं पूर्ण अवतार हूं। हिंदू कहते हैं कि कृष्ण पूर्ण अवतार थे, तो मेहर बाबा कहते हैं, फिर समानता हो जाती है। तो मेहर बाबा कहते हैं कि पहले मैं अवतार रूप में आया, इस बार मैं स्वयं भगवान रूप में आया हूं। इसको मैं साधु का अहंकार कहता हूं। विधायक रूप से यह आदमी पागल हो गया है।
कृष्णमूर्ति निगेटिव हैं बिल्कुल, मगर वह भी अहंकार है। वे कहते हैं
कि मैं भगवान नहीं हूं, मैं गुरु नहीं हूं, मैं कोई भी नहीं हूं, लेकिन चालीस साल से यही कहे चले जा रहे हैं, इसको भी कहने की कोई जरूरत नहीं है। कभी कहने से कोई गुरु नहीं, और मैं चिल्लाता हूं चालीस साल तक कि मैं चोर नहीं हूं, मैं बेईमान... इसकी भी कोई जरूरत नहीं है, नहीं हूं तो नहीं हूं। लेकिन यह निगेटिव अहंकार है। ये भी विशेषता की बात है कि मैं नही हूं, मैं गुरु भी नहीं हूं, मैं अवतार भी नहीं हूं, मैं कोई भी नहीं हूं। मेरी तकलीफ है, ये दो उपाय की चीजें हैं। यानी दो उपायों के भी मेकेनिज्म हैं। अगर मैं कहूं मैं भगवान हूं, विधायक अहंकार का प्रयोग करूं, तो कुछ लोग हैं जो समर्पण कर सकते हैं, वे तत्काल मुझे मान लेंगे। जो विनम्र हैं। जो अहंकारी हैं वे मेरे खिलाफ मेरे दुश्मन हो जाएंगे। अगर मैं कहूं कि मैं कोई नहीं हूं, तो जो अहंकारी हैं, वे मुझे मान लेंगे, इसलिए कृष्णमूर्ति के पास अहंकारियों के सिवाय कोई इकट्ठा नहीं हो सका। क्योंकि अहंकारी उसी के पास जा सकता है, जो कहता है, मैं गुरु भी नहीं, मेरे पैर भी मत छूना, मुझे नमस्कार भी मत करना, मैं भगवान भी नहीं हूं। जो इतना भी कहता है कि तुम मेरे पास आते हो, लेकिन मैं तुम्हें सिखाता भी नहीं हूं, और वो तीस साल से सीख भी रहे हैं उससे, और इतनी भी विनम्रता नहीं कि यह कहें कि हमने तुमसे कुछ सीखा, तो वे लोग इकट्ठे होंगे।
मेहर बाबा के पास वे लोग इकट्ठे होंगे, जो समर्पण कर सकते हैं, जिनको कोई सहारा चाहिए। जो इतने भयभीत हैं अपने भीतर, इतना भी अहंकार नहीं कि अपने पैर पर खड़े हो सकें, वे चाहते हैं कि किसी के कंधे पर सब छोड़ दें, वे वहां इकट्ठे हो जाएंगे। मेरी तकलीफ है, ये दो विकल्प हैं। और मैं दोनों गलत मानता हूं। तो एक ही उपाय है कि मैं चुप रहूं, इस संबंध में कुछ न कहूं।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

शक्तिपात संभव है। शक्तिपात संभव है। और काम-ऊर्जा के द्वारा भी शक्तिपात संभव है। संभोग के द्वारा भी शक्तिपात संभव है। शंकर की पूरी की पूरी शक्तियां, यह संभोग के द्वारा ही शक्तिपात संभव है। बल्कि... का मानना ही यह है कि संभोग के अतिरिक्त और कोई शक्तिपात हो ही नहीं सकता। तो जहां तक शक्ति की बात है, शक्ति की बात है, संभोग से शक्तिपात संभव है। क्योंकि संभोग का मतलब ही यह है कि दो शक्तियों का मिलन। अगर इसमें श्रेष्ठतर शक्ति कोई भी हो तो निकृष्ट शक्ति की तरफ प्रवाहित हो जाएगी। यह बायो- इलेक्ट्रिकल मामला है। इसमें कोई बहुत बड़ा धर्म का मामला भी नहीं है, यह सब सीधा और वैज्ञानिक विद्युत का मामला है। यह संभव है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। लेकिन यह घटना बिल्कुल झूठी है। और तंत्र पर मेरी बड़ी श्रद्धा है। भारी श्रद्धा है। और मेरा तो मानना है कि तंत्र अकेला विज्ञान है, जो भारत ने दिया है जगत को। और आज नहीं कल अगर भारत की प्रतिष्ठा होगी, तो तंत्र के कारण होगी। लेकिन भारत में जो नीतिवादी ट्रेडीशन का जो जकड़ है, उसकी वजह से तंत्र को बुरी तरह दबाया गया है। कल्पना नहीं कर सकोगे कि अकेले राजा भोज ने एक लाख तांत्रिकों की हत्या की। अकेले एक आदमी ने। उसने तय कर लिया कि भारत में एक तांत्रिक को नहीं बचने देगा। तांत्रिकों के लाखों ग्रंथ जलाए। यह हालत कर दी कि कोई आदमी अपने को तांत्रिक है, यह कह नहींसकता था, खुलेआम। क्योंकि तांत्रिक का मतलब हो गया कि गलत। लेकिन पिछले दो सौ वर्षों में यूरोप में जो खोज-बीन हुई है... और फ्रायड के बाद, और विलहम

रैक तक जो खोज-बीन हुई है, उस सबने तंत्र को नया मार्ग दे दिया है। और तंत्र की खोज वैज्ञानिक है। क्योंकि मनुष्य के भीतर जो गहरी से गहरी ऊर्जा है, वह सेक्स एनर्जी है। अगर हम मनुष्य की शक्तियों की खोज करने चलें, तो जैसे फिजिसिस्ट पदार्थ को तोड़ कर इलेक्ट्रिक पर पहुंचा है, वैसा ही तांत्रिक मनुष्य को तोड़ कर सेक्स एनर्जी पर पहुंचा है। मनुष्य का सारी-सारी बनावट सेक्स की है। आप पैदा हुए हैं सेक्स से, आपके मां और बाप के दो विद्युत कण, सेक्स कण, आपके निर्माण का सारा खेल, फिर उन्हीं दो सेक्स कणों के विस्तार से आपके सारे शरीर का विस्तार हुआ है। आपके पूरे शरीर की बनावट सेक्स कणों की है। जैसे एक विद्युत कणों से बना है, ऐसे ही जीवन काम कणों से बना है। और आपकी पूरी की पूरी ऊर्जा, ठीक समझा जाए तो सेक्स एनर्जी है। तंत्र का कहना यह है कि सैक्स एनर्जी अगर नीचे की तरफ बहती हो, तो काम वासना है, यही ऊ र्जा अगर ऊपर की तरफ बहने लगे, तो कुंडलिनी है। कुंडलिनी का कुल मतलब इतना है कि काम ऊर्जा ऊपर की ओर प्रवाहित हो रही हो, आयाम बदल गया है।
तो तंत्र ने भारी प्रयोग किए हैं कि संभोग के क्षण में भी साधक अपनी काम-ऊर्जा को ऊपर प्रवाहित करता है। और काम-ऊर्जा अगर ऊपर प्रवाहित हो रही हो, तो हमें यह सब दिखाई पड़ता है कि संभोग हो रहा है। संभ्ल्लग नहीं हो रहा है। ये खजुराहो और पुरी और कोणार्क के सारे मंदिर अश्लील नहीं हैं, तांत्रिक हैं। लेकिन हमने यह हिम्मत ही खो दी कि हम भी इसी दुनिया से हैं, तांत्रिक हैं, हम खुद ही इतने कमजोर और डरपोक हो गए कि तंत्र की बात करनी ही नहीं है। तो मैं तंत्र पर मेरी प्रगाढ़ उत्सुकता है। वक्तव्य नहीं देता हूं मैं अभी तंत्र पर तो उसका कुल कारण इतना है कि जैसे-जैसे लोग तैयार हो जाएं, वैसे ही वक्तव्य दिए जायें। अन्यथा अकारण उपद्रव हो जाएंगे। अकारण उपद्रव हो जाएंगे। और तंत्र पर मेरी श्रद्धा है, और मेरे पास जो साधक होते हैं, उनको मैं तंत्र की दिशा में भी प्रवाहित करता हूं। उनको तंत्र के प्रयोग भी देता हूं कि वे अपने जीवन में कर सकें। उनकी काम ऊर्जा ऊपर की तरफ प्रवाहित हो, इसके लिए भी उनको साधना मैं देता हूं। साधनाओं के संबंध में, बहुत कुछ गौण रखना पड़ेगा... रखना पड़ेगा। एक आम चर्चा नहीं हो सकती। आम चर्चा न होने के कारण चर्चा में कोई गड़बड़ है, ऐसा नहीं है, आम चर्चा न होने का कारण यह लोकमानस है। वह जो भीड़ है चारों तरफ, उसने जो सुन समझ रखा है, उससे वह चीजों को समझती है।
अमरीका जैसे विचार स्वतंत्र वाले मुल्क में... रूजवेल्ट अमरीकन मनोवैज्ञानिक था--जर्मन था, अमरीका गया था। उसको तीन साल पागलखाने में काटने पड़े। क्योंकि जो बातें उसने कहीं, उनको गलत भी सिद्ध नहीं किया जा सकता, और सही माना नहीं जा सकता, क्योंकि पूरी क्रिश्चियनिटी खिलाफ है। तो उसको जबरदस्ती पागल करार दिया गया। बीसवीं सदी के गहनतम अपराधों में से एक। और उस आदमी ने इतनी गहरी खोज की थी कि अगर वह प्रकट हो सकती पूरी की पूरी तो मनुष्य-जाति का परम कल्याण हो जाता। उसको तीन साल पागलखाने में रखा, पागलखाना, पागलखाने में ही वह मरा। और उसके मित्रों का, उसके शिष्यों का, बड़े से बड़े मनोवैज्ञानिकों का ख्याल है कि जबरदस्ती की गई है।
उसने एक तंत्र का यंत्र बनाया था, जो भारत में बहुत दिन तक था, और उसने पहली दफा अमरीका में बनाया। उसने एक छोटा सा संदूक बनाया, व्यक्ति को उस संदूक में बंद कर देता था, संदूक की जो दीवालें थी, वह बहुत संवेदनशील तत्वों की बनाई हुई थीं। और उस व्यक्ति को काम ऊर्जा से ऊपर ले जाने के प्रयोग करवाता था। जब ऊर्जा ऊपर जाती है तो वह पूरा का पूरा बॉक्स जो है, वह चार्ज हो जाता है, चार्ज हो जाता है... दिखाई पड़ती है। और उस पर उसने हजारों प्रयोग किए, अगर इलेक्ट्रिफाइड हो जाता, तो किसी भी काम वासना से भरे व्यक्ति को उसके भीतर लिटा दो, तो आधा घंटे में उसकी कामवासना क्षीण हो जाती। किसी काम वासना से पागल हो गए व्यक्ति को उसके भीतर लिटा दो, तो घंटे भर में उसका पागलपन शांत हो जाता। लेकिन यह उसने बॉक्स बनाना शुरु किया, उस पर और कोई उपाय नहीं मिला मुकदमा चलाने का, तो साजिश के लिए उस पर मुकदमा चलाया गया कि उसने बिना लाइसेंस लिए यह बॉक्स बनाया है, इसका पेटेंट नहीं करवाया। ये सब उपद्रव हैं। इसका पेटेंट होना चाहिए, इसका रजिस्ट्रेशन होना चाहिए। और यह इसको बेच रहा है, तो यह तो कमोडिटी बरदाश्त

नहीं हो रही कि उसका तंत्र अमरीका का पूरा का पूरा... जेशन और ये सब होना था और नहीं है। और इसने कोई सात बेचे। इस पर मुकदमा चलाओ। तो उसको जिंदगी भर इसी मुकदमेबाजी में उसको परेशान किया। ये सारी तकलीफें हैं। लोकमानस की तकलीफें हैं, लोकमानस की समस्या बड़ी है। तो कुछ चीजें अनिवार्य रूप से गुप्त रखनी पड़ेंगी। तो मेरे पास बहुत से प्रयोग चल रहे हैं, जो गुप्त हैं। इन गुप्त प्रयोगों से नामालूम कितने साधु-संन्यासियों को तकलीफ है। होगी भी। बिल्कुल स्वाभाविक है। नामालूम कितने राजनीतिज्ञों को तकलीफ है, स्वभाविक है। नामालूम कितनी-कितनी तरह के ठेकेदारों को तकलीफ है, वह भी स्वाभाविक है। तो मेरे संबंध में वे बहुत सी बातें ईजाद करें, ईजाद करें कल मुकदमा दायर कर मुझे बंदी बनायें, वह सब हो सकता है, तो उसमें कोई बहुत अड़चन का मामला नहीं है। कोई अड़चन का मामला नहीं है। और हमारे मुल्क में तो किसी भी व्यक्ति को अप्रशिक्षित करना है, तो सरलतम बात यह है कि उसके चरित्र पर कोई बात कहीं कह दी जाए, फिर कोई खोज-बीन का कोई सवाल नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है, बात समाप्त हो गई। और क्या नहीं हो सकता?
अभी मुझे खबर आई, मैं तो यहां हूं और डेढ़ साल से अमृतसर नहीं गया हूं। अमृतसर में उन्होंने पोस्टर लगा दिए हैं कि मैं गिरफ्तार कर दिया गया हूं, क्योंकि मेरे पास, गांजा, अफीम, चरस, इस सब का भारी... । तो सारी दीवारों पर पोस्टर लगा दिए हैं। अब जो आदमी पढ़ रहा है, वह पता लगाने भी कहां जाएगा, कि हुआ कि नहीं हुआ। अब आदमी में बहुत समानता है, कि हुआ होगा, नहीं तो पोस्टर कैसे लगे? अब यह पोस्टर लगाने वाला कौन है, इसको कौन खोजने जाए, इसको कौन पकड़े, इससे क्या प्रयोजन, इससे क्या हल है? चुपचाप मुझे सुन लेना पड़ेगा। अब यह सब बड़े मजे का मामला है। अब परसो ईश्वर बाबू की पत्नी ने आकर कहा, उससे उसकी पड़ोसन ने कहा, तुम्हे पता है कि दस-बारह महिलाओं ने उनको बहुत बुरी तरह मारा भी है। और बुरी तरह पीटा और पुलिस आई तब उनको बचाया गया। क्योंकि उन महिलाओं के साथ छेड़खानी कर रहे थे। अब मामला यह है कि उन सबके लिए क्या किया जाए? कुछ नहीं किया जा सकता। और मेरे साथ ये सब अफवाहें चल सकती हैं, क्योंकि मैं जो प्रयोग कर रहा हूं, जो बातें कर रहा हूं, उनसे उनका तालमेल बैठ जाता है। जैसे मैं संभोग से समाधि की ओर वक्तव्य दिया, तो अगर मैं ब्रह्मचर्य के पक्ष में बोल रहा हूं और मेरे अनैतिक संबंध नहीं हैं किसी से, तो मेरे संबंध में आप कुछ बोल नहीं सकते, क्योंकि मेरे वक्तव्य, मेरे... क्योंकि मैं बोल तो ब्रह्मचर्य के संबंध में रहा होगा, मेरा चोरी से किसी से अनैतिक संबंध भी है, तो आप पता नहीं लगा सकते हैं। लेकिन मेरे साथ तकलीफ यह है कि मेरा किसी से संबंध भी नहीं है, तो भी मैं ब्रह्मचर्य के पक्ष में नहीं बोल रहा हूं। मेरी तकलीफ बहुत ऊं ची है, मैं बोल तो संभोग के पक्ष में रहा हूं, तो मानना बिल्कुल पक्का ही है कि इस आदमी के संभोग के संबंध होंगे, यह संभोग के पक्ष में बोल रहा है। तो कोई अगर आपसे कहे, तो भरोसे के योग्य बात मालूम पड़ती है। जो आदमी संभोग के पक्ष में बोलता है, उससे ब्रह्मचर्य की तो आशा नहीं की जा सकती। ब्रह्मचारी से आप संभोग की आशा कर सकते हैं, संभोग के पक्ष में बोलने वाले से ब्रह्मचर्य की कैसे आशा करेंगे? ये सब स्वाभाविक है। यह स्वाभाविक है, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यह सब स्वाभाविक है।

सम्यक शिक्षा
छठवां प्रवचन

यह अधूरी शिक्षा?

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य-जाति के ऊपर जो बड़े से बड़े दुर्भाग्य आए हैं उनमें सबसे बड़े दुर्भाग्य वे हैं जिन्हें हम सौभाग्य समझते रहे हैं। सौभाग्य समझने के कारण उन दुर्भाग्यों से बचना भी संभव नहीं हुआ। उन्हें बदलना भी संभव नहीं हुआ। उनसे मुक्त होने का भी कोई उपाय नहीं किया गया, बल्कि सौभाग्य मानने के कारण, वरदान मानने के कारण हम अपने अभिशापों की जड़ों में भी पानी सींचते रहे हैं। और तब परिणाम में यह मनुष्य पैदा हुआ है जो हमारे सामने है। और यह समाज निर्मित हुआ है जो हमारे चारों तरफ फैला हुआ है। उन बड़े दुर्भाग्यों में शिक्षा के नाम से जो चलता रहा है उसे भी मैं बड़े से बड़ा दुर्भाग्य मानता हूं।
सुन कर निश्चित ही आपको हैरानी होगी, क्योंकि शिक्षा तो वरदान है, शिक्षित हो जाना तो धन्यभागी हो जाना है। लेकिन क्या आपको पता है शिक्षा ने मनुष्य के जीवन को संतुलन और स्वास्थ्य नहीं दिया है बल्कि मनुष्य जीवन के सारे संतुलन को, सारे बैलेंस को छीन लिया है। और यह होना निश्चित था। क्योंकि जो हम अब तक शिक्षा से समझते रहे हैं उसमें कुछ बुनियादी भूलें हैं।
पहली बुनियादी भूल यह है कि हमने आदमी को केवल बुद्धि, केवल इंटलेक्ट समझ लिया है। इससे ज्यादा झूठी और गलत बात नहीं हो सकती। आदमी अकेले बुद्धि नहीं है और शिक्षा मात्र बुद्धि की है। शेष पूरा मनुष्य अधूरा और अछूता छूट जाता है। शेष पूरा मनुष्य अविकसित छूट जाता है। केवल बुद्धि विकसित होती है। यह वैसा ही है जैसे एक आदमी का सारा शरीर तो सूख जाए सिर्फ सिर बड़ा हो जाए, एक आदमी का सारा शरीर तो क्षीण हो जाए सिर्फ खोपड़ी बड़ी होती चली जाए। फिर वह आदमी एक कुरूपता होगा, एक अग्लीनेस होगा। और वह आदमी चलने में असमर्थ हो जाएगा। उसका बड़ा सिर उसके पूरे शरीर के संतुलन में नहीं होगा तो उसका जीना कठिन हो जाएगा।
शिक्षा के नाम पर यही हुआ है। हमने सोच लिया कि मनुष्य है केवल बुद्धि, केवल इंटलेक्ट। और तब हम पिछले तीन हजार वर्षों से मनुष्य की बुद्धि को ही विकसित करने के सब उपाय करते रहे हैं। बुद्धि विकसित हो गई लेकिन शेष सारा मनुष्य बहुत पीछे छूट गया। शेष मनुष्य तीन हजार वर्ष पीछे छूट गया, और बुद्धि तीन हजार वर्ष आगे चली गई। इन दोनों के बीज जो तनाव और खाई पैदा हो गई है वही हमारे प्राण लिए ले रही है। इससे एक उलटे ढंग की पंगुता पैदा हुई है, इनवर्टेड क्रिप्लडनेस पैदा हुई है। एक आदमी के पास सब होता है लेकिन आंखें नहीं होतीं, तो हम उस आदमी को कहते हैं कि इसका एक अंग पंगु है, विकसित नहीं हुआ है। एक आदमी के पास सब होता है लेकिन उसके पास दो पैर नहीं होते, उसे हम पंगु कहते हैं। इससे उलटे तरह की पंगुता भी हो सकती है जिसका हमें खयाल भी नहीं है। एक आदमी के पास कुछ न हो, केवल दो पैर हों, तो वह आदमी इनवर्टेड क्रिपिल्ड है। वह उलटे ढंग से पंगु हो गया है। शिक्षा ने मनुष्य को स्वस्थ नहीं किया, पंगु किया है। केवल बुद्धि का विकास और शेष अंग अविकसित रह गए हैं। बुद्धि बड़ी होती चली गई और जीवन के सब स्रोतों से उसके संबंध, नाते विच्छिन्न हो गए। हम सिखाते क्या हैं? हम शिक्षा के नाम पर देते क्या हैं? जीवन की कोई शिक्षा देते हैं हम? कोई जीवन की कला सिखाते हैं? जरा भी नहीं। हम कुछ शब्द सिखाते हैं, कुछ गणित सिखाते हैं, कुछ भाषा सिखाते हैं, कुछ कैमेस्ट्री-फिजिक्स सिखाते हैं, कुछ भूगोल-इतिहास सिखाते हैं और इस सब सिखाने में हम सिखाते क्या हैं? हम शब्द सिखाते हैं। शब्द जीवन नहीं है जीवन को जीने में शब्द की उपादेयता है। लेकिन शब्द मात्र की शिक्षा जीवन की शिक्षा नहीं है। तब यह होता है कि शब्द तो बहुत हो जाते हैं। शिक्षित व्यक्ति के पास शब्दों के अतिरिक्त कोई संपत्ति नहीं होती। वह उतना ही मूढ़ होता है जितना अशिक्षित व्यक्ति। एक फर्क होता है, सिर्फ उसे यह भी भ्रम पैदा हो जाता है कि मैं मूढ़ नहीं

हूं। जीवन के और सारे अंगों के संबंध में वह उतना ही अज्ञानी होता है जितना कोई और जंगल का निवासी। जीवन की कला के संबंध में उसकी कोई समझ नहीं होती। जीवन को जीने के रास्तों का उसे कोई पता नहीं होता। जीवन से उसका कोई परिचय ही नहीं होता। पुस्तकालयों से और किताबों से जीवन का क्या नाता है? क्लास रूम से जो परिचित है वह जीवन से परिचित है, ऐसा समझ लेने की भूल में पड़ जाने की कोई जरूरत नहीं है। और विश्वविद्यालय में जो स्वर्ण पदक ले लिया, जीवन उसे मिट्टी के पदक भी नहीं देगा इसे खयाल रखना जरूरी है। शब्दों की शिक्षा मात्र शब्दों का संग्रह, मात्र शब्दों की संपत्ति मस्तिष्क पर एक बोझ तो बन जाती है, लेकिन मस्तिष्क को न तो मुक्त करती है, न जीवंत बनाती है, न विचारपूर्ण बनाती है, न जीवन को देखने की मौलिकता देती है, न जीने की कला देती है, न जीने का उपाय सिखाती है। इसको हम अब तक शिक्षा कहते रहे हैं। इस शिक्षा का यह फल है जो आदमी आज हमारे सामने खड़ा हो गया है--बीमार, विक्षिप्त, रुग्ण।
क्या आपको पता है जितनी शिक्षा बढ़ती जाती है उतना आदमी विकृत होता चला जाता है? अशिक्षित आदमी के पास एक तरह का संतुलन और स्वास्थ्य था जो शिक्षित आदमी के पास नहीं है। जंगलों के वासियों के पास एक तरह का सौंदर्य था, एक तरह का संगीत था, एक आनंद था; जीवन में एक अर्थ और प्रयोजन था जो शिक्षित आदमी के पास नहीं है। यह बड़ी हैरानी की बात है। शिक्षित होकर क्या हम आनंद को खोने के मूल्य पर शिक्षित हो रहे हैं? हमारी आनंद को अनुभव करने की क्षमता और पात्रता कम हो रही है? क्या हम जीवन के साथ अपनी जड़ों का संबंध तोड़ रहे हैं?
अगर हम देखें, शिक्षित आदमी को निष्पक्ष आंखों से देखना कठिन है, क्योंकि हम भी शिक्षित आदमी हैं। इसलिए बहुत कठिन है यह बात कि हम शिक्षित आदमी के रोग को देख सकें। जहां एक ही रोग होता है वहां पहचानना बहुत कठिन हो जाता है। हम सभी शिक्षित हैं, न केवल हम शिक्षित हैं बल्कि हम शिक्षक भी हैं। हम उसी शिक्षा को फैलाने और देने वाले लोग भी हैं। हमें यह देखना बहुत कठिन हो जाएगा, यह सोचना बहुत कठिन हो जाएगा कि जो हम फैला रहे हैं वह मनुष्य को स्वस्थ नहीं बना रहा है। लेकिन जिनके पास भी आंखें हैं और जिन्होंने शिक्षा में शिक्षित होकर अपनी पूरी बुद्धिमत्ता नहीं खो दी है वे लोग कुछ बातें देखने में समर्थ हो सकते हैं।
अमरीका सर्वाधिक शिक्षित मुल्क है, लेकिन सर्वाधिक पागलों की संख्या
भी अमरीका में है। इन दोनों के बीच कोई संयोग है, संबंध है या केवल एक्सीडेंट है? जो मुल्क जितने शिक्षित होते जा रहे हैं उन मुल्कों का मानसिक तनाव, टेंशन उतना ही बढ़ता चला जा रहा है। ये आंकड़े हमारे खयाल में हैं या नहीं? जो मुल्क जितने शिक्षित हो रहे हैं उतने ही आत्मघात की संख्या वहां बढ़ती चली जा रही है। अमरीका में ही प्रतिदिन पंद्रह लाख से लेकर तीस लाख लोग मानसिक विकारों के लिए चिकित्सा की तलाश करते हैं। और ये सरकारी आंकड़े हैं, और हम भलीभांति जानते हैं सरकारी आंकड़े कभी भी ठीक नहीं होते। पंद्रह लाख से तीस लाख लोग अगर रोज मानसिक चिकित्सा को खोज रहे हों, तो हमें जानना चाहिए कोई व्यक्तिगत भूल नहीं हो रही है, कोई सामूहिक बीमारी मनुष्य के भीतर प्रविष्ट हो रही है। न्यूयार्क में तीस प्रतिशत लोग बिना दवा लिए रात को नहीं सो सकते हैं। और वहां के वैज्ञानिकों की खोज-बीन और शोध का यह नतीजा है कि आने वाले पचास वर्षों में न्यूयार्क में एक भी आदमी बिना दवा लिए नहीं सो सकेगा।
यह विकसित होते मनुष्य के लक्षण हैं। और न्यूयार्क से हमारा क्या वास्ता है, लेकिन बंबई भी बहुत दिन पीछे नहीं रहेगी। हम भी विकास करने में, दौड़ करने में साथ खड़े हो गए हैं। हिंदुस्तान भी पीछे नहीं रहेगा। जो हिंदुस्तान हर चीज में जगतगुरु रहा है वह पागलपन में भी जगतगुरु होकर ही रहेगा। हम बच नहीं सकते। हम दौड़ रहे हैं। हमारे नेता पूरी कोशिश कर रहे हैं कि हम किसी से पीछे न रह जाएं। पश्चिम पर जो एक काली छाया मानसिक तनाव और अशांति की पैदा हुई है वह कैसे पैदा हो गई है?
जिन लोगों ने पिछले तीन सौ वर्षों में पश्चिम को शिक्षित करने की कोशिश की है उन भले लोगों का भली इच्छाओं के साथ ही इसके पीछे हाथ है। शायद

उन्हें पूरे जीवन का पता नहीं था। शायद अकेली बुद्धि विकसित हो जाएगी तो मनुष्य सुखी हो जाएगा यह खयाल था। जरूर बुद्धिमत्ता विकसित होनी चाहिए, बुद्धि विकसित होनी चाहिए। लेकिन जीवन के सारे अंगों के अनुपात में, बैलेंस में स्वास्थ्य के साथ, हृदय के साथ, प्राणों के साथ उसका विकास होना चाहिए। वह अकेली विकसित हो जाएगी तो खतरा होना निश्चित है।
बुद्धि के पास कोई हृदय नहीं होता है और बुद्धि जिस जीवन को बनाएगी और जिस जगत को बनाएगी वह भी हृदयहीन होगा। बुद्धि के पास गणित होता है, प्रेम नहीं। बुद्धि के पास हिसाब और आंकड़े होते हैं, भावना नहीं। बुद्धि संख्याओं में सोचती है और तर्क में सोचती है। जीवन तर्क और संख्याओं और गणित के पार चला जाता है। जीवन बहुत रहस्यपूर्ण है। कोई गणित जीवन को समझा नहीं पाता। कोई संख्या, कोई आंकड़े जीवन को हल नहीं कर पाते। जीवन बहुत मिस्टरीरियस है। लेकिन बुद्धि मिस्टरी को मानती ही नहीं, रहस्य को मानती ही नहीं। बुद्धि मानती है कि सब चीजें दो और दो चार जैसी सीधी और साफ हैं। बुद्धि की यह जो नॉन-मिस्टरीरियस, यह जो रहस्य-शून्य और हृदय-हीन पहुंच है जीवन के प्रति, उसने ही जीवन को यांत्रिकता प्रदान कर दी है।
मनुष्य रोज-रोज मशीन की भांति होता चला जा रहा है। लेकिन जब कोई आदमी मशीन हो जाता है तो हम कहते हैं बहुत एफिशिएंट है, हम कहते हैं बहुत कुशल है। मशीन आदमी से हमेशा ज्यादा कुशल होती है, और आदमी की कुशलता पर ही अगर हमारा जोर रहा तो एक न एक दिन आदमी मशीन के जैसा कुशल हो जाएगा। लेकिन अपनी आत्मा को खोकर। आदमी भूल-चूक करता है, मशीन भूल-चूक नहीं करती। हम ऐसे आदमी की कोशिश कर रहे हैं जिससे भूल-चूक न हो सके, जो एकदम कुशल हो, जो एकदम गणित की लकीरों पर चलता हो। गणित की लकीरों पर चलना, रेल जैसे पटरियों पर दौड़ती है उस भांति है। लेकिन जीवन की सरिताएं पटरियों पर नहीं दौड़ती, अनजान, अपरिचित मार्गों पर दौड़ती हैं। जीवन की सरिता की एक स्वतंत्रता है जो बुद्धि के बंधे हुए ढांचों में समाविष्ट नहीं होती। लेकिन आज तक हमने यह किया है।
तो पहली बात मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि अकेली बुद्धि की शिक्षा बुद्धिमत्ता नहीं है, यह वि.जडम नहीं है। जीवन के और पहलू भी हैं, और बुद्धि से भी ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। क्योंकि आदमी बुद्धि से नहीं जीता, आदमी के जीने के स्रोत बुद्धि से कहीं ज्यादा गहरे हैं। न तो बुद्धि से हम प्रेम करते हैं, न बुद्धि से हम क्रोध करते हैं, न बुद्धि से हम घृणा करते हैं, न बुद्धि से हम सौंदर्य को परखते हैं, न बुद्धि से हम गीत और काव्य को पढ़ते हैं, और न ही बुद्धि से जीवन की कोई भी गहरी अनुभूति उपलब्ध होती है। अकेले बुद्धि की शिक्षा जीवन को सब तरह की अनुभूतियों से क्षीण और वंचित कर दे तो आश्चर्य नहीं। लेकिन हम बुद्धि की ही शिक्षा देते रहे हैं। इस शिक्षा ने एक अत्यंत असंतुलित, अनबैलेंस्ड मनुष्य को पैदा कर दिया है। यह जो असंतुलित मनुष्य है यह कुछ भी कर रहा है, इससे कुछ भी हो रहा है,
यह कोई भी उपद्रव कर रहा है। यह उपद्रव बिल्कुल ही सुनिश्चित है कि होंगे, क्योंकि जब आदमी भीतर से असंतुलित हो जाए तो उसकी बाहर की चर्या भी असंतुलित हो जाती है। उसके जीवन में फिर कोई गति, कोई सुनिश्चित लक्ष्य, कोई संगीत, कोई लयबुद्धता, कोई रिदम नहीं रह जाती। यह तो हमारे दुर्भाग्यों में पहला दुर्भाग्य हुआ कि शिक्षा को हमने केवल बुद्धि की शिक्षा समझ रखा है, समग्र जीवन की नहीं, टोटल, पूरे जीवन की नहीं। पूरे जीवन की शिक्षा और ही अर्थ लेगी।
मेरी दृष्टि में बुद्धि पर अति भार मनुष्य के भीतर कुछ चीजों को विकसित होने से ही रोक देता है। पांच वर्ष के बच्चों को हम स्कूल भेज देते हैं, उनकी बुद्धि पर इतना भार पड़ता है--उनके शरीर, उनके हृदय, उनकी भावनाओं की जीवन में रस और आनंद लेने की सब क्षमताएं क्षीण हो जाती हैं। सारे जीवन का रस बुद्धि ले लेती है और बाकी सारा जीवन सूख जाता है। ये बच्चे बड़े होते हैं हृदयहीन, भावना-शून्य, प्रेम से रिक्त, मशीनों की भांति। उनका एक ही मूल्य होता है कि वे कितने बड़े पदों पर पहुंच जाएं, कितनी तनख्वाहें ले आएं, कितनी कुशलता से काम करें। बस इतना ही मूल्य है।

आदमी इसलिए पैदा होता है? आदमी केवल इसलिए पैदा होता है कि वह ज्यादा तनख्वाह कमाए और बड़ी कुर्सियों पर बैठ जाए? या आदमी किसी और आनंद की संपदा को खोजने जीवन में आता है? लेकिन उस संपदा को खोजने के लिए कुछ और चीजें विकसित होनी चाहिए। मेरी दृष्टि में, आज तो यह बात आपसे कहूंगा तो बहुत अजीब लगेगी, जब तक सारी मनुष्य-जाति आज नहीं कल इस निर्णय पर पहुंचेगी कि दस या बारह वर्ष तक या चौदह वर्ष तक बच्चे की बुद्धि पर कोई भार नहीं होना चाहिए। चौदह वर्ष के बाद ही बच्चे की बुद्धि पर भार होना चाहिए। चौदह वर्ष तक उसके शरीर और उसकी भावनाओं के विकास पर सारा श्रम होना चाहिए। चौदह वर्ष बच्चे के जीवन में बहुत संक्रमणकालीन हैं। जैसे ही सेक्स मैच्योरिटी उपलब्ध होती है, जैसे ही बच्चा यौन की दृष्टि से परिपक्व होता है, उसके बाद ही उसकी बुद्धि का सम्यक विकास करना आसान और उचित है। उसके पहले उसके जीवन के और बहुमूल्य हिस्से हैं वे विकसित होने चाहिए। उसका स्वास्थ्य विकसित होना चाहिए, उसकी भावनाएं विकसित होनी चाहिए, उसके प्रेम करने की क्षमता विकसित होनी चाहिए। क्योंकि बचपन में जिन बच्चों के प्रेम करने की क्षमता विकसित नहीं हुई है वे बूढ़े भी हो जाएं तो उनके भीतर प्रेम का विकास नहीं हो सकेगा।
बचपन सबसे सुखद और अदभुत मौका है कि बच्चे के जीवन में प्रेम विकसित
हो जाए, लेकिन उस समय को हम गणित सिखाने में, भूगोल सिखाने में और इतिहास की बेवकूफियां सिखाने में नष्ट करते हैं और समाप्त करते हैं। क्या प्रयोजन है? बच्चा अगर नहीं जानेगा बहुत भूगोल तो कुछ हर्ज नहीं होता है। और बच्चे ने अगर अकबर और नेपोलियन और सिकंदर जैसे पागल लोगों के नाम नहीं सीखे तो कोई फर्क नहीं पड़ता है। किन लोगों ने कितने लोगों की हत्याएं की हैं अगर इसकी कोई योजना बच्चे ने नहीं सीखी तो कोई अंतर नहीं पड़ता है। और किस सन में कौन बादशाह पैदा हुआ और मरा, इन नासमझियों को सीखाने का न कोई अर्थ है, न कोई सार है। लेकिन इन सबके सिखाने में बच्चे के प्रेम के जो क्षण थे विकसित होने के, वे नष्ट हो जाते हैं।
क्या आपको पता है, बचपन के बाद आपका सारा प्रेम झूठा और थोथा और धोखे
से भरा हो जाता है? जिनको आपने बचपन में चाहा है उस चाह में और जिनको आप बड़े में चाहते हैं, बुनियादी फर्क है। बचपन की वह जो पवित्रता है प्रेम की, अगर एक बार खो गई, अगर वह इनोसेंस एक बार खो गई, तो जीवन में उसे दुबारा पाना अत्यंत दूभर, अत्यंत असंभव हो जाता है। बचपन की सारी पात्रता प्रेम के विकास में लगनी चाहिए, बुद्धि के विकास में नहीं। क्योंकि प्रेम के आधार पर, बुनियाद पर जो जीवन का भवन खड़ा होता है वही केवल आनंद को उपलब्ध हो सकता है। बुद्धि से आनंद का कोई भी नाता और संबंध नहीं है। बुद्धि को हम बुनियाद में रख देते हैं फिर जो भवन खड़ा होता है वह मंदिर नहीं होता है, वह एक फैक्टरी बन जाती है।
आदमी को जिंदगी फैक्टरी बनानी हो, तो बुद्धि पर भवन खड़ा होना चाहिए।
और आदमी की जिंदगी एक मंदिर बनाना हो, तो प्रेम पर बुनियाद रखी जानी चाहिए। बचपन के सारे क्षण हृदय के विकास में दिए जाने चाहिए, सारा श्रम हृदय के विकास के लिए होना चाहिए। और हृदय के विकास के लिए कुछ और अवसर खोजने पड़ते हैं। वे अवसर नहीं जो हम स्कूल में और विद्यालय में खोजते हैं। हृदय के विकास के लिए जरूरी है कि बच्चा खुले आकाश के नीचे हो, बजाय बंद मकानों में। क्योंकि बंद मकान हृदय को भी बंद और कुंठित करते हैं। खुले आकाश के नीचे हो, दरख्तों के पास हो, चांद-तारों की छाया में हो, नदियों और समुद्रों के किनारे हो, खुली मिट्टी और पृथ्वी के संसर्ग में हो। जितने विराट के निकट होगा बच्चा उतने ही प्रेम का उसके भीतर जन्म होगा, और सौंदर्य का बोध, और रस विकसित होगा। बंद दीवालों में काले तख्तों के सामने बैठे हुए छोटे-छोटे बच्चों पर जो अपराध हो रहा है, जो पाप हो रहा है, उसकी गणना आज नहीं कल मनुष्य-जाति कभी न कभी करेगी, तो हम सब दोषी करार सिद्ध होंगे। बच्चों को होश आते ही हम बंद कमरों और दीवालों में बंद कर देते हैं शिक्षा के नाम पर। कारागृह में बंद कर देते हैं और क्या सिखाते हैं उन्हें हम? और कौन से जीवन का मूल्य सिखाते हैं? फिर बचपन के अदभुत क्षण जब कि जीवन से संपर्क हो सकता था, वे खो गए।

रवींद्रनाथ ने लिखा है, कि मुझे बंद किया जाता था स्कूलों में। बाहर वृक्षों पर चिड़ियां गीत गाती थीं और मुझे काले तख्ते को ही देखते रहना पड़ता था। चिड़ियों के गीत बहुत अदभुत थे, लेकिन मुझे शिक्षक की ही बेसुरी आवाज और भूगोल पढ़नी पड़ती थी। और अगर मेरे कान और अगर मेरे प्राण पक्षियों के निकट पहुंच जाते तो सजा झेलनी पड़ती थी। फिर रवींद्रनाथ ने शांतिनिकेतन में पहली दफा जब विद्यालय खोला तो कौन उनको अपने बच्चे देता बिगाड़ने के लिए? रवींद्रनाथ खुद भी कोई उपाधि नहीं पा सके, किसी विश्वविद्यालय से। सौभाग्य था उनका, नहीं तो दुनिया एक महाकवि से वंचित रह जाती। भाग्यशाली थे वे। उनके मां-बाप असफल हो गए और रवींद्रनाथ को स्कूल से उठा लिया। अगर मां बाप सफल हो जाते तो दुनिया को एक बहुत बड़ा नुकसान सहना पड़ता। और इस दुनिया ने इतने कितने नुकसान सहे होंगे मनुष्य के इतिहास में उनका कोई आंकलन नहीं हो सकता, क्योंकि उनका कोई पता नहीं हो सकता कि कितने रवींद्रनाथ खो गए होंगे स्कूलों में।
रवींद्रनाथ ने जब पहला स्कूल खोला, कौन भेजता अपने बच्चों को बिगाड़ने
के लिए? मैं कोई स्कूल खोलूं तो आप अपने बच्चे को भेजेंगे? नहीं भेजेंगे। बच्चों को बिगाड़ने के लिए कौन भेजता है? लेकिन फिर भी रवींद्रनाथ के मित्रों के कुछ ऐसे बच्चे थे जिनको और बिगाड़ना संभव ही नहीं था, उनको रवींद्रनाथ के स्कूल भेज दिया गया। वे आखिरी सीमा पर थे, उनसे कोई आशा और बिगड़ने की नहीं थी। रामानंद चटर्जी ने, मार्डन रिव्यू के संपादक ने भी अपने लड़के को भेजा हुआ था। उससे वे बाज आ गए थे। जिन लड़कों में भी थोड़ी प्रतिभा होती है मां-बाप उनसे जरूर परेशान हो जाते हैं। प्रतिभाहीन, मेधा- रिक्त जड़बुद्धि बच्चे मां-बाप को बड़े प्रीतिकर लगते हैं। क्योंकि उनसे जहां कहो बैठ जाओ वे वहीं बैठ जाते हैं और कहो उठ जाओ तो उठ जाते हैं। उनके पास अपनी न कोई आत्मा होती है, न अपने कोई प्राण होते हैं।
रामानंद ने अपने लड़के को भी भेजा था। तीन महीने बाद रामानंद देखने गए
कि हालत क्या है, स्कूल कैसा चलता है? कोई आशा तो न थी स्कूल चलने की, लेकिन जो देखा उससे और बड़ी हैरानी हुई। एक बड़े वृक्ष के नीचे रवींद्रनाथ बैठे हैं, दस-पंद्रह बच्चे उनके आस-पास बैठे हैं। पढ़ाई चलती है। पास जाकर रामानंद ने देखा कि दस-पंद्रह नीचे बैठे हैं, दस-पंद्रह वृक्ष के ऊपर भी चढ़े हैं। यह कैसी कक्षा है? रवींद्रनाथ से उन्होंने कहाः मुझे शक था पहले ही, यह क्या हो रहा है? यह कोई कक्षा है? देख कर मुझे दुख होता है। लड़के वृक्ष पर चढ़े हुए हैं?
रवींद्रनाथ ने कहाः दुख मुझे भी होता है। फल पक गए हैं। जो लड़के नीचे बैठे हैं उन पर मैं हैरान हूं। दुख मुझे भी होता है, दुखी मैं भी हूं। मैं बूढ़ा हो गया अन्यथा मैं भी वृक्ष के ऊपर होता। फल पक गए हैं। फलों की सुगंध हवाएं ले आई हैं। वृक्ष पुकार रहा है। और अगर बच्चे नहीं चढ़ेंगे तो कौन चढ़ेगा? वृक्षों ने निमंत्रण दे दिया है। ये बच्चे अभी से बूढ़े हो गए जो नीचे बैठे हैं। इन्हें निमंत्रण ही नहीं मिल रहा है। इनकी नासापुटों में खबर नहीं हो रही है कि पक गए हैं फल। वृक्ष बुलाता है कि आओ। दुखी होंगे वे जो असमर्थ हैं ऊपर चढ़ने में, जो बूढ़े हो गए। लेकिन ये तो अभी बूढ़े नहीं हुए। मैं यही सोचता था बैठा-बैठा। ये बच्चे अभी से बूढ़े हो गए हैं क्या? इन्हें वृक्ष की चुनौती नहीं मिली? इन्हें कोई खबर नहीं मिली?
हम बच्चों को बचपन में ही बूढ़ा कर देते हैं, और फिर अगर जीवन से युवापन, ताजगी, फ्रेशनेस नष्ट हो जाती हो तो कौन जिम्मेवार है? मेरे देखे, बहुत अनाचार हो रहा है, बहुत अत्याचार हो रहा है, बहुत गलत हो रहा है। बचपन के क्षण इतने अदभुत हैं कि जीवन में वे वापस नहीं लौटेंगे। हिसाब-किताब की बातें बाद में भी हो सकती हैं। पूरा जीवन पड़ा है। लेकिन जीवन के कुछ मूल्यवान तत्व बचपन में ही दिए जा सकते हैं जो फिर कभी नहीं दिए जा सकते। प्रकृति का सान्निध्य जिन बच्चों को नहीं मिलता उन बच्चों को परमात्मा का सान्निध्य भी नहीं मिल सकेगा, यह जान लेना चाहिए। क्योंकि प्रकृति द्वार है परमात्मा का। जिन्होंने आकाश के तले, सूरज के निकट, समुद्र की रेत पर, वृक्षों के पास वह जो वहां मौजूद है, जो प्रेजेंस वहां है परमात्मा की, उसे अनुभव नहीं कर लिया बचपन में, वे बुढ़ापे तक मंदिरों

में पूजा करेंगे, पत्थरों की मूर्तियों के सामने सिर झुकाएंगे, गीता, कुरान और बाइबिल कंठस्थ कर लेंगे, लेकिन परमात्मा से उनका कोई संबंध नहीं हो सकता। जो द्वार था वे उसको ही खो गए हैं। जो रास्ता था वे उससे ही भटक गए हैं।
सम्यक शिक्षा, राइट एजुकेशन के लिए पहली बात जान लेनी जरूरी है और वह
यह कि हम बच्चों को प्रकृति का सान्निध्य उपलब्ध करा सकें। उन्हें हम मनुष्य निर्मित मकानों के पास नहीं, लेकिन जीवन की ऊर्जा से जो निर्मित हुआ है उसके निकट ला सकें, उसी से वे परमात्मा के निकट पहुंच सकेंगे, उसी से वे प्रेम के निकट पहुंच सकेंगे, उसी से वे प्रार्थना के सूत्र समझ सकेंगे। और तब उनका जो जीवन खड़ा होगा... पीछे आना चाहिए गणित, प्रेम पहले, क्योंकि जिस आदमी ने प्रेम सीख लिया है फिर गणित उसे धोखा नहीं दे सकेगा। संत अगस्तीन से किसी ने पूछाः हम क्या करें, हम क्या करें कि हमसे बुरा न हो? अगस्तीन ने कहाः यह मत पूछो, मैं तो एक ही बात जानता हूं, अगर तुम प्रेम जानते हो तो तुम जो भी करोगे वह बुरा नहीं हो सकेगा। यह मत पूछो कि हम क्या करें, यह सवाल नहीं है। अगर भीतर प्रेम नहीं है तो तुम जो भी करोगे वह बुरा होगा। और अगर भीतर प्रेम है तो तुम जो भी करोगे वह बुरा नहीं हो सकता है। लेकिन प्रेम की हमने कौन सी शिक्षा दी है, कौन सी दीक्षा दी है, हमने प्रेम के कौन से प्रमाण-पत्र बांटे हैं, हमने प्रेम की कौन सी उपाधियां दी हैं? और अगर तीन हजार वर्षों में आदमी बिल्कुल प्रेम-शून्य हो गया हो, हत्यारा हो गया हो, हिंसक हो गया हो तो कौन है जिम्मेवार? हमारी शिक्षा के अतिरिक्त और किसी पर यह दोष नहीं दिया जा सकता, लेकिन इससे शिक्षक बुरा न मानें, क्योंकि शिक्षा को यह दोष देने का मतलब है, मैं शिक्षा को बहुत आदर दे रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं कि शिक्षा जीवन का केंद्र है इसलिए केंद्रीय दोष भी झेलने की तैयारी शिक्षक के पास होनी चाहिए क्योंकि केंद्रीय सम्मान भी कल उसी को मिल सकता है।
कल अगर जीवन परिवर्तित होगा तो सम्मानित भी शिक्षा ही होगी, और अगर आज जीवन दूषित और विषाक्त हो गया है तो उसके केंद्रीय दोष को, जिम्मेवारी को, रिस्पांसिबिलिटी को लेने को भी शिक्षाशास्त्री को तत्पर होना ही चाहिए। यह शिक्षा के केंद्रीय होने का, शिक्षा के केंद्र में होने की सूचना है। यह बहुत सम्मानपूर्वक है यह बात जो मैं कह रहा हूं कि शिक्षा केंद्रीय है, न तो राजनीतिज्ञ जिम्मेवार है और न धर्मगुरु उतना जितना शिक्षक जिम्मेवार है। लेकिन आने वाली दुनिया भी शिक्षक को ही सम्मान देगी अगर वह जीवन को बदलने के कोई आधार रख सकता है। अगर आप नहीं बदल सकेंगे बच्चे कल बदलना शुरू कर देंगे।
एक मित्र मेरे हालैंड से और बैल्जियम से होकर लौटे हैं। उन्होंने मुझे कहा वहां हाई स्कूल के लड़के और लड़कियों ने आगे पढ़ने से इनकार करना शुरू कर दिया है। उनके बड़े संगठन हैं और वे यह कहते हैं कि आगे पढ़ने से क्या होगा? मां-बाप से भी वे यह पूछते हैं कि आप तो बहुत पढ़े-लिखे हैं, आपके जीवन में क्या हो गया है? तो हमें व्यर्थ उसी मशीन से क्यों गुजारते हैं जिससे गुजर कर आपने कुछ भी नहीं पाया है? और मां-बाप के पास उत्तर नहीं है इस बात का। अगर आपके बच्चे भी आपसे पूछेंगे कि शिक्षित होकर आपने क्या पा लिया? क्या उत्तर है आपके पास? तिजोरी बता देंगे अपनी? अपने बड़े मकान बता देंगे? दिल्ली में पाई गई अपनी कुर्सियां बता देंगे? क्या बताएंगे बच्चों को?
है कुछ आपके पास जो शिक्षित होकर आपने पा लिया है? क्या बल से आप कह सकते हैं कि मेरा आत्मबल बड़ा है। क्या बल से आप कह सकते हैं कि मेरा आनंद विकसित हुआ है? क्या बल से आप कह सकते हैं कि जीवन के प्रति मेरा मेरा ग्रेटिट्यूड, अनुग्रह-भाव विकसित हुआ है? क्या आप कह सकते हैं कि मैं धन्यभागी हुआ हूं? नहीं कह सकते हैं तो बच्चे आज नहीं कल आपसे पूछेंगे और अगर उत्तर नहीं है आपके पास तो मैं आपको कहे देता हूं बच्चे आज नहीं कल, आपकी शिक्षा की फैक्ट्रियों में जाने से इनकार करेंगे उन्होंने बहुत शिक्षित मुल्कों में इनकार करना शुरू कर दिया है। ठीक भी है उनका इनकार।

लेकिन इसके पहले कि वे इनकार करें, क्या हम सारे जीवन के सोचने का ढंग बदल नहीं सकते?
सेक्स मैच्योरिटी तक जब तक बच्चा यौन की दृष्टि से परिपक्व नहीं हो जाता लड़का या लड़की, तब तक उसके जीवन की केंद्रीय शिक्षा प्रेम और हृदय की होनी चाहिए। क्योंकि सारा जीवन उससे निकलेगा, फिर वह पत्नी बनेगी या पति बनेगा, वह बाप बनेगा या मां बनेगी, उसके जीवन के सारे रागात्मक संबंध उसके प्रेम और हृदय के संबंध होंगे; गणित के नहीं, भूगोल के नहीं, इतिहास के नहीं। इतिहास पढ़ने से कोई मां ज्यादा बेहतर मां नहीं बन सकती और न भूगोल पढ़ने से कोई बाप ज्यादा बेहतर बाप बन सकता है। कुछ और चाहिए जो एक बेहतर मां को, बेहतर बाप को पैदा करे। कुछ और चाहिए जो एक पत्नी को और पति को पैदा करे।
आज न तो दुनिया में मां है, न बाप; न पत्नी और न पति। इनके नाम पर सूडो रिलेशनशिप्स हैं, इनके नाम पर झूठे संबंध हैं। जिसको आप पत्नी कहते हैं उसको कभी आपने प्रेम किया है? यह तो हो भी सकता है कि जिसको आप पत्नी नहीं कहते हैं उसको आपने कभी प्रेम किया हो, लेकिन जिसको आप पत्नी कहते हैं उसे कभी नहीं। जिसको पत्नी पति कहती है उसको कभी चाहा है? उसे कभी आदर दिया है? उसे कभी प्रेम किया है? प्राणों ने कभी उसके लिए प्रार्थना की है? कभी उसके जीवन को समृद्ध और संगीतपूर्ण बनाने के लिए कोई कदम उठाए हैं? बिल्कुल नहीं, बल्कि उसके जीवन में जितने कांटे बो सकें पत्नियां उतने कांटे बोती हैं, जितनी बाधाएं खड़ी कर सकें उतनी बाधाएं खड़ी करती हैं, और पति भी यही करते हैं, मां-बाप भी यही करते हैं। कहते हैं हम कि अपने बच्चे को प्रेम करते हैं। हमने प्रेम जाना ही नहीं, हम बच्चे को प्रेम कैसे करेंगे? अगर हम बच्चों को प्रेम करते होते, तो दुनिया में इतने युद्ध नहीं हो सकते थे। कौन मां-बाप हैं जो अपने बच्चों को युद्ध में भेजते? अगर हम अपने बच्चों को प्रेम करते होते तो दुनिया इतनी कुरूप नहीं हो सकती थी। अगर हम अपने बच्चों को प्रेम करते होते, तो मैं तो यह कहता हूं कि आप बच्चे पैदा भी नहीं कर सकते थे। क्योंकि इस कुरूप और गंदी दुनिया में कौन प्रेम करने वाले मां-बाप अपने बच्चों को पैदा करने को तैयार होते? वे हाथ जोड़ लेंगे कि इस दुनिया में हम बच्चे को कैसे लाएं? किस मुंह से लाएं? कल बच्चे बड़े होंगे तो हम बेशर्म मालूम होंगे उनके सामने कि इस दुनिया में हमने तुमको पैदा किया। इस कुरूप, बदशक्ल, अनीति से भरी, अंधकारपूर्ण दुनिया में हम तुम्हें कैसे भेजें?
मां-बाप बच्चे पैदा करने से इनकार कर देते अगर उनके हृदय में प्रेम होता। नहीं, लेकिन वे बच्चे पैदा किए चले जाते हैं। उन्हें बच्चों से कोई प्रयोजन नहीं है। वे बच्चों को बड़ा किए चले जाते हैं। वे बच्चों को तोप-बंदूक का भोजन बनाए चले जाते हैं। नई-नई तरकीबों और नये-नये नामों पर बच्चों की हत्या करवाए चले जाते हैं--हिंदुस्तान के नाम पर, पाकिस्तान के नाम पर, चीन के नाम पर, कम्युनिज्म के नाम पर, डेमोक्रेसी के नाम पर। किसी भी बड़े नारे के नाम पर मां-बाप अपने बच्चों की हत्या करवाने को हमेशा तैयार हैं। नाम बहुत बड़े हैं, नारे बहुत बड़े हैं, बच्चे बहुत छोटे हैं। अगर दुनिया में प्रेम होता मां-बाप के मन में बच्चों के प्रति एक दूसरी दुनिया पैदा होती जिसमें युद्ध नहीं हो सकते थे। क्योंकि हर बच्चा किसी मां का बच्चा है और हर बच्चा किसी बाप का बेटा है। कौन अपने बच्चों को युद्ध में भेजने को राजी होता? हम कह देते मिट जाए पाकिस्तान, मिट जाए हिंदुस्तान, लेकिन बच्चे युद्ध में नहीं जा सकते। बचे चीन, बचे रूस न बचे, अमरीका रहे न रहे, लेकिन कोई मां अपने बेटे को युद्ध पर भेजने के लिए तैयार नहीं है। दुनिया से युद्ध भी खत्म होते, राजनीति भी, राजनीतिज्ञ भी, राष्ट्र भी। लेकिन कोई अपने बेटों को प्रेम नहीं करता है। प्रेम हम जानते ही नहीं हैं। प्रेम से हमारा परिचय ही नहीं है। प्रेम से हमारी मुलाकात ही नहीं हो पाई है। प्रेम से मुलाकात के क्षण तो हमने न मालूम क्या-क्या फिजूल की बातें सीखने में नष्ट कर दिए हैं। तो मेरी दृष्टि में शिक्षा की बुनियाद होनी चाहिए प्रेम, बुद्धि नहीं। बुद्धि केवल उपकरण है। अगर भीतर प्रेम होगा तो बुद्धि एक मीन्स बन जाती है, एक उपकरण बन जाती है प्रेम को

फैलाने और विकसित करने का, और भीतर अगर प्रेम नहीं होगा तो बुद्धि एक उपकरण बन जाती है अप्रेम को फैलाने का।
ट्रूमैन ने हिरोशिमा पर एटम बम गिराने की आज्ञा दी। दूसरे दिन सुबह, मैंने सुना है, पत्रकारों ने ट्रूमैन को घेर लिया और पूछाः रात आप शांति से सो सके? ट्रूमैन ने कहाः बहुत शांति से। जैसे ही मुझे खबर मिली कि हिरोशिमा, नागासाकी राख हो गए और जापान समर्पण कर देगा, वैसे ही मैं पहली दफा शांति से सो सका। उन पत्रकारों में से किसी ने भी यह नहीं पूछा कि एक लाख बीस हजार आदमी नष्ट हो गए और तुम शांति से सो सके? तुम आदमी हो या कुछ और? लेकिन उस आदमी का नाम हैः ट्रूमैन, असली आदमी।
हमारी शिक्षा ऐसे ही ट्रूमैन पैदा कर रही है। जिनके भीतर कोई मनुष्यता, जिनके भीतर प्राणों की कोई ऊर्जा, कोई करुणा नहीं है। जिनके पास प्रेम का कोई झरना नहीं है। जिनके पास प्रेम का झरना नहीं है वे हिसाब लगाने वाले कंप्यूटर्स हो सकते हैं, वे मशीनें हो सकते हैं हिसाब लगाने वाली, लेकिन आदमी नहीं। आदमी की पहली पहचान उसके भीतर प्रेम है, जितना बड़ा प्रेम उतना बड़ा आदमी। जितना बड़ा प्रेम उतनी उस आदमी की परमात्मा से सन्निधि। इसलिए एक बात ही बुनियादी रूप से कहना चाहता हूं कि शिक्षा के प्राथमिक चरण प्रेम के चरण होने चाहिए। और प्रेम के चरण उठाने के लिए बंद दीवालें नहीं, खुला आकाश, पक्षी और वृक्ष, तारे और चांद चाहिए।
प्राथमिक शिक्षा गणित की नहीं काव्य की। प्राथमिक शिक्षा भूगोल की नहीं सौंदर्य की। प्राथमिक शिक्षा विज्ञान की नहीं, कला की। प्राथमिक शिक्षा तनाव की नहीं, विश्राम की और शांति की। अगर हम चौदह वर्ष तक की शिक्षा को इस भांति व्यवस्थित कर सकें तो बाद में इन बच्चों को बिगाड़ना कठिन है। इनको फिर किसी भी स्कूल और किसी भी युनिवर्सिटी में भेजा जा सकता है। फिर इन्हें कुछ भी सिखाया जा सकता है। उससे फिर कोई खतरा नहीं होगा। इनके प्रेमपूर्ण हाथ में अगर तलवार दे दी जाएगी तो उस तलवार से कोई नुकसान नहीं होगा। एटम दे दिया जाएगा तो कोई नुकसान नहीं होगा। फिर बड़ी से बड़ी शक्ति प्रेम के हाथों में सृजनात्मक, क्रिएटिव हो जाती है। विज्ञान ने शक्ति खोज दी है आदमी के लिए बड़ी से बड़ी, लेकिन शिक्षक प्रेमपूर्ण हृदय नहीं दे पाया। बड़ी शक्ति खतरनाक है उन हाथों में जिनके पास प्रेम न हो। नादिरशाह हिंदुस्तान की तरफ आता था। एक ज्योतिषी से उसने पूछा कि मैं सुनता हूं कि ज्यादा सोना, ज्यादा नींद लेना बहुत बुरा है और मुझे तो बहुत नींद आती है। क्या सच में बुरी बात है ज्यादा देर सोए रहना? उस ज्योतिषी ने कहाः नहीं, आप जैसे लोग अगर चौबीस घंटे सोए रहें तो बहुत अच्छा है। बुरे लोग अगर बिल्कुल सो जाए तो बहुत अच्छा है। भले लोगों का जागना अच्छा होता है, बुरे लोगों का सोना।
सुनते हैं नादिरशाह ने उस आदमी की गर्दन कटवा दी, लेकिन उसने बात बड़ी सच्ची कही थी। सच्ची बात कहने वालों की गर्दन काटे जाने का पुराना रिवाज रहा है। उसने बात ठीक कही थी। बुरे आदमी का सोना अच्छा है, अच्छे आदमी का जागना। ऐसे ही मैं कहता हूं प्रेमपूर्ण व्यक्ति का शक्तिशाली होना अच्छा है, प्रेम शून्य व्यक्ति का नपुंसक होना अच्छा है, शक्तिहीन होना अच्छा है, इंपोटेंट होना अच्छा है। प्रेमपूर्ण व्यक्ति के हाथ में शक्ति हो तो जीवन विकसित होता है। और प्रेम-शून्य व्यक्ति के हाथ में शक्ति हो तो जीवन एक कब्रिस्तान बनेगा और कुछ भी नहीं बन सकता है। हम यही करते रहे हैं।
इस दिशा में चिंतन करना जरूरी है। शिक्षकों से मैं यही प्रार्थना और निवेदन करने आया हूं कि वे सोचें, वे इस संबंध में सोचें कि हृदय का विकास कैसे हो। और अगर जरूरी हो, मुझे तो लगता है कि अगर सौ वर्ष के लिए सारी दुनिया के सारे विश्वविद्यालय और सारे विद्यापीठ बंद कर दिए जाएं और आदमी के मन को बिल्कुल ही अशिक्षित छोड़ दिया जाए तो भी नुकसान नहीं होगा, जितना नुकसान सौ वर्षों में जो शिक्षा चल रही है उसको देने से होने वाला है। आदमी हजारों वर्ष तक अशिक्षित था। उन अशिक्षित लोगों ने भी आनंद जाना, गीत जाने, प्रेम जाना। उन्होंने भी एक दुनिया बनाई थी। उनके जीवन में भी खुशी थी और मुस्कुराहटें थीं, हमसे ज्यादा, हमसे बहुत ज्यादा। हमने सब खो दिया है। आदमी के निसर्ग को वापस लौटा लेना जरूरी है।

मैं यह नहीं कहता हूं कि शिक्षा खत्म कर दी जाए। मैं यह कह रहा हूं कि शिक्षा की बुनियाद बदल दी जाए। और यही शिक्षा चलती हो कोई विकल्प न हो, यही शिक्षा एकमात्र ऑल्टरनेटिव हो तो मैं कहता हूं यह सारी शिक्षा बंद हो जाए और आदमी वापस जंगल में लौट जाए तो भी हम कुछ खोएंगे नहीं। लेकिन मुझे लगता है विकल्प है, ऑल्टरनेटिव और भी हैं, इस शिक्षा को परिपूर्ण किया जा सकता है। और एक चीज इसमें जुड़ जाए, इसके आधार प्रेम के, भाव के, हृदय के, करुणा और दया के हो जाएं। मनुष्य के हृदय को हम पहले विकसित कर लें पीछे उसकी बुद्धि को। हृदय नेतृत्व करे, बुद्धि अनुगामी हो तो यह शिक्षा भी सम्यक हो सकती है।
मैं निराश नहीं हूं। निराश होता तो फिर आपसे यह बात नहीं कहता। शिक्षकों से यह बात इसी आशा में कहता हूं कि वे सोचेंगे। उनके हाथ में बड़ी शक्ति है। आज नहीं कल दुनिया उन्हें जिम्मेवार ठहराएगी अगर गलत हो गया कुछ। उसके पहले चिंतन कर लेना उचित है। फिर कभी दुबारा आपके बीच आता हूं तो मैं इस संबंध में आपसे बात कर सकूंगा कि प्रेम की शिक्षा कैसे हो। आज तो इस तरफ आपका ध्यान भर खींचा जा सके तो मैं समझूंगा मेरी बात पूरी हुई। इतना ध्यान भर खींचा जा सके कि बुद्धि के आधार पर रखे गए शिक्षा के भवन से फैक्टरी बन सकती है मंदिर नहीं। जीवन का मंदिर बनाना हो तो आधार प्रेम पर रखने होंगे और बचपन के चौदह वर्ष तक का समय प्रेम के विकास के लिए अदभुत मौका है। उस वक्त अगर हम चूक जाते हैं तो हम हमेशा के लिए चूक जाते हैं। फिर कोई उपाय नहीं रह जाता कि हम उसमें बदलाहट ला सकें। और बचपन में बदलाहट लाने के लिए कुछ भी करना जरूरी नहीं था। प्रेम के झरने बहने को उत्सुक थे। हमने जान बूझ कर उन्हें रोक दिया, बहने नहीं दिया। हम केवल मौका बन जाएं उनके प्रेम के झरनों को बहने के लिए तो बिल्कुल नये तरह के मनुष्य को पैदा करने में हम समर्थ हो सकते हैं।
और एक नये मनुष्य की अत्यंत जरूरत है। न तो इतनी जरूरत है इस बात की कि
हम और नये एटम बम और हाइड्रोजन बम बनाएं। न इस बात की जरूरत है कि हम चांद-तारों पर पहुंचने के लिए स्पुतनिक और यान बनाएं। न इस बात की जरूरत है कि हम समुद्रों की गहरइयां नाप लें। न इस बात की जरूरत है कि हम बहुत बड़ी-बड़ी फैक्टरियां, बहुत बड़े-बड़े पुल, बहुत बड़े-बड़े रास्ते बनाएं। ये सब पड़े रह जाएंगे। आदमी अगर गलत हो गया तो ये सब व्यर्थ हो जाएंगे। इस वक्त तो एक ही इमरजेंसी है और वह यह है कि हम ठीक आदमी कैसे बनाएं। आदमी गलत है, ठीक आदमी कैसे निर्मित हो इस दिशा में हम सोचें।
मैंने ये थोड़ी सी बातें आपसे कहीं।

मेरी बातों को इतने प्रेम और इतनी शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे, लेकिन अपरिचित, परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सम्यक शिक्षा
सातवां प्रवचन

सम्यक शिक्षा

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहूंगा।
बहुत पुराने दिनों की कहानी है। एक सम्राट के महल के सामने बहुत भीड़ लगी हुई थी। सुबह से ही भीड़ लगनी शुरू हुई थी और सांझ होने को आ गई थी, भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। सारी राजधानी महल के सामने इकट्ठी हो गई थी। कोई ऐसी बात घट गई थी कि जो भी आदमी आकर खड़ा हो गया था वह वापस नहीं लौटा था। दूर-दूर गांव तक खबर पहुंच गई थी दिन भर में। सम्राट के महल के सामने कोई बड़ी अजीब घटना घट गई। जिसने भी सुनी वह भागा चला आया। बात हो भी ऐसी ही गई थी। सुबह ही सुबह एक भिखारी ने भीख मांगी थी। सम्राट के सामने भिक्षापात्र फैलाया था। सम्राट ने कहा था अपने चाकरों को कि जाओ अन्न से भिक्षापात्र को भर दो। उस भिखारी ने कहाः मेरी एक शर्त है, मैं एक शर्त पर ही भिक्षा लेना स्वीकार करता हूं। और वह शर्त यह है कि मेरे भिक्षापात्र को पूरा भरना पड़ेगा। अधूरा भिक्षापात्र भरा लेकर मैं नहीं जाऊंगा। क्या आप वायदा करते हैं कि मेरे भिक्षापात्र को पूरा भर सकेंगे? सम्राट हंसने लगा भिखारी की नासमझी पर। सम्राट के पास क्या कमी थी जो उस छोटे से पात्र को पूरा न भर सकेगा? उसने अपने वजीर को कहा कि अब अन्न से नहीं स्वर्ण-मुद्राओं से इसके पात्र को भर दो। इस भिखारी को शायद पता नहीं कि मेरे पास धन के अकूत खजाने हैं।
लेकिन वह भिखारी फिर बोला कि मेरी शर्त सुन लें, मैं पूरा पात्र भरेगा
तो ही लौटूंगा, नहीं तो वापस नहीं लौटूंगा। सम्राट ने वजीर को कहा कि अब स्वर्ण-मुद्राओं से नहीं, हीरे-जवाहरातों से इसके पात्र को भर दो। और जब तक हीरे वापस नीचे न गिरने लगें, तब तक पात्र भरते ही जाना। ताकि इस भिखारी को पता चल जाए, इसने किसके द्वार पर भीख मांगी है? वजीर गए और उन्होंने हीरे-जवाहरात लाकर उसके पात्र में डाले। डालते ही राजा को अपनी भूल पता चल गई। पात्र में हीरे गिरे और कहीं खो गए। पात्र खाली का खाली हो गया। तब सुबह से सांझ तक यह दौड़ चलती रही, वजीर दौड़ते रहे, और वे खजाने जो कभी खाली नहीं होते थे, सांझ तक खाली होने लगे। और वह पात्र जो बहुत छोटा दिखाई पड़ता था, भरने का कोई नाम ही न लेता था। खाली का खाली था।
सांझ होते-होते राजा घबड़ाया, बड़े सम्राटों से वह नहीं हारा था, लेकिन
एक भिखारी से हारना पड़ेगा, इसकी कल्पना भी न की थी। उदास, सूरज के डूबने के साथ ही वह भिखारी के चरणों पर गिर पड़ा और कहा, मुझे क्षमा कर दें, मुझसे भूल हो गई। मैं इस पुराने नियम को भूल ही गया कि भिखारी की भूख इतनी बड़ी है कि सम्राटों के खजाने भी उसे नहीं भर सकते। मुझे क्षमा कर दो। मैंने अपने अहंकार में जो वादा किया था, वापस ले लेता हूं। मैं हारा और पराजित हो गया हूं। लेकिन जाने के पहले एक बात मुझे बताते जाओ, इस भिक्षापात्र में कौन सा जादू है? किन मंत्रों से इसे सिद्ध किया है? कौन सा रहस्य है इस भिक्षापात्र का जो भरता नहीं है? उस भिखारी ने कहाः कोई रहस्य नहीं है, न कोई जादू है, न किन्हीं मंत्रों से इसे सिद्ध किया है। बड़ी छोटी सी बात है, मैंने इस भिक्षापात्र को आदमी के हृदय से बनाया है। न आदमी का हृदय कभी भरता है, और न यह पात्र कभी भर सकता है।
पता नहीं यह बात कहां तक सच है और कहां तक झूठ है? यह भी पता नहीं कि आदमी के हृदय से कोई पात्र बनाया जा सकता है? लेकिन पीछे जो कहानी के छिपा हुआ रहस्य है, वह जरूर बिल्कुल सत्य है। आदमी का हृदय कभी भी नहीं भरता है। जीवन भर की दौड़ के बाद भी हृदय खाली रह जाता है। जीवन की संध्या आ जाती है। और वह जो प्राणों का राजा है, मन के भिखारी के चरणों पर गिर पड़ता है, और कहने लगता है, क्षमा कर दो मैं तुम्हें नहीं भर पाया। मैंने जीवन भर कोशिश की, मैंने बहुत खजाने जीते, मैंने बहुत संपदा जुटाई लेकिन तुम खाली के खाली हो।

सिकंदर जिस दिन मरा था और जिस राजधानी में उसकी अरथी निकली थी, लोग चकित रह गए थे देख कर कि अरथी के बाहर उसके दोनों हाथ लटके हुए थे। लोग पूछने लगे कि सिकंदर की अरथी के साथ कोई भूल हो गई है? हाथ भीतर होने थे, हाथ बाहर क्यों हैं? तो पता चला, मरने के पहले सिकंदर ने कहा था, मेरे हाथ अरथी के बाहर लटके रहने देना, ताकि लोग देख लें कि मैं भी खाली हाथ विदा हो रहा हूं। मेरे हाथ भी भरे हुए नहीं हैं। आज तक कोई आदमी मन को भरकर विदा नहीं हो सका है।
इस कहानी से मैं क्यों अपनी बात शुरू करना चाहता हूं? इसलिए अपनी बात शुरू करना चाहता हूं कि मैं उसी शिक्षा को सम्यक शिक्षा, राइट एजुकेशन कहता हूं जो मनुष्य के मन को भरने की इस व्यर्थ दौड़ के प्रति जगा दे। मैं उसी शिक्षा को सम्यक कहता हूं जो महत्वाकांक्षा के इस पात्र से मनुष्य को मुक्त कर दे। मैं उसी शिक्षा को ठीक शिक्षा कहता हूं जो मनुष्य के मन की इस बुनियादी भूल से छुटकारा दिलाने में सहायक हो जाए। लेकिन ऐसी शिक्षा पृथ्वी पर कहीं भी नहीं है। उलटे जिसे हम शिक्षा कहते हैं, वह मनुष्य की एंबीशन को, उसकी महत्वाकांक्षा को बढ़ाने का काम करती है। उसकी महत्वाकांक्षा की आग में घी डालती है। उसकी आग को प्रज्ज्वलित करती है। उसके भीतर जोर से त्वरा पैदा करती है। जोर से गति पैदा करती है ताकि वह व्यक्ति दौड़े और अपनी महत्वकांक्षाओं को पूरा करने में लग जाए। मन की वासनाओं को पूरा करने के लिए व्यक्ति को सक्षम बनाने की कोशिश करती है शिक्षा, मन की महत्वाकांक्षा से मुक्त होने के लिए नहीं। और इसके स्वाभाविक परिणाम फलित होने शुरू हुए हैं। वे परिणाम यह हैं कि अगर सारे लोग महत्वाकांक्षी हो जाएंगे तो जीवन एक द्वंद्व और संघर्ष के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हो सकता है। अगर सारे लोग अपनी महत्वाकांक्षा के पीछे पागल हो जाएंगे, तो जीवन एक बड़े युद्ध के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता है। पुराने जमाने के लोग अच्छे नहीं थे, आज के जमाने के लोग बुरे नहीं हो गए हैं। यह भ्रांति है बिल्कुल कि पहले जमाने के लोग अच्छे थे और आज के लोग बुरे हो गए हैं। यह भी भ्रांति है कि पहले जमाने के युवक अच्छे थे और आज के युवक पतित हो गए हैं और चरित्रहीन हो गए हैं। झूठी हैं ये बातें, इनमें कोई भी तथ्य नहीं है। लेकिन एक फर्क जरूर पड़ा है, पुराने जमाने का जवान शिक्षित नहीं था, उसकी महत्वाकांक्षा बहुत कम थी। आज की दुनिया का युवक शिक्षित है, उसकी महत्वाकांक्षा की अग्नि में घी डाला गया है, वह पागल होकर प्रज्ज्वलित हो उठी है। और जितनी जोर से शिक्षा बढ़ती जाएगी उतने ही जोर से यह विक्षिप्तता और पागलपन भी बढ़ता जाएगा। शिक्षा के साथ ही साथ मनुष्य का पागलपन भी विकसित हो रहा है।
अतीत के युग अशिक्षित थे। बेपढ़े-लिखे लोग थे। उनकी महत्वाकांक्षा धीमे-धीमे जलती थी। आज के युग की शिक्षा ने आदमी को उसकी महत्वाकांक्षा को बहुत प्रज्जवलित कर दिया है। पहले कभी कोई एकाध आदमी पागल हो जाता था और सिकंदर बनने की कोशिश करता था। अब सब आदमी पागल हैं, और सभी सिकंदर होना चाहते हैं। और हम उन्हें सिकंदर और पागल बनाने की कोशिश को ही शिक्षा का नाम देते हैं।
मैंने पुरानी से पुरानी किताबें देखी हैं और मैं देख कर हैरान हो गया। चीन में संभवतः दुनिया की सबसे पुरानी किताब है, जो कोई साढ़े छह हजार वर्ष पुरानी है। और उस किताब की भूमिका में लिखा हुआ है कि आजकल के लोग बिल्कुल बिगड़ गए हैं, पहले के लोग बहुत अच्छे थे। मैं बहुत हैरान हुआ। वह भूमिका इतनी मॉडर्न मालूम पड़ती है, ऐसा मालूम पड़ती है कि आजकल के किसी लेखक ने किताब लिखी हो। साढ़े छह हजार वर्ष पहले कोई लिखता है कि आजकल के लोग बिगड़ गए, पहले के लोग अच्छे थे। ये पहले के लोग कब थे? आज तक जमीन पर एक भी किताब ऐसी नहीं है, जिसमें यह लिखा हो, आजकल के लोग अच्छे हैं। एक भी किताब ऐसी नहीं है जिसमें यह लिखा होः आजकल के लोग अच्छे हैं। हर किताब कहती है, पहले के लोग अच्छे थे। यह पहले की बात बिल्कुल मिथ्य है। बिल्कुल असत्य है।
अगर पहले के लोग अच्छे थे, तो ढाई हजार वर्ष पहले बुद्ध ने किन लोगों
को सिखाया कि चोरी मत करो, झूठ मत बोलो, हिंसा मत करो? किन लोगों को सिखाईं

ये बातें? अगर पहले के लोग अच्छे थे, तो महाभारत कौन करता था? और सीता को कौन चुरा ले जाता था? और अगर पहले के लोग अच्छे थे, तो दुनिया में ये जो टीचर्स हुए जीसस क्राइस्ट, कृष्ण और बुद्ध और कनफ्यूशियस, इन्होंने किन लोगों के सामने अपनी बातें समझाईं। ये किनके लिए रोते रहे, इनके हृदय में किन के लिए वेदना थी? ये किनसे कहते रहे कि तुम अच्छे हो जाओ? या तो ये सारे लोग पागल थे, लोग अच्छे ही थे और ये व्यर्थ उपदेश दिए जाते थे? अगर यहां सभी लोग सच बोलने वाले हों और मैं आकर समझाने लगूं कि आपको सच बोलना चाहिए, तो लोग हंसेंगे कि आप किसको समझा रहे हैं? यहां सभी लोग सच बोलते ही हैं। दुनिया भर के शिक्षकों की शिक्षाएं ये कहती हैं कि लोग कभी भी अच्छे नहीं थे। जो फर्क पड़ा है वह इस बात में नहीं पड़ा है कि लोग बुरे हो गए हैं। फर्क यह पड़ा है कि बुरे लोग शिक्षित हो गए हैं। बुरे लोग शिक्षित हो गए हैं। और शिक्षा ने बुरे लोगों को अपनी बुराई को बचाने के लिए कवच का रूप ले लिया है। शिक्षा उनकी बुराई को बचाने का माध्यम हो गई है। शिक्षा उनकी बुराई को बढ़ाने का माध्यम हो गई है। शिक्षा उनकी बुराई की जड़ों में पानी डालने का कारण बन गई है। लोग बुरे नहीं हो गए, लेकिन बुरे लोग ज्यादा सबल और ज्यादा शक्तिवान हो गए हैं। और उनके हाथ में शिक्षा ने बड़े अस्त्र-शस्त्र दे दिए हैं। एक बुरा आदमी हो और उसके पास तलवार न हो, और एक बुरा आदमी हो और उसके हाथ में एटम बम आ जाए। तो जिसके हाथ में एटम बम है, वह बहुत बड़ी बुराई कर सकेगा। और शायद हम सोचेंगे जिनके पास एटम बम नहीं था, वे बड़े अच्छे लोग थे। उनके हाथ में जो था, पत्थर थे तो उन्होंने पत्थर फेंके थे। और एटम बम उनके हाथ में आ गया तो वे एटम बम फेंक रहे हैं। फेंकने वाले वही के वही हैं, केवल फेंकने वाली चीज की ताकत बढ़ गई है। आदमी शिक्षित हुआ है, और शिक्षा गलत है। आदमी बुरा हमेशा से था। बुराई के ऊपर और शिक्षा ने हजार गुनी ताकत दे दी है। कहते हैं न, करेला नीम पर चढ़ जाए तो और कड़वा हो जाता है। बुरा आदमी शिक्षा की नीम पर चढ़ गया। करेला तो पहले से ही था। और शिक्षा की नीम ने और कड़वा कर दिया।
यह शिक्षा जो हम आदमी को आज तक दिए हैं, और यह भी मत सोचना कि आज की शिक्षा ही गलत है, आज तक की सारी शिक्षा गलत रही है। यह भी मत सोचना की आज की ही शिक्षा गलत है, और यह पश्चिम के लोगों ने आकर शिक्षा गलत कर दी, भूल कर मत सोचना। शिक्षा हमेशा गलत रही है। और यह भी मत सोचना कि विद्यार्थी ही गलत हो गए हैं, विद्यार्थी और गुरु हमेशा से सभी गलत रहे हैं। द्रोणाचार्य का नाम हम भलीभांति जानते हैं। अपने एक अमीर शिष्य के पक्ष में एक गरीब शूद्र का अंगूठा काट लाए थे। वे गुरु थे। एकलव्य से इसलिए अंगूठा मांग लिया था कि अंगूठा दे दे तू, क्योंकि एकलव्य था शूद्र और गरीब और दरिद्र, और अर्जुन था, धनपति, सम्राट, राजकुमार। अगर एकलव्य धनुर्विद्या में बड़ा हो जाए, तो अर्जुन को कोई पूछेगा नहीं दुनिया में। तो उस गरीब शूद्र लड़के से अंगूठा कटवा लिया। ताकि अमीर शिष्य आगे बढ़ जाए। पहले से ही गुरु गरीब शिष्यों के अंगूठे काटते रहे हैं। कोई आज की बात नहीं है। लेकिन एक फर्क पड़ गया, एक फर्क पड़ गया। पुराना एकलव्य सीधा-साधा था, उसने अंगूठा दे दिया था। नये एकलव्य अंगूठा देने से इनकार कर रहे हैं। वे कहते हैं, हम अंगूठा नहीं देंगे। और वे कहते हैं, ज्यादा कोशिश की तो हम तुम्हारे अंगूठे काट लेंगे। यह फर्क पड़ गया है। इसके अतिरिक्त और कोई फर्क नहीं पड़ा है।
यह जो स्थिति है, यह जो आदमी की आज की दशा है, यह जो चिंता प्रकट होती है, सब तरफ कि विद्यार्थी आग लगा रहे हैं, पत्थर फेंक रहे हैं, मकान तोड़ रहे हैं यह कोई सामान्य घटना नहीं है। और यह घटना आज के विद्यार्थियों भर से संबंधित नहीं है। यह पांच हजार वर्षों का युवकों का रोष है जो इकट्ठा होकर क्लाइमेक्स पर पहुंच गया है। यह पांच हजार वर्ष की गलत शिक्षा का अंतिम फल है। यह पांच हजार वर्षों के शोषण, यह पांच हजार वर्षों के दमित युवक के मन की पीड़.ा और वेदना है। और आज उसने वह जगह ले ली है कि अब उस वेदना को कोई ठीक मार्ग नहीं मिल रहा है तो वह गलत मार्गों से प्रकट हो रही है। असल बात यह है कि युवक न तो मकान तोड़ना चाहते हैं, कौन पागल होगा जो मकान तोड़ेगा? क्योंकि मकान अंततः किसके टूटते हैं? बूढ़ों के नहीं टूटते, हमेशा युवकों

के ही टूटते हैं। क्योंकि बूढ़े कल विदा हो जाएंगे। मकान युवकों के हाथ में पड़ने हैं। लेकिन मकान तोड़ने से कौन मकान तोड़ना चाहता है? कौन कांच तोड़ना चाहता है? कौन बसें जलाना चाहता है? कोई नहीं जलाना चाहता। शायद मन के भीतर किन्हीं और चीजों को जलाने की तीव्र भावना पैदा हो गई है, और समझ में नहीं आ रहा हम किस चीज को जलाएं तो हम किसी भी चीज को जला रहे हैं। सारे अतीत को जलाने का खयाल आज की मनुष्य आत्मा के भीतर पैदा हो रहा है। और समझ में नहीं आ रहा कि हम क्या जलाएं? हम क्या करें? हम क्या तोड़ दें? कोई चीज तोड़ने जैसी हो गई है। कोई चीज मिटाने जैसी हो गई है। कोई चीज बिल्कुल जलाने जैसी हो गई है। हर युग को कुछ चीजें जला देनी पड़ती हैं ताकि वह अतीत से मुक्त हो जाए और आगे बढ़ जाए। ताकि वह परंपराओं से मुक्त हो जाए और जीवन गतिमान हो सके। नदी जब समुद्र की और दौड़ती है, तो न मालूम कितने पत्थर तोड़ने पड़ते हैं। कितने मार्ग की बाधाएं हटानी पड़ती हैं? कितने दरख्तों को गिरा देना पड़ता है? तब कहीं रास्ता बनता है और नदी समुद्र तक पहुंचती है। हजारों-हजारों साल से मनुष्य की चेतना को रोकने वाली बहुत सी चीजें पत्थरों की दीवाल की तरह खड़ी हैं। आज तक आदमी ने विचार नहीं किया उन्हें तोड़ डालने का। लेकिन ऐसे, जैसे मनुष्य की चेतना में समझ, बोध, विचार का जन्म हो रहा है, वैसे-वैसे एक तीव्र वेदना, एक तीव्र आंदोलन सारे जगत में प्रकट हो रहा है। युवक नासमझ है, वह कुछ भी तोड़ने को लग गया है। लेकिन मुझे बड़ी खुशी मालूम होती है और मेरे हृदय में बड़ा स्वागत है। कम से कम उसने तोड़ना तो शुरू किया है। आज गलत चीजें तोड़ता है, कल हम ठीक चीजें तोड़ने के लिए उसे राजी कर लेंगे। अभागे तो वे युवक थे जिन्होंने कभी कुछ तोड़ा ही नहीं। तोड़ने की सामर्थ्य एक बार पैदा हो जाए, तो तोड़ने की शक्ति को दिशा दी जा सकती है। एक बार विध्वंस की शक्ति आ जाए, तो उस शक्ति को सृजनात्मक बनाया जा सकता है, उसे क्रिएटिव बनाया जा सकता है। क्योंकि स्मरण रहे, जो लोग तोड़ ही नहीं सकते वे बना भी नहीं सकते हैं। और खयाल रहे, सृजन का पहला सूत्र विध्वंस है, बनाने के पहले तोड़ देना पड़ता है।
एक गांव था और उस गांव में एक बहुत पुराना चर्च था। वह चर्च इतना पुराना हो गया था, जैसे कि सभी चर्च पुराने हो गए हैं, सभी मंदिर पुराने हो गए हैं। वह बहुत पुराना हो गया था। उसकी दीवालें इतनी जरा-जीर्ण हो गई थीं कि उस चर्च के भीतर भी जाना खतरनाक था, वह किसी भी क्षण गिर सकता था। आकाश में बादल आ जाते थे और आवाज होती थी, तो चर्च कंपता था। हवाएं चलती थीं, तो चर्च कंपता था। हमेशा डर लगता था कि चर्च कब गिर जाएगा? चर्च में जाना तो दूर, पड़ोस के लोगों ने भी पड़ोस में रहना छोड़ दिया था। चर्च किसी भी दिन गिर जाएगा और प्राण ले लेगा। लेकिन चर्च के संरक्षक गांव भर में प्रचार करते थे कि आप लोग चर्च क्यों नहीं चलते हैं? क्या अधार्मिक हो गए हैं आप? क्या ईश्वर को नहीं मानते हैं? लेकिन कोई भी इस बात को नहीं पूछता था कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि चर्च बहुत पुराना हो गया है और उसके नीचे केवल वे ही जा सकते हैं जिनकी कब्र में जाने की तैयारी है, जो बिल्कुल बूढ़े हो गए हैं, जिनको अब मरने से कोई डर नहीं है। जवान उस चर्च में नहीं जा सकते जो इतना गिरने के करीब है।
आखिर संरक्षक घबड़ा गए। और उन्होंने एक कमेटी बुलाई और उन्होंने सोचा
कि अब अगर कोई आता ही नहीं इस पुराने चर्च में, तो उचित होगा कि हम नया चर्च बना लें। तो उन्होंने चार प्रस्ताव पास किए उस कमेटी ने। वह जरा गौर से सुन लेना। क्योंकि उनका बड़ा अर्थ है। उन्होंने चार रिजोल्यूशंस लिए। पहला संकल्प और पहला प्रस्ताव उन्होंने यह किया, सर्व सम्मति से उन्होंने यह तय किया कि पुराने चर्च को गिरा देना चाहिए। और सबने कहा कि बिल्कुल ठीक है, सब स्वीकृति से इसको राजी हो गए। दूसरा प्रस्ताव उन्होंने यह किया कि हमें इसकी जगह एक नया चर्च बनाना चाहिए। लेकिन ठीक उसी जगह जहां पुराना चर्च खड़ा है, और ठीक वैसा ही, जैसा पुराना चर्च है। इस पर भी सभी लोग राजी हो गए। तीसरा उन्होंने प्रस्ताव यह किया कि हमें पुराना चर्च में जो-जो समान लगा है उसी सामान से नया चर्च बनाना है, दरवाजे भी वही, ईंटें भी वही, पुराने चर्च के सारे सामान से ही नया चर्च बनाना है। इस पर भी सभी लोग राजी हो गए। और चौथा प्रस्ताव उन्होंने यह पास किया कि जब तक नया चर्च न बन जाए,

तब तक पुराना गिराना नहीं है। वह चर्च अभी भी खड़ा हुआ है। वह हमेशा खड़ा रहेगा। वह कभी नहीं गिर सकता। क्योंकि वे प्रस्ताव पास करने वाले बड़े होशियार थे।
आदमी की जिंदगी पर भी पुराने चर्चां का बहुत भार है, पुरानी परंपराओं
का पुराने मंदिरों का, पुराने शास्त्रों का, पुराने लोगों का। अतीत जकड़े हुए है, मनुष्य के भविष्य को। पीछे की तरफ हमारी टांगें कसी हुई हैं किन्हीं जंजीरों से, और आगे की तरफ हम मुक्त नहीं हो पाते। तो प्राण तड़फड़ा उठते हैं कि तोड़ दें सब, और जब कोई उत्सुक हो जाता है तोड़ने को तो यह भूल जाता है कि हम क्या तोड़ रहे हैं? युवक तोड़ रहे हैं, यह तो खुशी की और स्वागत की बात है। लेकिन गलत चीजें तोड़ रहे हैं, यह दुख की बात है। कुछ और जरूरी चीजें हैं जो तोड़नी चाहिए। लेकिन मैं तुमसे कहूं, तुम्हारे मुल्क के नेता और तुम्हारे मुल्क के अगुवा यही चाहते हैं कि तुम गलत चीजें तोड़ते रहो, ताकि तुम्हें कहीं ठीक चीजें तोड़ने का खयाल न आ जाए। वे यही चाहते हैं। यद्यपि वे तुम्हें समझाएंगे कि चीजें मत तोड़ो, बस में आग मत लगाओ, मकान मत जलाओ, वे तुम्हें समझाएंगे कि तुम यह बहुत बुरा कर रहे हो, लेकिन हृदय के बहुत गहरे कोने में वे यही चाहते हैं कि तुम्हारा मन व्यर्थ की चीजें तोड़ने में लगा रहे, ताकि सार्थक चीजों को तोड़ने की तरफ तुम्हारा खयाल न चला जाए। इसलिए जब तुम गलत चीजें तोड़ रहे हो तो यह मत सोचना कि तुम कोई ऐसा काम कर रहे हो, जिससे जिंदगी बनेगी। तुम गलत लोगों के हाथ में खेल रहे हो, इसका तुम्हें पता नहीं है। वे लोग जो मुल्क के माइंड को डिस्ट्रेक्ट करना चाहते हैं, जो मुल्क के माइंड को, मुल्क के मस्तिष्क को गलत चीजों में उलझा देना चाहते हैं, वे तुम्हारे नेता हैं। और इस बात में जो तुम्हें फर्क दिखाई पड़ेगा, बहुत गहरे तल में, बहुत गहरी चालाकी है इस बात के पीछे हमेशा, हमेशा अगर लोगों को गलत चीजों में उलझा दिया जाए, तो ठीक चीजें तोड़ने से उन्हें रोका जा सकता है। उनकी ताकत व्यर्थ की चीजों को नष्ट करने में समाप्त हो जाती है। और न केवल ताकत समाप्त हो जाती है बल्कि व्यर्थ चीजें तोड़ कर वे खुद पश्चात्ताप से, रिपेंटेंस से भर जाते हैं। और तब उनकी तोड़ने की हिम्मत क्षीण हो जाती है। उनका अंतःकरण कहने लगता है गलत चीजें, यह गलत हो रहा है सब। उनके पास भी यह आत्मबल नहीं होता कि वे यह कह सकें कि हमने इस बस में आग लगाई है, तो कुछ ठीक किया है। उनके पास यह आत्मबल नहीं हो सकता है। तो उनका आत्मबल क्षीण होता है, गलत चीजें टूटने से कुछ बिगड़ता नहीं, और उनका आत्मबल नष्ट होता है। और उनकी तोड़ने की क्षमता नष्ट होती है। और उनके तोड़ने की शक्ति व्यर्थ की चीजों में उलझ कर समाप्त हो जाती है। और उनसे ज्यादा से ज्यादा खतरा तभी तक होता है जब तक वे विश्वविद्यालय में पढ़ रहे हैं। उसके बाद उनसे कोई खतरा नहीं होता क्योंकि उनकी पत्नियां और उनके बच्चे, उनके सारे खतरों के लिए शॉक-एब्जार्वर्स का काम करने लगते हैं। फिर उनसे कोई खतरा नहीं। एक बार उनकी शादी हो जाए फिर उनसे कोई खतरा नहीं।
और मैं आपसे यह भी कह देता हूं, जैसा मैंने आपसे कहा कि युवक शिक्षित
हो गया है, इसलिए खतरा बढ़ा है। दूसरी बात, शादी की उम्र बड़ी हो गई है, इससे खतरा बढ़ा है। क्योंकि शादी बहुत पुराने दिनों से आदमी के भीतर विद्रोह की क्षमता को तोड़ने का काम करती रही। वह जो रिबेलियस स्प्रिट है, उसको नष्ट करने का काम करती रही। पुराने लोग इस मामले में बड़े होशियार थे। दस-बारह साल के लड़के और लड़कियों को विवाहित कर देते थे, और उसके बाद उनसे विद्रोह की कोई संभावना नहीं रह जाती थी। वे उसी वक्त से बूढ़े होने शुरू हो जाते थे, असल में वे जवान हो नहीं पाते थे।
सारी दुनिया में शिक्षा के साथ दूसरा तत्वः विवाह की उम्र लंबी हो गई है। चौबीस वर्ष और बीस वर्ष तक युवक और युवतियां अविवाहित हैं। ये दिन विद्रोह के, क्षमता के विकसित होने के क्षण हैं। उनके ऊपर कोई बंधन नहीं है। ये क्षण हैं जब वे विद्रोह में सोच सकते हैं, जब उनकी आत्मा किन्हीं चीजों को गलत कह सकती है।
अमरीका के मनोवैज्ञानिकों ने सलाह दी है कि अमरीका में फिर छोटी उम्र में शादी शुरू कर देनी चाहिए, अगर युवकों को बचाना है कि चीजों को ता.ेड न दें, तो उनकी शादी जल्दी हो जानी चाहिए। क्योंकि तब उनकी सारी ताकत नून,

तेल, लकड़ी को जुटाने में समाप्त हो जाती है। फिर उनसे कुछ भी नहीं हो सकता। जवानी में वे नून, तेल, लकड़ी जुटाते हैं, बुढ़ापे में स्वर्ग, परलोक वगैरह की व्यवस्था के लिए भजन-कीर्तन करते हैं। फिर उनसे कोई विद्रोह नहीं हो सकता। विद्रोह के क्षण हैं उनके पच्चीस वर्ष से पहले के क्षण। दुनिया में जो इतनी चीजें टूट रही हैं, उसके पीछे यह कारण है। और लेकिन मेरे मन में इससे दुख नहीं है कि चीजें टूट रहीं हैं, मैं तो मानता हूं ये बड़े शुभ लक्षण हैं, ये बड़े शुभ समाचार हैं। दुख इस बात का है कि गलत चीजें टूट रही हैं। बहुत और जरूरी चीजें हैं जिन्हें तोड़ देना चाहिए। और उन जरूरी चीजों में से पहली चीज है और वह यह है कि हमें उस दुनिया को जो महत्वाकांक्षा के आधार पर खड़ी है, बदल देना चाहिए। एंबीशन के आधार पर खड़ी हुई दुनिया को तोड़ देना चाहिए। और एक नॉन-एंबीशियस, एक गैर-महत्वाकांक्षी समाज का निर्माण करना चाहिए। यह क्यों? यह इसलिए कि महत्वाकांक्षा के आधार पर खड़ा हुआ जगत हिंसा और दुख और पीड़ा का ही जगत हो सकता है। उसमें न तो प्रेम हो सकता है, न आनंद हो सकता है, न शांति हो सकती है।
महत्वाकांक्षा का अर्थ क्या होता है?
महत्वाकांक्षा का अर्थ होता है दूसरे से आगे निकल जाने की होड़। बचपन
से हमें यही सिखाया जाता है, पहली कक्षा से यही सिखाया जाता है कि दूसरों से आगे निकल जाओ। प्रथम आ जाओ, प्रथम आना ही एकमात्र वैल्यू, एकमात्र मूल्य है। जो युवक प्रथम आ जाएगा, जो बच्चा पहला आ जाएगा, वह पुरस्कृत होगा, सम्मानित होगा। जो पीछे छूट जाएंगे, वे अपमानित हो जाएंगे। यह दुनिया इतनी उदास कभी न होती, लेकिन हमें पता ही नहीं है कि हम कैसी साइकोलॉजिकल फाउंडेशंस रख रहे हैं मनुष्य के लिए।
एक स्कूल में अगर हजार बच्चे पढ़ते हैं, तो कितने बच्चे प्रथम आएंगे?
दस बच्चे प्रथम आएंगे। और नौ सौ नब्बे बच्चे पीछे रह जाएंगे। दुनिया कौन बनाता है? प्रथम आने वाले लोग दुनिया बनाते हैं? या हारे हुए, पीछे रह जाने वाले लोग दुनिया बनाते हैं? दुनिया किनसे बनती है? दुनिया के संगठक कौन हैं? दुनिया के संगठक हैं, पराजित लोग; हारे हुए लोग; दुखी लोग जो प्रथम नहीं आ सके, वे लोग। और जब पहली ही कक्षा से किसी बच्चे को निरंतर-निरंतर पीछे रहना पड़ता है, उसके जीवन में आत्मग्लानि, इनफीरियरिटी, हीनता, दीनता सब पैदा हो जाती है। ये दीन-हीन लोग दुनिया के संगठक हैं, इनकी बड़ी संख्या होगी। ये दुनिया को बनाएंगे जिनको जीवन ने कोई सम्मान नहीं दिया, कोई आदर नहीं दिया। आप कहेंगे कि कौन इन्हें रोकता था? ये भी प्रथम आ सकते थे। ठीक कहते हैं आप, कोई इन्हें नहीं रोकता था। ये भी प्रथम आ सकते थे। लेकिन तीस लड़कों में कोई भी प्रथम आए, एक ही लड़का प्रथम आएगा, उनतीस हमेशा पीछे रह जाएंगे। उन्तीस दुखी होंगे। एक प्रसन्न होगा। कोई भी एक प्रसन्न हो यह सवाल नहीं है कि कौन एक प्रसन्न होता है? लेकिन उनतीस दुखी होंगे। उनतीस के दुख पर एक व्यक्ति का सुख निर्भर होगा। और ये उन्तीस बच्चे दुख लेकर जीवन में प्रविष्ट होंगे। हारे हुए लोग, पराजित लोग। एंबीशन ने सारी दुनिया को दीन-हीन बना दिया है।
एक ऐसा समाज और एक ऐसी शिक्षा और एक ऐसी संस्कृति चाहिए, जहां प्रथम आने के पागलपन से आदमी का छुटकारा हो गया हो। नहीं तो दुनिया में युद्ध नहीं रुक सकते। क्रोध नहीं रुक सकता। फ्रस्ट्रेशन नहीं रुक सकता। और जब कोई आदमी बहुत क्रोध, और दुख, और विषाद से भर जाता है, तो सारी दुनिया से बदला लेता है। सारी दुनिया से बदला लेता है, इस बात का कि मुझे दुख दिया है, इस दुनिया ने। मुझे कोई सम्मान नहीं दिया, मुझे कोई पुरस्कार नहीं दिए, मुझे कोई आदर नहीं दिया, मुझे कोई पदवियां नहीं दीं। वह सारी दुनिया के प्रति क्रुद्ध हो उठता है। क्रोध से भर जाता है। यह क्रोध निकल रहा है सब तरफ से बह-बह कर।
मेरी दृष्टि में क्या ऐसा नहीं हो सकता है कि हम एक ऐसी शिक्षा विकसित करें जो व्यक्ति को प्रतिस्पर्धा में नहीं आत्म-परिष्कार में ले जाती हो। ये दोनों बातों में भेद है। इस सूत्र को ठीक से समझ लेना जरूरी है। एक स्थिति तो यह है कि मैं दूसरे लोगों से आगे निकलने की कोशिश करूं और दूसरी स्थिति यह है कि मैं रोज अपने आप से आगे निकलने की कोशिश करूं। मैं जहां कल

था आज उससे आगे बढ़ जाऊं। मेरी तुलना मेरे अतीत से हो, किसी पड़ोसी से नहीं। मैं रोज खुद को पार करूं, खुद को अतिक्रमण करूं। कल सूरज ने मुझे जहां छोड़ा था डूबते वक्त आज का उगता सूरज मुझे वहीं न पाए, मैं आगे बढ़ जाऊं। कल रात सूरज विदा हुआ था, खेतों में जो पौधे लगे थे, आज सुबह उनको वहीं नहीं पाएगा, वे आगे बढ़ गए हैं। लेकिन किससे आगे बढ़ गए हैं, किसी दूसरे से? अपने से आगे बढ़ गए हैं। किसी दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है। प्रकृति में। सारी प्रकृति किसी दूसरे से प्रतिस्पर्धा में नहीं है, सिवाय मनुष्य को छोड़ कर।
एक गुलाब का फूल खिल रहा है एक बगिया में, उसे कोई प्रतिस्पर्धा नहीं
है कि चमेली का फूल कैसा खिला है और कमल का फूल कैसा खिला है? गुलाब का फूल खिल रहा है अपनी खुशी में। उसकी फ्लॉवरिंग उसकी अपनी आंतरिक है। आदमी भर के फूल गड़बड़ हो गए हैं। वह हमेशा दूसरे की तरफ देख रहे हैं कि दूसरे के खिलने से मैं कितना आगे निकलता हूं या कितना पीछे रह जाता हूं? अपनी खुद की सेल्फ फ्लॉवरिंग का कोई खयाल ही नहीं है।
इससे एक पागलपन पैदा हो रहा है। वह पागलपन ऐसा है कि अगर मैं किसी बगिया में चला जाऊं और गुलाब को कहूं कि तू पागल गुलाब ही होकर नष्ट हो जाएगा, कमल नहीं होना है? कमल का फूल बड़ा शानदार होता है, कमल हो जा! पहली तो बात यह है कि गुलाब मेरी बात ही नहीं सुनेगा, वह हवाओं में डोलता रहेगा, मेरी बात उसे सुनाई नहीं पड़ेगी, क्योंकि फूल आदमियों जैसे नासमझ नहीं होते कि किसी ने भी बुलाया और सुनने को आ गए। फूल इतने नासमझ होते ही नहीं कि सुनने को राजी हो जाएं। फूल सुनेगा नहीं। लेकिन हो भी सकता है आदमियों के साथ रहते-रहते बीमारियां फूलों को भी लग सकती हैं। बीमारियां संक्रामक होती हैं। बीमारियां छूत की होती हैं। हो सकता है आदमी की बगिया में लगे- लगे फूलों में भी गड़बड़ आ गई हो, वे भी उपदेश सुनने लगे हों। तो मेरी बात अगर वह फूल मान लेगा तो फिर क्या होगा? उस गुलाब के फूल को अगर मेरी बात पकड़ गई, यह फीवर पकड़ गया कि मुझे कमल का फूल हो जाना है या कमल के फूल से आगे निकल जाना है, पागल हो जाएगा वह गुलाब का पौधा, फिर उसमें फूल पैदा नहीं होंगे। क्योंकि गुलाब में गुलाब ही पैदा हो सकते हैं, कमल पैदा नहीं हो सकता। यह उसकी इनहेरेंट पॉसिबिलिटी है। यह उसकी आंतरिक व्यवस्था है, वह नहीं कुछ और हो सकता। फूल गुलाब ही हो सकता है। चमेली चमेली ही हो सकती है। चंपा चंपा हो सकती है। घास का फूल घास का फूल हो सकता है। कमल का फूल कमल का फूल हो सकता है। लेकिन अगर यह पागलपन चढ़ जाए कि चंपा चमेली होने की कोशिश करे, गुलाब कमल होने की, फिर उस बगिया में फूल पैदा होने बंद हो जाएंगे। गुलाब कमल तो हो ही नहीं सकता, लेकिन कमल होने की कोशिश में गुलाब भी नहीं हो सकेगा। आदमी की बगिया में फूल इसीलिए पैदा होने बंद हो गए हैं। कांटे ही कांटे पैदा होते हैं, फूल पैदा होते ही नहीं। क्योंकि कोई आदमी स्वयं होने की कोशिश में नहीं है। हर आदमी कोई और होने की कोशिश में है, किसी और को पार करने की चेष्टा में लगा हुआ है। हर आदमी, खुद होने का ख्याल ये शिक्षा नहीं देती। हमारी शिक्षा कहती है, देखो वह आदमी आगे निकल गया। तुमको भी वैसा हो जाना, देखो वह आदमी दिल्ली पहुंच गया, तुमको भी दिल्ली पहुंच जाना है। देखो वह आदमी पहुंचा जा रहा है आगे, तुम कहां पीछे रहे जाते हो? दौड़ो। सब तरफ से महत्वाकांक्षा पैदा की जाती है, पोलिटिकली, रिलीजियसली। राजनैतिक रूप से महत्वाकांक्षा पैदा करते हैं कि देखो राधाकृष्णन स्कूल के शिक्षक थे, वे राष्ट्रपति हो गए। अब सारे शिक्षकों में आग पैदा करो कि तुम भी दौड़ो और राष्ट्रपति हो जाओ। तुम भी पागल हो जाओ, कि देखो राधाकृष्णन शिक्षक था, राष्ट्रपति हो गया। सब शिक्षक शिक्षक-दिवस मनाओ कि बड़े सम्मान की बात हुई कि एक शिक्षक राष्ट्रपति हो गया।

मैं भी एक शिक्षक दिवस पर... भूल से मुझे बोलने के लिए बुला लिया था। भूल से कोई बुला लेता है, बोलने के लिए, तो मैंने उन शिक्षकों को कहा कि मित्रो, अभी शिक्षक-दिवस मनाने का वक्त नहीं आया। एक शिक्षक राष्ट्रपति हो जाए इसमें शिक्षकों का कौन सा सम्मान है? जिस दिन कोई राष्ट्रपति कहे कि मैं स्कूल में आकर शिक्षक होना चाहता हूं, उस दिन सम्मान समझना। उस दिन

शिक्षक-दिवस मनाना। उस दिन कहना कि हम धन्य हुए, एक राष्ट्रपति ने कहा है कि हम शिक्षक होने को तैयार हैं। लेकिन एक शिक्षक राष्ट्रपति होना चाहे इसमें शिक्षक का क्या सम्मान है? इसमें राजनीतिज्ञ का सम्मान है, पद का सम्मान है, दिल्ली का सम्मान है, राज्य का सम्मान है। इसमें शिक्षक का कौन सा सम्मान है?
तो हम कहते हैं, देखो, वह यह हुआ जा रहा है, तुम भी दौड़ो। राजनैतिक रूप
से हम आदमी को फीवर से भरते हैं, ज्वर से भरते हैं, दौड़ो, आगे दौड़ो; दूसरे को पीछे छोड़ो और आगे बढ़ जाओ। ऐसे ही हम धार्मिक रूप से, नैतिक रूप से लोगों को सिखलाते हैं, गांधी बन जाओ, बुद्ध बन जाओ, महावीर बन जाओ। झूठी बातें हैं, पाय.जन, जहर फैला रहे हैं आदमियों के दिमाग में। कोई आदमी कभी गांधी बन सकता है? कोई आदमी कभी बुद्ध बन सकता है? और बन सके तो भी बनने की जरूरत कहां है? एक आदमी काफी है अपने जैसा। दूसरे आदमी को वैसा होने की कोई जरूरत नहीं है।
परमात्मा नासमझ नहीं है, नहीं तो एक ही जैसे आदमी पैदा कर देता। एक गांव में अगर एक ही जैसे बीस हजार गांधी हों तो, उस गांव की मुसीबत समझ सकते हैं। उस गांव में इतनी बोर्डम पैदा हो जाएगी, इतनी घबड़ाहट पैदा हो जाएगी कि लोग आत्महत्या कर लेंगे, जीना मुश्किल हो जाएगा। एक गांधी बहुत प्यारे हैं। एक बुद्ध बहुत अदभुत, एक राम बहुत शानदार, एक कृष्ण बेमुकाबला, कोई मुकाबला नहीं है उनका। बड़े खूबी के लोग हैं। लेकिन अगर एक ही जैसे, एक गांव में एक ही जैसे राम ही राम धनुषबाण लिए हुए खड़े हैं, तो हो गई कठिनाई। रामलीला कर रहे हों तब तो ठीक है, लेकिन अगर असली मामला हो तो बहुत गड़बड़ है।
कोई आदमी दुबारा दोहराए जाने की जरूरत नहीं है। रिपीटीशन की कोई जरूरत नहीं है। हर आदमी खुद होने को पैदा होता है, कोई और होने को पैदा नहीं होता। लेकिन अब तक हम, शिक्षक को, शिक्षा को इस बात के लिए राजी नहीं कर पाए कि हम बच्चों से कह सकें कि तुम कुछ और होने की कोशिश मत करना, तुम खुद हो जाना। जीवन में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात है, वह है टू बी वन सेल्फ। स्वयं होने की क्षमता को उपलब्ध हो जाना। और जो आदमी दूसरे जैसे होने की कोशिश करेगा, उस आदमी का पागल हो जाना सुनिश्चित है। क्योंकि दूसरा वह हो नहीं सकता। इसलिए दुनिया में जितनी यह शिक्षा बढ़ती है, आदर्श बढ़ते हैं, उतना ही पागलपन बढ़ता है। इसमें किसी और का कसूर नहीं, शिक्षा बुनियादी रूप से गलत है। जितना आदमी शिक्षित होता है उतना दूसरे होने की दौड़ में लग जाता है कि मैं कोई और हो जाऊं, कोई बन जाऊं, मैं कुछ और हो जाऊं। खुद से, स्वयं से, उसकी कोई तृप्ति नहीं होती, वह कोई और होना चाहता है। जब भी कोई आदमी कोई और होना चाहता है तब उस आदमी में आत्मच्युत, वह आदमी अपने होने से च्युत हो जाता है, वह मार्ग से भटक जाता है। वह कुछ और होने की दौड़ में जो हो सकता था नहीं हो पाता है और तब, तब जीवन में दुख और पीड़ा पैदा होती है।
अगर कोई पूछे कि पागलपन की क्या परिभाषा है? मेडनेस का क्या मतलब है?
तो मेरी दृष्टि में पागल होने की एक ही परिभाषा है, जो आदमी स्वयं से भिन्न हो जाता है, वह आदमी पागल है। और जो आदमी स्वयं हो जाता है, वह आदमी स्वस्थ है। टू बी वन सेल्फ इ.ज टू बी हेल्दी। बस और कोई स्वास्थ्य का मतलब नहीं होता। हिंदी का जो शब्द है "स्वास्थ्य" वह तो शब्द भी बड़ा अदभुत है। स्वास्थ्य का मतलब होता हैः स्वयं में स्थित। जो स्वयं में खड़ा हो गया वह स्वस्थ है। स्वस्थ का मतलब हैः जो स्वयं में खड़ा हो गया। और वह अस्वस्थ है जो स्वयं से भटक गया। यहां-वहां चला गया। हम सारे लोग स्वयं से भटकाए जा रहे हैं। हम स्वयं में स्थित होने के लिए दीक्षित नहीं किए जा रहे। इससे एक विक्षिप्तता पैदा हो रही है, एक पागलपन पैदा हो रहा है।
नेहरू जब तक जिंदा थे हिंदुस्तान में दस-पच्चीस लोग थे जिनको यह खयाल पैदा हो गया था कि हम नेहरू हैं। मेरे ही छोटे से गांव में एक आदमी थे उनको यह वहम पैदा हो गया था कि वे जवाहरलाल नेहरू हैं। बंबई तो बहुत बड़ी जगह है, यहां तो कई को हो गया होगा। नेहरू एक पागलों की जेल को देखने गए थे, एक पागल वहां स्वस्थ हो गया था। ऐसा मुश्किल से होता है, स्वस्थ तो अक्सर पागल

होते हैं, लेकिन पागल कभी स्वस्थ नहीं होता। लेकिन ऐसी दुर्घटना वहां घट गई थी, एक्सीडेंट हो गया था। एक पागल वहां ठीक हो गया था। और नेहरू उसको देखने गए थे, पागलखाने को। तो पागलखाने के अधिकारियों ने सोचा कि नेहरू के हाथ से ही उसको पागलखाने से छुटकारा और मुक्ति दिलवाई जाए। नेहरू भी बहुत खुश थे, उन्होंने कहा, ये आदमी ठीक हो गया। उससे मिलवाया। उससे पूछा नेहरू ने कि तुम ठीक हो गए हो? उसने कहा मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं। तीन साल पहले मैं बिल्कुल पागल था। आप कौन हैं महाशय? तो नेहरू ने कहाः मुझे नहीं जानते? मैं जवाहरलाल नेहरू हूं। वह आदमी खूब हंसने लगा और उसने कहाः तीन साल आप भी यहां रह जाएं तो ठीक हो जाएंगे। तीन साल पहले मुझे भी यही खयाल पैदा हो गया था कि मैं जवाहरलाल नेहरू हूं। तीन साल में मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं।
यह जो, जब भी किसी आदमी को यह खयाल पैदा हो जाता है कि मैं कोई और हूं,
तो समझ लेना कि पागल हो गया है। और जब भी कोई आदमी इस कोशिश में लग जाता है कि मैं कोई और हो जाऊं तो समझ लेना पागलपन की यात्रा शुरू हो गई है। इस शिक्षा ने मैनकाइंड को मैडकाइंड में बदल दिया है। आदमियत एक बड़ा पागलखाना हो गई है। सारी जमीन पर पागलों का बड़ा समूह पैदा होता जा रहा है। फिर अगर ये पागल आग लगा दें, मकान तोड़ दें, तो नाराज मत होइए। इनको हमने पागल बनाया है। हमने इन्हें इनकी आत्मस्थिति से च्युत किया है। ये जो हो सकते थे वह होने के लिए हमने उन्हें तैयार नहीं किया और जो नहीं हो सकते हैं उसकी तरफ हमने इनको दौड़ाया है। आदमी का मस्तिष्क इतने सूक्ष्म तंतुओं से बना है। आदमी का मन इतना डेलिकेट है कि उसमें जरा भी गड़बड़ करें तो सब नुकसान हो जाता है। जरा भी गड़बड़ करें तो सब नुकसान हो जाता है।
आदमी का मन बहुत डेलिकेट है। आदमी की इस छोटी सी खोपड़ी में करोड़ों रेशे हैं। अगर एक आदमी के खोपड़ी के रेशों को निकाल कर हम कतार में फैला दें, तो पूरी पृथ्वी का चक्कर लगा लेगा। एक आदमी की खोपड़ी में इतने रेशे हैं। इतने बारीक सेल, इतने बारीक स्नायु, उनसे यह छोटा सा मस्तिष्क करोड़ों स्नायुओं से मिल कर बना है। इसमें जरा सी गड़बड़, और सारी मशीन बहुत डेलिकेट है, सब गड़बड़ हो जाता है। आश्चर्य है यह कि अब तक सारे मनुष्य पागल क्यों नहीं हो गए हैं, आश्चर्य यह नहीं है कि कुछ लोग पागल हो जाते हैं। आदमी के साथ जो किया जा रहा है, आदमी के साथ जो अनाचार हो रहा है, आदमी के साथ जो व्यभिचार हो रहा है, जो बलात्कार हो रहा है, आदमी के मन के साथ जो किया जा रहा है, उससे अगर सारे लोग पागल हो जाएं तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि आदमी को आत्मविज्ञान में दीक्षित नहीं किया जा रहा है। और पराए विषय होने की दौड़ में, दूसरे को पार करने के पागलपन में दिशा और धक्के दिए जा रहे हैं। इन सारे धक्कों से यह उपद्रव पैदा हो गया है।
युवकों को शिक्षा देने से कुछ भी नहीं होगा, शिक्षा को आमूल ही बदल देना जरूरी है। एक पूरा क्रांतिकारी कदम उठाना जरूरी है कि हम मनुष्य की महत्वाकांक्षा को नहीं बल्कि मनुष्य के भीतर जो छिपी हुई संभावनाएं हैं, उनके परिष्कार को ध्यान में रखें, मनुष्य कहां पहुंचे ये सवाल नहीं है, मनुष्य जो है वह कैसे प्रकट हो जाए? यह सवाल है। मनुष्य किस मंजिल को छू ले यह सवाल नहीं है, मनुष्य के भीतर जो पोटेंशियली छिपा हुआ है, जैसे बीज के भीतर पौधा छिपा हुआ होता है। बीज को हम बो देते हैं बगीचे में, माली बीज में से पौधे को खींच-खींच कर निकालता नहीं है, और अगर कोई माली खींच-खींच कर पौधे को निकाल लेगा तो समझ लेना कि पौधे की क्या हालत होने वाली है? पौधा निकलता है। माली तो सिर्फ ऑपरच्युनिटी जुटा देता है। पानी डाल देता है, बीज डाल देता है। खाद डाल देता है। बागुड़ लगा देता है और फिर चुपचाप प्रतीक्षा करता है कि पौधा निकले। पौधे को निकालता नहीं है। लेकिन हम आदमी में से पौधे निकालते हैं, उनको हम... उनको हम विद्यालय कहते हैं। विश्वविद्यालय कहते हैं। उसमें से आदमी के बीज में से हम जबरदस्ती पौधे खींच रहे हैं। बाप की मर्जी से खींचा जा रहा है, कोई पौधा मां की मर्जी से खींचा जा रहा है। कोई गुरु की मर्जी से खींचा जा रहा है। इसको इंजीनियर बनाओ, इसको कवि बनाओ, इसको डाक्टर बनाओ। कोई यह पूछ ही नहीं रहा, इसके भीतर

पोटेंशियलिटी क्या है? यह क्या होने को पैदा हुआ है? मां कहती है कि इसको इंजीनियर बनाना है।
मैं एक घर में ठहरा हुआ था। एक लड़के ने कहा कि मुझे बचाइए, मैं पागल हो जाऊंगा। क्या मामला है? उसने कहाः मेरी मां कहती है, इंजीनियर बनो, मेरे बाप कहते हैं, डाक्टर बनो, और दोनों इस तरह खींच रहे हैं मुझे कि न मैं इंजीनियर बन पाऊंगा, न मैं डाक्टर बन पाऊंगा। और मैं क्या बन जाऊंगा उसका जिम्मा किसी पर भी नहीं होगा, क्योंकि वे दोनों मुझे बनाना चाहते।
बच्चे खींचे जा रहे हैं। जबरदस्ती खींचे जा रहे हैं, बच्चों में ग्रोथ नहीं होती। बच्चों में जबरदस्ती तनाव देकर हम उनमें से कुछ पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं। इसके पहले कि उनके भीतर कुछ पैदा हो हम जबरदस्ती खींच-तान कर उन्हें तैयार कर देते हैं। फिर अगर वे विरूप हो जाते हैं, कुरूप हो जाते हैं, उनका जीवन एक अगलीनेस बन जाता है, उनका जीवन सौंदर्य खो देता है और आनंद खो देता है, तो फिर हम पीड़ित और परेशान होते हैं, और पूछते हैं कलयुग आ गया क्या? लोग खराब हो गए क्या? फिर हम अपनी पुरानी किताबों में खोजते हैं, जिनमें लिखा हुआ है कि हां, ऐसा वक्त आएगा जब लोग खराब हो जाएंगे। तब हम निश्चिंत हो जाते हैं कि ठीक है भविष्यवाणी ठीक हो गई। ऋषि-महात्मा बिल्कुल ठीक ही कहते थे कि जमाना खराब आ जाएगा। यह खराब जमाना आ गया है। यह खराब जमाना लाया गया है। यह आया नहीं है। और इसे हम रोज ला रहे हैं।
असल में आसमान से कुछ भी नहीं टपकता है, हम जो लाते हैं, वह आता है। यह हमने स्थिति लाई है। और इस सारी स्थिति के पीछे मनुष्य के मन की स्पांटेनियस ग्रोथ, सहज विकास का कोई ध्यान नहीं है। खींचने का खयाल है, खींचो और आदमी को कुछ बनाओ। इसको तोड़ डालें। बसें मत जलाएं। लेकिन इनकार कर दें उस शिक्षा से जो आदमी के साथ जबरदस्ती कर रही है। और कह दें यह कि चाहे हम अशिक्षित रह जाएंगे वे बेहतर, लेकिन हम जबरदस्ती आत्मा को खींचे जाने को बरदाश्त नहीं करते हैं। अशिक्षित होने से कुछ भी नहीं बिगड़ता है। हजारों साल तक आदमी अशिक्षित रहा, क्या बिगड़ गया? वैसे कई लिहाज से फायदा था। अशिक्षित आदमी ने न एटम खोजा, न हाइड्रोजन बम खोजा। अशिक्षित आदमी हमसे ज्यादा सौंदर्य में जीया। हमसे ज्यादा शांति में जीया। हमसे ज्यादा आनंद में जीया। अशिक्षित आदमी हमसे ज्यादा स्वस्थ जीया। तो शिक्षित होने से क्या हो जाने वाला है? लेकिन अगर ठीक से शिक्षा मिले तो बहुत कुछ हो सकता है। अगर तीन चुनाव हैं आदमी के सामने-गलत शिक्षा, ठीक शिक्षा और अशिक्षा मैं कहता हूं अगर गलत शिक्षा और अशिक्षा में से चुनना हो तो अशिक्षा चुननी चाहिए। अशिक्षित रह जाना बुरा नहीं है, लेकिन अगर ठीक शिक्षा हो सके तो जरूर बड़ा सौभाग्य, और शिक्षा ठीक हो सकती है।
पहली बात एंबीशन के केंद्र से शिक्षा को हटा देना चाहिए, महत्वाकांक्षा के और प्रतिस्पर्धा के केंद्र से। उसकी जगह आत्म-परिष्कार और आत्म-उन्नति और स्वयं के सहज विकास पर बल देना चाहिए। और इसकी फिकर छोड़ देनी चाहिए कि हर आदमी इंजीनियर बने, हर आदमी डाक्टर बने। हो सकता है कोई आदमी अच्छा चमार बनने को पैदा हुआ हो। तो अच्छा चमार अगर डाक्टर बन गया तो बड़े खतरे हैं। वह आदमी के साथ ऑपरेशन तो करेगा लेकिन वैसा ही जैसा जूते के साथ करता है। और अगर एक... हो सकता था वह एक अच्छा बढ़ई बनता। जरूरत है बढ़ई की भी, चमार की भी। लेकिन हमने जैसी गलत समाज व्यवस्था बनाई है उसमें हम डाक्टर को बहुत ऊंचा पद देते हैं, बढ़ई को कोई पद नहीं देते। तो बढ़ई को भी पागलपन शुरू होता है कि डाक्टर बनो। लेकिन बढ़ई की अपनी जरूरत है। उसकी जरूरत किसी डाक्टर से कम नहीं है। और चमार की अपनी जरूरत है, उसकी जरूरत किसी प्राइम मिनिस्टर से कम नहीं है। और शिक्षक की अपनी जरूरत है और किसी राष्ट्रपति से कम नहीं है। जिंदगी बहुत लोगों का सम्मिलित, सम्मिलित चित्र है। जिंदगी सम्मिलित संगीत है।
लिंकन जब प्रेसिडेंट हुआ अमरीका का। यह तो आपको पता होगा उसका बाप एक चमार था। जूते सीता था। लिंकन प्रेसिडेंट हो गया, तो कई लोगों को बहुत अखरा मन में कि एक चमार का लड़का प्रेसिडेंट हो गया। पहले दिन जब संसद में बोलने लिंकन खड़ा हुआ, तो एक आदमी ने खड़े होकर यह याद दिला देनी जरूरी समझी

कि इस बेटे को कि कहीं यह भूल न जाए कि चमार के बेटे हो। एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि महाशय, लिंकन, यह मत भूल जाना कि आप एक चमार के लड़के हो। तालियां बज गई होंगी संसद में, लोग बड़े खुश हुए होंगे कि ठीक वक्त पर याद दिला दिया।
लिंकन ने खड़े होकर कहाः मेरे पिता की याद दिला कर तुमने बहुत अच्छा किया, मैं बड़ी खुशी से भर गया। क्यों मैं यह कहता हूं कि मेरे पिता की याद दिला कर तुमने बहुत अच्छा किया? क्योंकि मैं यह भी तुम्हें कह देना चाहता हूं कि मेरे पिता जितने अच्छे चमार थे उतना अच्छा राष्ट्रपति मैं नहीं हो सकूंगा। और जिन सज्जन ने यह कहा था, लिंकन ने उनसे कहा कि महाशय, जहां तक मुझे याद आता है आपके पिता भी मेरे पिता से ही जूते बनवाते थे। और जहां तक मुझे खयाल है आपके पिता ने कभी भी शिकायत नहीं की। लेकिन आपको कैसे याद आ गई बात, मेरे पिता के जूतों से कोई शिकायत है आपको? मेरे पिता के चमार होने से कोई शिकायत है आपको? यह याद दिलाने का आपको खयाल कैसे आ गया? मैं धन्यभागी हूं कि मेरा पिता एक अदभुत चमार था। वह बड़ा कुशल कारीगर था।
यह एक दृष्टि जो है जीवन को देनी जरूरी है। महत्वाकांक्षा की दृष्टि
ने पद पैदा कर दिए हैं। जीवन में पद पैदा कर दिए हैं--कौन ऊंचा, कौन नीचा। यह महत्वाकांक्षा की शिक्षा का परिणाम है। बाई-प्रॉडक्ट है कि फलां आदमी चूंकि ज्यादा शिक्षा लेता है, इसलिए ज्यादा ऊंचा। कम शिक्षा लेता है, इसलिए कम ऊंचा। जो अनस्किल्ड है वह बिल्कुल किसी स्थान पर ही नहीं है। लेकिन जीवन बहुत चीजों का जोड़ है। जीवन बहुत चीजों का संगीत है। एक ऐसी दुनिया बनानी है जहां सब जरूरी हैं, सब महत्वपूर्ण हैं, सब गौरवान्वित हैं। इस दुनिया को मिटा देना है जहां थोड़े से लोगों के गौरव के लिए सारे लोगों का गौरव छीन लिया जाता है। यह वैसी दुनिया है जैसे कोई गांव हो और कुछ गांव के लोग यह तय कर लें कि दस-पांच आदमियों की आंखें बचा लो, बाकी सबकी आंखें फोड़ दो, क्योंकि बाकी अंधे लोगों के बीच में आंख वाला होना बड़ा आनंदपूर्ण होगा। सब अंधे होंगे हमारे पास आंखें होंगी तो बड़ा अच्छा होगा। उस गांव में अगर कुछ लोग ऐसा कर लें दस लोग मिल कर, और दस लोग मिल कर कुछ भी कर सकते हैं। क्योंकि दस लोग जहां मिल जाते हैं वहीं राजनीति शुरू हो जाती है। दस लोग मिल कर कुछ भी कर सकते हैं, दस गुंडे मिल कर कुछ भी कर सकते हैं। और बड़ी... आज तक दुनिया का दुर्भाग्य रहा, अच्छे आदमी कभी मिलते नहीं, बुरे आदमी बहुत जल्दी मिल जाते हैं। दस आदमी मिल कर यह तय कर लें कि बंबई में सारे लोगों की आंखें फोड़ दो ताकि कुछ लोगों को आंख वाला होने का बड़ा आनंद उपलब्ध हो। जरूर उनको आनंद ज्यादा उपलब्ध होगा। क्योंकि अंधों की बस्ती में आंखों वाला होना बड़ा आनंदपूर्ण, बड़े अहंकार की तृप्ति करता है।
कुछ लोगों ने यही किया हुआ है कि कुछ लोगों को पद दे दो और सारे लोगों
के पद, जीवन की सारी व्यवस्था छीन लो, ताकि पद पर होना बहुत आनंदपूर्ण हो जाए। इन दुष्टों ने, इन हिंसक लोगों ने एक पृथ्वी बना दी है जो नरक हो गई है। अगर तोड़ना है तो इस सबको तोड़ देना जरूरी है। और एक समाज, एक जीवन, एक संस्कृति निर्मित करनी है, जहां हर आदमी को गौरवान्वित होने का मौका हो। जहां हर आदमी को स्वयं होने का मौका और अवसर हो। जहां हर आदमी जो भी होना चाहे, सम्मानित और गौरव से हो सके। जहां गुलाब के फूल भी आदृत हों और घास के फूल भी आदृत हों। क्योंकि घास और गुलाब के फूल में परमात्मा को कोई फासला, कोई भेद नहीं।
इसी अंतिम बात को कह कर मैं अपनी चर्चा पूरी करूंगा।
जब आकाश में सूरज निकलता है, तो सूरज गुलाब के फूल से यह नहीं कहता है
कि मैं तुझे ज्यादा रोशनी दूंगा, घास के फूल से यह नहीं कहता कि घास के फूल हट बीच से, शूद्र तू कहां यहां आ गया, तुझे रोशनी नहीं दी जा सकती। घास के फूल को भी सूरज उतनी ही रोशनी देता है जितनी गुलाब के फूल को। जब आकाश में बादल घिरते हैं तो गुलाब के फूल पर ही पानी नहीं गिरता घास के फूल पर भी पानी गिरता है। और घास के फूल पर गिरा हुआ पानी दुख अनुभव नहीं करता कि कहां मेरा दुर्भाग्य घास के फूल पर गिर रहा हूं। और घास का फूल जब खिलता है, छोटा सा फूल, और जब हवाओं में घास का फूल नाचता है, तो उसकी खुशी किसी गुलाब के फूल से कम नहीं होती।

असल में सवाल घास के फूल और गुलाब के फूल का नहीं है, सवाल पूरी तरह खिल जाने का है। चाहे गुलाब का फूल पूरी तरह खिल जाए, चाहे घास का फूल पूरी तरह खिल जाए। जो पूरी तरह खिल जाता है वह आनंद को उपलब्ध हो जाता है, वह परमात्मा को उपलब्ध हो जाता है।
मनुष्य पूरी तरह खिल सके, एक ऐसी शिक्षा, और सब मनुष्य खिल सकें, किन्हीं की कीमत पर कुछ लोग न खिल सकें, इस तरफ ध्यान देना जरूरी है। शिक्षकों से, शिक्षार्थियों से यही मैं प्रार्थना करता हूं कि मैंने जो थोड़ी सी बातें कहीं उन पर सोचेंगे। जरूरी नहीं है कि मेरी बातें मान ली जाएं। पुराने गुरुओं की यह ढंग थी और आदत थी कि हम जो कहते हैं वह मान ही लो। मैं कोई गुरु नहीं हूं, गुरु होने की बीमारी मुझे जरा भी नहीं है। तो मैं यह नहीं कह सकता हूं कि मैंने जो कहा उसे मान लो, मैं तो इतना कहता हूं मैंने जो कहा उसे सोचना। और मैं अगर तुम्हें सोचने को भी राजी कर सका तो काम पूरा हो जाता है। क्योंकि जो सोचना शुरू कर देता है वह एक न एक दिन सत्य के निकट जरूर पहुंच जाता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत आनंदित, अनुगृहीत हूं। और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

सम्यक शिक्षा
आठवां प्रवचन

प्रेम--अनुशासन--क्रांति

जीवन की कला सीखनी चाहिए कि ठीक से जी सको। तब तो जीवन का एक-एक पल सार्थक है। कितना आनंद मिलता है, कितनी शांति मिलती है, इस पर सार्थकता निर्भर होती है। जैसे आमतौर से हम जीते हैं उसमें तो जीवन बिल्कुल निरर्थक हो जाता है, वह सार्थक नहीं हो पाता। वह जो मैं रोज कह रहा हूं वह इसी दृष्टि से तो कह रहा हूं कि जीवन कैसे ज्यादा से ज्यादा सार्थक हो सके, कैसे ज्यादा सार्थक हो सके। अभी तो तुम्हारे बच्चों के जो प्रश्न हैं वे पूछो, ये तो बड़े-बड़े प्रश्न चलते हैं रोज। तुम्हारी कोई अपनी बात हो तो पूछो।

प्रश्नः कोई मजहब में, अभी तक जो पैगंबर आए हैं, वे ही सब अपने-अपने मजहब की बातें करते हैं, लेकिन वे यह भी कहते हैं कि इनसान एक है, इनसान ही सच्चा धर्म है। तो वे लोग क्यों नहीं सिखाते कि यही सच्चा धर्म है? लेकिन अपने-अपने मजहब को ही क्यों आगे बढ़ाते हैं?

कोई सच्चा धार्मिक आदमी आदमी को लड़वाने के लिए तैयारी नहीं करवाता है--कोई पैगंबर या कोई ऐसा व्यक्ति। लेकिन पीछे जो लोग इकट्ठे होते हैं, धंधा करने वाले लोग जो इकट्ठे हैं--पंडित हैं, पुरोहित हैं, पुजारी हैं--वे यह सारा का सारा खड़ा करते हैं। तो धर्म को नष्ट कर दिया पंडितों ने, पुजारियों ने। लेकिन ठीक-ठीक कोई व्यक्ति जो सत्य को जानता है, वह कोई आदमियत को लड़वाता नहीं, वह कभी नहीं लड़वाता आदमियत को। अनुयायी पीछे खड़े होकर सारा उपद्रव खड़ा करते हैं।
इसलिए मेरी एक कोशिश है, वह यह है कि किसी को किसी का अनुयायी नहीं होना चाहिए। तो दुनिया में उपद्रव बचेगा, नहीं तो नहीं बचेगा। अनुयायी होना ही नहीं चाहिए किसी को किसी का। समझे न? फॉलोवर्स जो हैं, वे झंडे खड़े करते हैं, संगठन बनाते हैं। उनके कारण उपद्रव होता है।
इसलिए अब दुनिया में जो शिक्षक पैदा हों, उनको यह कोशिश करनी चाहिए कि कोई किसी का शिष्य न बने, कोई किसी का अनुयायी न बने। तब दुनिया से हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, जैन मिट सकेंगे, नहीं तो नहीं मिट सकेंगे। यह कोई राम ने, कृष्ण ने, मोहम्मद ने, क्राइस्ट ने खड़े नहीं कर दिए, ये सब मामले पीछे से जो आदमी आते हैं वे खड़ा कर देते हैं। समझे न?
जल्दी करो, कोई तुम्हारी बात हो तो पूछो। हां, तुम जल्दी अपनी बात कर लो।

प्रश्नः गीता में यह लिखा हुआ है कृष्ण ने कि व्यक्ति का कर्तव्य है कर्म करने का, फल मेरे हाथ में है। आपने आज प्रेम की बात बताई... गीता में दूसरे अध्याय में गीता में यह लिखा हुआ है कि अर्जुन कर्म करो, दुष्टों को नष्ट करो। यह मेरी समझ में नहीं आता है कि आप प्रेम की बातें करते हैं और कृष्ण दुष्ट को नष्ट करने की बातें करते हैं। यह मेरा प्रश्न है कि आप गीता के बारे में मुझे समझाएं?

पहली बात तो यह कि कृष्ण क्या कहते हैं, वह मुझसे पूछने से क्या फायदा? कृष्ण कहीं मिल जाएं तो उनसे पूछना चाहिए। नहीं, है कि नहीं? अब गीता पर मैं क्यों कुछ कहूं? मेरी बात भी तुमने सुन ली, गीता भी तुमने पढ़ ली, तुम्हें जो ठीक लगे वह समझ लेना चाहिए। पुरानी किताबों को बार-बार खींच कर जिंदगी में लाने की कोई जरूरत ही नहीं है। और उनकी वजह से फिजूल व्याख्या में पड़ते हैं हम, फिजूल परेशानियों में पड़ते हैं। फिर हम जो व्याख्या करेंगे कृष्ण ने क्या कहा, वह भी हमारी व्याख्या होगी। एक हजार टीकाएं हैं कृष्ण की किताब पर। तिलक कुछ कहते हैं, अरविंद कुछ कहते हैं, गांधी कुछ कहते हैं, विनोबा कुछ कहते हैं, शंकर कुछ कहते हैं, रामानुज कुछ कहते हैं

कि कृष्ण का अर्थ क्या है। तो एक हजार अर्थ करने वाले लोग मौजूद हैं। मुझसे पूछोगे, एक अर्थ मैं करूंगा, वह एक हजार एकवां अर्थ होगा। उससे कुछ हल नहीं होता।
मैं सीधी बात करना पसंद करता हूं। कृष्ण को बेचारों को बीच में घसीटने की क्या जरूरत है? सीधी मुझसे बात करो न। कृष्ण को क्यों बीच में लाते हो? तुम्हें जो गलत लगता हो कहो कि गलत है। मुझसे पूछो कि यह क्यों गलत लगता है या यह क्यों सही है? हमारी यह गलत आदत हो गई है कि हम बीच में कहीं राम को लाएं, कहीं कृष्ण को लाएं, कहीं मोहम्मद को लाएं और फिर बात शुरू करें। बात तो हम दो को करनी है, उन बेचारों को बीच में घसीट कर... उनकी बेकार फजीहत हो जाती है। कृष्ण को छोड़ो, मिल जाएं कहीं तो उनसे पूछ लेना। जब तक मैं हूं तो मेरी बात मुझसे पूछ लो। नहीं तो कल मैं मर जाऊंगा तो मेरे बाबत दूसरों से पूछोगे जाकर कि वे ऐसा कहते थे, उसका क्या मतलब था? समझे मेरी बात?

प्रश्नः जब मेरे सामने कोई नटखट आ जाए, और मेरे सामने... कोई मेरे को थप्पड़ लगा दे, तो मैं दूसरा गाल कर दूं उसके सामने?

तुम्हारा क्या मन होता है?

प्रश्नः प्रेम, आपने सिखाया है कि मैं भी प्रेम करूं।

तो फिर तो यह प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रश्नः लेकिन वह मेरी जिंदगी अगर खतरे में होती है तो मैं क्या करूं?

जिंदगी तो खतरे में है ही। है न!

प्रश्नः मैं समझ गया। लेकिन क्या करना चाहिए, आदमी सामने आ जाए, मैं सिर झुका दूं?

तुम प्रेम की अगर बात समझ गए हो... समझे न? ... तो प्रेम के लिए कभी सवाल
ही नहीं उठता कि क्या करना है। मेरी बात समझे न? ... अगर तुम प्रेम की पूरी कला सीखते हो, तो तुम्हें यह सवाल ही नहीं उठता कि क्या करना है। वह प्रेम कुछ करेगा। और प्रेम जो भी करेगा वह अच्छा होगा। जैसे यह हमको दिखाई पड़ता है कि उस आदमी ने मेरे ऊपर चांटा मार दिया, यह हमको दिखाई ही इसलिए पड़ता है कि हमारे भीतर प्रेम नहीं है। नहीं तो हमें कुछ और दिखाई पड़ता।
बुद्ध का एक शिष्य था। वह पूर्ण नाम था उस भिक्षु का। जब वह सारी शिक्षा पूरी हो गई तो बुद्ध ने उससे कहा कि अब तू जा और मेरे संदेश को लोगों तक पहुंचा। पर तू कहां जाएगा? तो एक सूखा, एक जगह थी बिहार में, उसने कहा मैं वहां जाऊंगा। वहां तक कोई भिक्षु अब तक गया नहीं।
बुद्ध ने कहाः वहां मत जा, वहां के लोग बहुत बुरे हैं। हो सकता है वे तुझे गालियां दें, अपमान करें। तो उसने कहा कि मेरे मन को यही होगा कि लोग कितने अच्छे हैं कि सिर्फ गालियां देते हैं, अपमान करते हैं मारते नहीं। मार भी सकते थे।
बुद्ध ने कहाः यह भी हो सकता है कि कोई तुझे मारे, तो तुझे क्या होगा?
तो उसने कहाः आपके पास रह कर मैंने प्रेम की जो साधना की है, मेरे मन
को यही होगा कि लोग कितने अच्छे हैं, सिर्फ मारते हैं, मार ही नहीं डालते, मार भी तो डाल सकते थे।
बुद्ध ने कहाः और यह भी हो सकता है कि कोई तुझे मार ही डाले, तो मरते वक्त तुझे क्या होगा?
तो उसने कहाः आपके पास जो मैंने जाना और जीया है, मुझे यही होगा कि लोग कितने अच्छे हैं कि मुझे मार डाला, कहीं मैं जिंदा रहता और जिंदगी में कोई भूल-चूक होती, तो उससे बच गया। प्रेम की जब दृष्टि होती है तो तुम्हें यह

नहीं दिखाई पड़ता कि इसने मुझे मारा। तुम्हें कुछ और ही दिखाई पड़ता है। हमें वही दिखाई पड़ता है जो हमारी दृष्टि होती है। हमारी दृष्टि तो शत्रुता की है इसलिए ये प्रश्न खड़े होते हैं। समझे न? जब तुम्हारी दृष्टि प्रेम की होगी तो ये प्रश्न खड़े होते ही नहीं। तुम्हारा प्रेम अपने आप रास्ता खोज लेगा कि मैं क्या करूं?
जैसे मैंने कहा कि बुद्ध के ऊपर उस आदमी ने थूका, तो बुद्ध ने चादर से पोंछ लिया और उससे पूछा कि और कुछ कहना है? तुमको यह नहीं दिखाई पड़ता कि यह कुछ कह रहा है। तुमको यह दिखाई पड़ता है कि मेरे ऊपर थूक दिया। तुम तो पागल हो जाते हो। प्रेम की दृष्टि पैदा करो फिर रास्ता अपने आप मिल जाता है, किसी से पूछने नहीं जाना पड़ता। अभी हमारी दृष्टि क्रोध की है, तो क्रोध कहता है कि चांटा मारा, दुगना चांटा मारो। प्रेम की जब दृष्टि होगी... उसको पैदा करना पड़ेगा, सिर्फ समझ लेने से नहीं होगी। साधना करनी पड़ेगी। जब प्रेम की दृष्टि होगी तो शायद तुम्हें जो क्राइस्ट ने कहा है शायद वही दिखाई पड़ जाए। यही दिखाई पड़ जाए कि इसने एक चांटा मारा, दूसरा गाल और इसके सामने कर दें। लेकिन यह अभी दिखाई नहीं पड़ सकता। अभी तो यह बात बड़ी एब्सर्ड है। बड़ी बेबूझ मालूम पड़ती है। लेकिन दिखाई पड़ सकता है।
क्राइस्ट को जिन लोगों ने सूली दी, तख्ते पर लटका दिया फांसी के। आखिरी वक्त उन्होंने कहा कि हे परमात्मा! इन सबको माफ कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं? ये नासमझी में कर रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि मेरी फांसी की सजा इनको मिले। ये सब नासमझ हैं, ये कुछ जानते नहीं हैं। समझे न? पर ये तो प्रेम की जब दृष्टि पैदा होगी तब। उसके पहले नहीं। तो इसलिए यह मत पूछो कि क्या करेंगे? पहले यही फिकर करो कि प्रेम की दृष्टि कैसे पैदा हो जाए? फिर प्रेम अपना रास्ता खुद निकाल लेगा।
जैसे हम किसी आदमी को... कोई हमसे आकर पूछे कि अंधेरे कमरे में मैं जाऊं, तो मैं कैसे जाऊं? तो मैं उससे कहूंगा कि तू दीया लेकर जा। और फिर आगे मत पूछ। दीये की रोशनी तुझे बता देगी कि तू कहां से जा और कहां से न जा। प्रेम का दीया जब जल जाएगा, तुम्हें दिखाई पड़ जाएगा कि हम क्या करें, और क्या न करें। इसलिए एक्शन पर मैं फिकर ही नहीं करता कि तुम क्या करो? इसका तय भी नहीं करता। इतना ही तय करता हूं कि तुम्हारे भीतर प्रेम पैदा हो जाए, तो वह तय कर लेगा कि क्या करना है, क्या नहीं करना है। उसकी फिकर करो।

प्रश्नः डिसिप्लिन, अनुशासन का सही अर्थ क्या है?

अनुशासन, डिसिप्लिन का क्या अर्थ है? यह पूछते हैं। जैसा अभी दुनिया में दिखाई पड़ता है, वह तो अर्थ यह है कि बाहर से थोपे गए नियम। शिक्षक थोपता है, मां-बाप थोपते हैं, स्कूल थोपता है, समाज थोपता है। ऐसा करो, ऐसा मत करो। ऐसे उठो, ऐसे बैठो। इसको वे डिसिप्लिन कहते हैं। मैं इसको डिसिप्लिन नहीं कहता। मैं तो अनुशासन कहता हूं कि तुम्हारे भीतर विवेक को जगाया जाए और तुम्हारा विवेक तुमसे जो कहे वह तुम करो। एक ही डिसिप्लिन है कि मनुष्य का विवेक जगा हुआ हो। बस और कोई डिसिप्लिन नहीं है। और वह जो इनर डिसिप्लिन है, वह जो भीतर से आने वाला अनुशासन है, वह तो कीमत का है। बाहर से थोपा गया अनुशासन बहुत खतरनाक है। वह आदमी की आत्मा को ही नष्ट कर देता है।
तो एक... प्रत्येक व्यक्ति की समझ बढ़ती चली जाए। जैसे हम यहां बैठे हैं, हम सब चुप बैठे हैं। यह चुप बैठना दो कारण से हो सकता है। या तो एक डिसिप्लिन है यहां, आज्ञा है कि यहां कोई बोल नहीं सकता, सबको चुप बैठना पड़ेगा, तो चुप बैठे हैं। वह झूठी डिसिप्लिन हो गई। नुकसान पहुंंचाने वाली हो गई। लेकिन तुम्हें सुनना है, तुम मेरी बात सुनने को उत्सुक हो, इसलिए चुप बैठे हो, यह इनर डिसिप्लिन है। यह तुम्हारे विवेक की बात हुई कि तुम्हें चुप बैठना है, क्योंकि तुम्हें सुनना है। यह डिसिप्लिन तो एक फ्रीडम है। जो भीतर से आता है अनुशासन वह तो स्वतंत्रता है। जो बाहर से आता है वह परतंत्रता है। वह सब गुलामी है। और गुलामी के मैं बिल्कुल विरोध में हूं।

मैं ऐसी दुनिया पसंद करूंगा जिसमें कोई डिसिप्लिन न हो। विवेक हो। लेकिन हम अभी बच्चों को कभी विवेक तो सिखाते नहीं, बस डिसिप्लिन सिखाते हैं। यह सिखाते हैं यह करो, वह करो। यह नहीं सिखाते कि तुम्हें खुद दिखाई पड़े कि क्या करना उचित है। तो मेरी दृष्टि उस बाबत यही है कि प्रत्येक बच्चे की समझ, विवेक बढ़ना चाहिए। बढ़ाना चाहिए हमें ताकि वह इस योग्य हो जाए कि वह क्या करे और क्या न करे।
अभी जो डिसिप्लिन है, वह तो मिलिटरी डिसिप्लिन है। वह कोई... वह कोई अच्छी डिसिप्लिन नहीं है। आदमी को जबरदस्ती करवाने का काम है। और जबरदस्ती के भारी नुकसान हैं। पहला नुकसान तो यह है कि जो आदमी जबरदस्ती किसी काम को करने को राजी होता है, वह आदमी कमजोर हो जाता है, उसका बल नष्ट हो जाता है, उसकी स्वतंत्रता नष्ट हो जाती है। दूसरा परिणाम यह होता है कि जब भी उसको मौका मिलेगा, तब वह ठीक उलटा करेगा, जो जबरदस्ती में उसको करना पड़ा है। अगर वह यहां शांत बैठा रहा है सिर्फ जबरदस्ती की वजह से तो दीवाल के उस तरफ हटते से ही अशांत हो जाएगा। पिता के सामने सिगेरट नहीं पी है उसने, तो पिता के पीछे दीवाल के उस तरफ हट कर सिगेरट पीना शुरू कर देगा। क्योंकि वह तो जबरदस्ती थी न, वह कोई विवेक नहीं था उसका। कमजोर करेगा, आदमी को चोर बनाएगी डिसिप्लिन। और जब वह ताकत में आएगा कभी... । आज बच्चा है, कल जवान हो जाएगा, आज बाप जवान है कल बाप बूढ़ा हो जाएगा। हालत उलटी हो जाएगी। अभी बच्चा कमजोर है, बाप ताकतवर है। कल बच्चा जवान होकर ताकतवर होगा, बाप बूढ़ा होकर कमजोर हो जाएगा। जिस दिन वह बाप कमजोर हो जाएगा, उस दिन वह बदला लेगा उसका। इसलिए हर बूढ़े बाप को जवान लड़के सताते हैं। इसका कोई और मतलब नहीं। इसका मतलब है कि छोटे बच्चों को जवान बाप ने सताया है, और कोई मतलब नहीं। वह उसका रिएक्शन है, उसका बदला लिया जा रहा है। अब ताकत की हालत बदल गई है। अब कमजोर ताकतवर हो गया, ताकतवर कमजोर हो गया। अब बदला लिया जा रहा है उसका।
सारी दुनिया में मां-बाप बच्चों से परेशान हैं, उसका कुल कारण इतना है
कि मां-बाप बच्चों को परेशान कर रहे हैं। उसका सर्किल पूरा खड़ा हो जाता है, फिर परेशानी होती है। फिर बाद में वे रोते हैं कि हमारे बच्चे हमारा साथ नहीं दे रहे हैं। हमें धोखा दे रहे हैं। हमें दगा दे रहे हैं। हमें परेशान कर रहे हैं। लेकिन कोई नहीं पूछता कि जब बच्चे छोटे थे, तो तब तुमने इनके साथ क्या किया? तुमने इनमें विवेक जगाया या जबरदस्ती कोई चीज थोप देने की कोशिश की। जबरदस्ती के खिलाफ रिबेलियन, विद्रोह पैदा होता ही है। तो सारी दुनिया में जो अव्यवस्था है, वह इसलिए है कि विवेक नहीं है, बस डिसिप्लिन, डिसिप्लिन की बात चलती है। ये आज हमारे तो पूरे मुल्क में हो गया है, कालेज के लड़के हैं, हाई स्कूल के लड़के हैं, वह सब तोड़-फोड़ रहे हैं। ये जबरदस्ती थोपी गई बातों के खिलाफ विद्रोह है और कुछ भी नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

कोई गलती नहीं है, कोई गलती नहीं है। गलती क्या है, कहीं कोई गलती नहीं है।

प्रश्नः जितने भी क्रांतिकारी आए वे सब पुरानी जो प्रणालियां हैं वह
सब हमेशा तोड़ने की ही बातें करते रहे। लेकिन उन्होंने खुद भी नई प्रणालिकाएं स्थापित कर दीं। जैसे आप बता रहे हैं कि एक मुक्त जगत जानते हैं आप। लेकिन आपकी बातें मानने के लिए और आपकी बातें मानने के लिए लोग तैयार हैं और कहते हैं कि हम रजनीशजी के फॉलोवर हैं। और... अब इनसान को एक आदत सी बन गई है कि इज्म से ही चलता है। चाहे राज-काज हो या धार्मिक बातें हों। तो वह चीजें तोड़ने के लिए क्या करना चाहिए?

बहुत सी बातें करनी चाहिए। पहली बात तो यह करनी चाहिए कि अगर दुनिया में जितने क्रांतिकारी तुम्हें दिखाई पड़ते हैं, उतने क्रांतिकारी हुए नहीं। पुरानी परंपरा को तोड़ देने से कोई क्रांति नहीं होती। परंपरा मात्र

को तोड़ देने से क्रांति होती है। अगर मैं यह कहूं कि पुरानी परंपराएं तो गलत हैं, राम के भक्त मत बनो, कृष्ण के भक्त मत बनो, लेकिन मेरे अनुयायी बन जाओ, तो मैं क्रांतिकारी नहीं हूं। मैं केवल काम्पिटीटर हूं। मैं कृष्ण का काम्पिटीटर हूं, राम का काम्पिटीटर हूं, फलां का काम्पिटीटर हूं। उनके अनुयायियों को खींच कर अपना अनुयायी बनाना चाहता हूं। मैं कोई क्रांतिकारी नहीं हूं फिर। क्रांतिकारी तो मैं तब हूं जब मैं यह कहता हूं कि मेरे अनुयायी भी मत बनो। किसी के अनुयायी मत बनो। किसी परंपरा को मत पकड़ो, किसी चीज को जड़ता से मत पकड़ो। लेकिन इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि तुम्हारा विवेक, तुम्हारा अपना विवेक जाग्रत हो। और तुम्हारा विवेक तुम्हें जो भी ठीक कहे करने को। अगर तुम्हारा विवेक कहे कि कृष्ण ने जो कहा है वह ठीक है, करने जैसा है। इस कारण नहीं कि कृष्ण ने कहा है, इस कारण नहीं कि तीन हजार साल से पूजा जाता है, बल्कि इस कारण कि तुम्हारा विवेक कहता है कि ठीक है, तो तुम करो। तुम्हारा विवेक कहे कि मैं जो कहता हूं, तो उसे करो। लेकिन अंतिम गवाही तुम्हारा विवेक हो। अंतिम गवाही यह न हो कि कृष्ण भगवान के अवतार हैं, इसलिए उनकी बात माननी चाहिए। अंतिम बात यह न हो कि एक बात पांच हजार साल से मानी जाती है, इसलिए ठीक होगी ही, उसे मानना चाहिए। अंतिम बात न यह हो कि फलां बात को मानने से स्वर्ग मिलेगा, इस लोभ में माननी चाहिए। फलां बात को मानने से नरक जाना पड़ेगा, इस भय में माननी चाहिए। अंतिम कसौटी तुम्हारा विवेक हो, तुम्हारा डिसक्रिमिनेशन हो कि यह बात मुझे ठीक लगती है, तर्कयुक्त लगती है, मेरे विवेक को अपील करती है, इसलिए मानता हूं। तो तुम अपने विवेक के अनुयायी हुए। न तो मेरे अनुयायी हुए, न तुम राम के, न कृष्ण के।
प्रत्येक मनुष्य को उसकी बुद्धि का अनुयायी बनाना है, तो परंपरा टूटेगी और क्रांति होगी। लेकिन अब तक तुम जैसा कहते हो, अक्सर वैसा हुआ है कि अगर मैं विरोध कर रहा हूं परंपरा का, तो धीरे-धीरे मैं एक नई परंपरा खड़ी कर लेता हूं। इतनी हिम्मत क्रांतिकारियों में भी नहीं होती कि जब उनकी अपनी परंपरा बनने लगे तब वह तोड़ने की हिम्मत दिखलाएं। दूसरे की परंपरा तोड़ना बिल्कुल आसान है। अपनी तोड़ने का सवाल है। समझे न? तो उसके लिए ध्यान में रखना चाहिए कि ठीक क्रांति हमेशा विवेक का अनुयायी बनवाती है, व्यक्तियों का नहीं। मेरा कोई अनुयायी नहीं है। कोई कहता हो अपने को तो वह मेरे खिलाफ बातें कह रहा है। मेरा कोई अनुयायी नहीं है, मैं किसी का गुरु नहीं हूं। न किसी एक आदमी को कभी मैंने कहा कि मैं तुम्हारा गुरु हूं, न कभी एक आदमी को मैंने कहा कि तुम मेरे अनुयायी हो। लेकिन फिर भी अगर कोई कहता हो, तो वह मेरे खिलाफ बात बोल रहा है। वह मेरे पक्ष की बातें नहीं बोल रहा है। मेरी तो सारी चेष्टा यही है कि तुम अपने विवेक के, अपनी बुद्धि के, अपने चिंतन के, अपने मनन के, अपने ध्यान के अनुयायी बनो। तुम किसी और के पीछे मत जाओ। हमेशा अपने भीतर, और अपने पीछे जाओ।
सच्ची क्रांति तो तभी होगी जब हम व्यक्तियों से मुक्त कर लेंगे और विवेक से जोड़ देंगे। अभी कोई राम से जुड़ा है, कोई कृष्ण से जुड़ा है, कोई मोहम्मद से, कोई बुद्ध से, कोई महावीर से, कोई मुझसे जुड़ सकता है। लेकिन ये सब एक सी बातें हैं। जब तक तुम अपने से बाहर किसी से जुड़े हो, तब तक तुम गलती में हो। तुम्हारा अपना विवेक संयुक्त होना चाहिए। न कोई किसी का गुरु है, न कोई किसी का अनुयायी है। न कोई आदर्श है, न किसी के पीछे जाने की जरूरत है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी कीमत और मूल्य है। और उस जैसा वह अकेला है दुनिया में। अनूठा है। उस व्यक्ति के अनूठे विवेक की इज्जत बढ़नी चाहिए। तो तो कुछ हो, नहीं तो नहीं हो सकता।

प्रश्नः अभी तक जो साइंस ने शोध की है, तो उसका हम लाभ उठाते हैं न।

हां, हां, बिल्कुल उठाएं।

प्रश्नः बिल्कुल नये सिरे से कुछ स्टार्ट करते नहीं... ?

बिल्कुल नहीं।

प्रश्नः इसी तरह ऋषि-मुनियों ने जो शोध... ?

ऋषि-मुनि साइंटिस्ट नहीं हैं, पहली बात। और साइंस और रिलीजन में बुनियादी फर्क है, दूसरी बात।

प्रश्न: स्प्रिचुअल सांइस नहीं है?

बिल्कुल नहीं। स्प्रिचुअल साइंस जैसी कोई चीज होती ही नहीं। साइंस हमेशा मैटीरियल होगी। यानी मेरा मतलब यह है, मेरा मतलब यह है कि धर्म और विज्ञान में यही बुनियादी विरोध है कि विज्ञान की परंपरा होती है, धर्म की परंपरा नहीं होती। अगर न्यूटन पैदा न हो, तो आइंस्टीन पैदा नहीं हो सकता। लेकिन बुद्ध न पैदा हों, तो भी मैं पैदा हो सकता हूं। यानी मेरा कहना यह है अगर दुनिया के सब शास्त्र नष्ट हो जाएं, तो भी आदमी, धार्मिक आदमी इसी वक्त पैदा हो सकता है। अग्रवालजी धार्मिक हो सकते हैं। लेकिन दुनिया के अगर विज्ञान के शास्त्र नष्ट हो जाएं, तो हवाई जहाज नहीं बनाया जा सकता। धार्मिकता ऐसी चीज है कि प्रत्येक व्यक्ति बिना किसी सहारे के उपलब्ध
कर सकता है। और विज्ञान बिना सहारे के उपलब्ध नहीं होता। इसलिए विज्ञान कलेक्टिव एफर्ट है और रिलीजन इंडिविजुअल एफर्ट है। जैसे कि दुनिया के सब प्रेमी, जितने हुए हैं दुनिया में, वे न भी हुए होते तो भी मैं प्रेम करता। प्रेम के लिए परंपरा की जरूरत नहीं कि लैला हो, मजनू हो, फरिहाद हो, शीरी हो, तब मैं प्रेम कर सकता हूं। कोई न हुए हों तो भी मैं प्रेम कर सकता हूं। प्रेम बिल्कुल वैयक्तिक, एक-एक व्यक्ति की क्षमता है। लेकिन अगर बैलगाड़ी का चाक बनाने वाला न हुआ हो, तो हवाई जहाज नहीं बन सकता। क्योंकि वह उसीशृंखला का हिस्सा है। तो विज्ञान सामाजिक उपक्रम है। और धर्म वैयक्तिक अनुभव है। और इन दोनों में इतना बुनियादी फर्क है, इसलिए धर्म एक स्वतंत्रता है, विज्ञान एक स्वतंत्रता नहीं। उसमें आप पीछे से बंधे हैं। हमेशा बंधे हुए हैं। धर्म एक स्वतंत्रता है, उसमें कोई किसी से बंधा हुआ नहीं है।

प्रश्नः अनुभवों का लाभ लिया जाए?

आप अनुभव का लाभ ले ही नहीं सकते सिवाय अनुभव को किए बिना। मेरा मतलब
यह है कि प्रेम किए बिना प्रेम के अनुभव का कोई लाभ आप ले ही नहीं सकते। और प्रेम आपने किया तो किसी के अनुभव से लाभ लेने की जरूरत ही नहीं, आपका अपना अनुभव हो गया। मेरा कहना यह है की कुछ चीजें ऐसी हैं जीवन की जो... अनुभव से ही अनुभव होता है, और कोई रस्ता नहीं है।

प्रश्नः... प्रेम के बारे में जो है, जिज्ञासा तो जागती ही है?

जिज्ञासा प्रेम के कारण नहीं जागती, कि किसी ने प्रेम किया इस कारण जागती है।

प्रश्नः प्रेम के बारे में सुनने से?

बिल्कुल नहीं जागती, बल्कि मर सकती है जिज्ञासा सुनने से। प्रेम तो आपके प्राणों की प्यास है। सुनने-वुनने से नहीं जागती। आपको जंगल में बैठा दिया जाए और प्रेम का आपने शब्द भी न सुना हो, तो भी प्रेम जगेगा। एक शब्द न सुना हो, एक कहानी न पढ़ी हो, एक गीत न पढ़ा हो, तो भी प्रेम जगेगा। वह तो वैसे ही है जैसे आपको प्यास लगेगी। कोई प्यास इसलिए थोड़ी लगती है कि हमने किताबों में पढ़ लिया कि प्यास लगती है। गर्मी पड़ती है, तब प्यास लगती है। वह तो गर्मी पड़ी और प्यास लगेगी। वह प्यास आपके प्राणों का धर्म है।

आपने सुना हो कि नहीं सुना हो कि प्यास लगती है। प्यास लगेगी जब गर्मी पड़ेगी। ठीक प्रेम भी वैसा है। ठीक परमात्मा भी वैसा है। लेकिन विज्ञान वैसा नहीं है। विज्ञान वैसा नहीं है। वह तो ट्रेडीशनलशृंखला से चलता है। इधर तक काम हो चुका है, इतना आप अध्ययन कर लीजिए। तो फिर आप थोड़ा सा काम आगे कर सकते हैं। नहीं तो आगे नहीं कर सकते। इन दोनों में बड़ा बुनियादी फर्क है, तो मैं कहता हूं कि विज्ञान की तो परंपरा होती है, शास्त्र होता है, गुरु होते हैं, शिष्य होते हैं, धर्म में न शास्त्र है, न गुरु है, न परंपरा है, न कोई शिष्य है। इसलिए धर्म परम मुक्ति है। क्योंकि ये सब चीजें बांधने वाली हैं, और धर्म में तो कुछ कोई बांधने वाला नहीं है।

प्रश्नः इला का प्रश्न है कि ये सब बातें साधकों के लिए हो रही हैं?

तो भई गैर-साधक पूछते नहीं तो हम करें क्या? बोलो? तो पूछते क्यों नहीं?

प्रश्नः आप कहते हैं, आप तो बात करते हैं साधक के लिए, लेकिन हम क्या करें?

तू साधक नहीं है। पागल, विद्यार्थी से बड़ा कोई साधक होता है। विद्यार्थी ही सबसे बड़ा साधक है। वही तो शुरूआत है जिंदगी की साधना की। अगर उसी वक्त साधना शुरू हो जाए तो तेरी जिंदगी कुछ और ही बन जाएगी। अभी ये लोग तो जो बूढ़े हो गए हैं, ये वापस विद्यार्थी हो रहे हैं। समझी न? इनको तो बड़ी कठिनाई होगी। इनको बहुत कठिनाई है, तुझे तो कठिनाई नहीं होगी। नहीं समझी तू। वह तो जिंदगी की साधना तो सबके लिए है, जो भी जिंदा हैं। चाहे वे बच्चे हों, चाहे बूढ़े हों। बच्चों के लिए ज्यादा है, क्योंकि जिंदगी उनके सामने पड़ी है अभी। और बूढ़ों के लिए तो जिंदगी पीछे निकल गई। अब थोड़ा सा समय बचा है, अब वे बड़े बेचैन हैं, घबड़ाहट में हैं। तेरे सामने तो पूरा समय पड़ा हुआ है। और अगर अभी से तुझे साधना के सूत्र स्पष्ट हो जाएं, तो तेरी जिंदगी वहां पहुंच जाएगी जहां पहुंचनी चाहिए।

प्रश्नः मेरा फॉल्ट न हो, तो भी कोई हमारा इनसल्ट करे, तो हम कैसा बर्ताव करें?

बहुत अच्छा बर्ताव करना चाहिए। समझे न? पहली तो बात यह कि जब भी कोई तुम्हारी भूल बताए, तो इस बात को बहुत जल्दी मत मान लेना कि हमारी भूल नहीं है। क्योंकि हमारे अहंकार की यह वृत्ति होती है कि अपनी भूल को मानने को राजी न हों। जब भी कोई भूल बताए, तो पहले तो यह सोचना है कि जरूर सौ में निन्यानबे मौके होंगे कि मेरी भूल है। तो पहले मैं सोच लूं कि मेरी भूल है कि नहीं? पहले तो हमारा मन यह होता है कि हमारी भूल है ही नहीं। सभी का मन यह होता है। दुनिया में मुश्किल से वह आदमी मिलेगा जो कहेगा मेरी भूल थी। दो आदमी लड़ेंगे, दोनों कहेंगे, दूसरे की भूल थी। समझे न? तो पहले तो हमारे मन की सहज वृत्ति यह है, वह कहेगा कि हमारी भूल नहीं है यह। इस पर थोड़ा समझ करना कि भूल हो सकती है। पहले इसकी खोज करना कि क्या भूल हो सकती है? बहुत निष्पक्ष मन से, तो सौ में निन्यानबे मौकों में तुमको भूल मिल जाएगी। अगर एक मौके में तुम्हें भूल न मिले, तुम्हें लगे कि भूल नहीं है मेरी, समझे न? और कोई अपमानजनक व्यवहार कर रहा है, तो भी उस क्षण में, जब वह अपमानजनक व्यवहार कर रहा हो, अगर तुम भी वैसा व्यवहार करते हो, तो इससे कुछ कोई हल नहीं होगा, इससे कोई चीज सुलझेगी नहीं। उस वक्त शांति से सुन लेना। उससे कहना कि मैं आधे घंटे बादे जब आप शांत हो जाएंगे, आपको निवेदन करूंगा, अभी नहीं। क्योंकि अभी तो आप क्रोध में हैं, अभी निवेदन करने का कोई मतलब नहीं। आप अभी जो आपको कहना है कह लें, गुस्सा निकाल लें। मैं आधे घंटे बाद आता हूं और निवेदन करूंगा। इतनी बात कहने से ही वह आदमी शांत होगा। आधे घंटे बाद जाकर अपनी बात कहना कि ऐसा-ऐसा मुझे लगता है। मुझे तो नहीं लगता

कि यह मेरी भूल है। फिर भी मैं समझने को राजी हूं। अगर मेरी भूल हो तो समझा दें, मैं माफी मांग लूं। अगर मेरी भूल न हो, तो भी स्पष्ट हो जाए ताकि मैं चिंता से मुक्त हो जाऊं।
जब भी कोई क्रोध में हो, अपमान कर रहा हो, गाली दे रहा हो, तब तो उससे कुछ भी कहने का कोई मतलब नहीं है। वह तो पागल से तुम जूझ रहे हो। वह तो पागलपन की हालत में है। उस वक्त तुम्हें एकदम शांत होना चाहिए, तुम जितने शांत होओगे उतना ही उसको तुम आत्मग्लानि से भर दोगे। उसको लगेगा कि मुझसे भूल हो गई।

प्रश्नः आपने कहा कि प्रेम हो, बाद में विवाह का बंधन जरूरी है?

बंधन नहीं।

प्रश्न: यानी की हो जाता है?

सहज है न। विवाह का मतलब कुल इतना ही है, प्रेम के बाद, कि दो व्यक्तियों को समाज ने स्वीकृति दे दी कि उनके प्रेम को समाज ने भी स्वीकार कर लिया। और कोई मतलब नहीं है।

प्रश्नः और यदि... विवाह के बाद जो प्रेम है उसको, वह ठीक है?

आमतौर से होना मुश्किल है, सौ में निन्यानबे मौके नहीं होने के हैं।

प्रश्नः राम और सीता का एग्जांपल दे सकते हैं?

अब राम और सीता का क्या हुआ, तुम्हें कुछ पता नहीं है। कौन जानता है कि राम का प्रेम पहले नहीं हो गया सीता को बगीचे में देख कर, मैंने सुना, पहले ही हो गया। वह प्रेम का ही मामला था राम-सीता का। विवाह बाद में ही हुआ है। वह प्रेम का ही झगड़ा था। वह ट्राएंगल जो था न, प्रेम का ही झगड़ा था। वह रावण को भी प्रेम पकड़ा हुआ था। तो ट्राएंगल जैसा फिल्म में बनता है, वही पुरानी कहानी है। वही राम, रावण, सीता। दो प्रेमी और एक प्रेमिका।

सम्यक शिक्षा
नौवां प्रवचन

शिक्षाः महत्वाकांक्षा और युवा पीढ़ी का विद्रोह

मनुष्य की आज तक की सारी शिक्षा महत्वाकांक्षा की शिक्षा रही है। वह मनुष्य को ऐसी दौड़ में गति देती है जो कभी भी पूरी नहीं होती। और जीवन भर की दौड़ के बाद भी हृदय खाली का खाली रह जाता है। मनुष्य के मन का पात्र जीवन भर की कोशिश के बाद भी अंत अपने को खाली पाता है। इसीलिए मैं ऐसी शिक्षा को सम्यक नहीं कहता।
मैं उसी शिक्षा को सम्यक शिक्षा (त्तपहीज मकनबंजपवद) कहता हूं, तो मनुष्य की मन को भरने की इस व्यर्थ की दौड़ को समाप्त कर दे। मैं उसी शिक्षा को सम्यक कहता हूं जो महत्वाकांक्षा के इस ज्वर से मनुष्य को मुक्त कर दे। मैं उसी शिक्षा को ठीक शिक्षा कहता हूं जो मनुष्य कोई बुनियादी भूल से छुटकारा दिलाने में सहायक हो जाए। लेकिन ऐसी शिक्षा पृथ्वी पर कहीं भी नहीं। उलटे जिसे शिक्षा कहते हैं वह मनुष्य की महत्वाकांक्षा (ःउइपजपवद) को बढ़ाने का काम करती है। उसकी महत्वाकांक्षा की आग में घी डालती है, उसकी आग को प्रज्वलित करती है, उसके भीतर जोर से त्वरा पैदा करती है, जोर से गति पैदा करती है कि वह व्यक्ति दौड़े और अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने में लग जाए। मन की वासनाओं को पूरा करने के लिए व्यक्ति को सक्षम बनाने की कोशिश करती है शिक्षा, मन को महत्वाकांक्षा से मुक्त होने के लिए नहीं। और इसके स्वाभाविक परिणाम फलित होने शुरू हुए हैं। सारे लोग अगर महत्वाकांक्षी हो जाएंगे तो जीवन एक द्वंद्व और संघर्ष के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हो सकता है। अगर सारे लोग अपनी महत्वाकांक्षा के पीछे पागल हो जाएंगे तो जीवन एक बड़े युद्ध के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता है। पुराने जमाने के लोग अच्छे नहीं थे। आज के जमाने के लोग बुरे नहीं हो
गए हैं। यह भांति है बिल्कुल कि पहले के जमाने के लोग अच्छे थे और आज के लोग बुरे हो गए हैं। यह भी भ्रांति है कि पहले जमाने के युवक अच्छे थे और आज के युवक पतित हो गए हैं और चरित्रहीन हो गए हैं। झूठी हैं ये बातें, इनमें कोई भी तथ्य नहीं है। लेकिन एक फर्क जरूर पड़ा है। पुराने जमाने का जवान शिक्षित नहीं था, उसकी महत्वाकांक्षा बहुत कम थी। आज की दुनिया का युवक शिक्षित है। उसकी महत्वाकांक्षा की अग्नि में घी डाला गया है। वह पागल होकर प्रज्वलित हो उठी है और जितनी जोर से शिक्षा बढ़ती जाएगी उतनी ही जोर से यह विक्षिप्तता और पागलपन भी बढ़ता जाएगा। शिक्षा के साथ-साथ मनुष्य का पागलपन भी विकसित हो रहा है।
अतीत के लोग अशिक्षित थे, बेपढ़े लिखे लोग थे। उनकी महत्वाकांक्षा धीमे धीमे जलती है। आज के युग की शिक्षा ने आदमी को, उसकी महत्वाकांक्षा को बहुत प्रज्वलित कर दिया है। पहले कभी कोई एकाध आदमी पागल हो जाता था और सिकंदर बनने की कोशिश करता था। अब सब आदमी पागल हैं और सभी सिकंदर होना चाहते हैं। और हम सिकंदर और पागल बनाने की इस कोशिश को शिक्षा का नाम देते हैं।
मैंने पुरानी से पुरानी किताबें देखी हैं और मैं देख कर हैरान हो गया। चीन में संभवतः दुनिया की सबसे पुरानी किताब है जो साढ़े छह हजार वर्ष पुरानी है और उस किताब की भूमिका में लिखा हुआ है कि आजकल के लोग बिल्कुल बिगड़ गए हैं, पहले के लोग बहुत अच्छे थे। मैं बहुत हैरान हुआ। वह भूमिका इतनी आधुनिक मालूम पड़ती है कि लगता है आजकल के किसी लेखक ने किताब लिखी हो। साढ़े छह हजार वर्ष पहले कोई लिखता है कि आजकल के लोग बिगड़ गए हैं, पहले के लोग अच्छे थे! यह पहले के लोग कब थे?
आज तक जमीन पर एक भी किताब ऐसी नहीं है जिसमें लिखा हो कि आजकल के लोग अच्छे हैं। हर किताब कहती है कि पहले लोग अच्छे थे। यह पहले की बात बिल्कुल कल्पना, बिल्कुल असत्य है। अगर पहले के लोग अच्छे थे तो ढाई हजार वर्ष पहले बुद्ध ने किन लोगों को सिखाया कि चोरी मत करो, झूठ मत बोला, हिंसा मत करो? किन लोगों को सिखाई है यह बात? अगर पहले के लोग अच्छे थे तो महाभारत कौन कराता था और सीता कौन चुरा ले जाता था? और अगर पहले के लोग

अच्छे थे तो दुनिया में यह जो उपदेशक हुए जीसस क्राइस्ट, कृष्ण, बुद्ध और कनफ्यूसियस, इन्होंने किन लोगों के सामने अपनी बातें समझाई? ये किनके लिए रोते थे? इनके हृदय में किनके लिए वेदना थी? ये किनसे कहते रहे कि तुम अच्छे हो जाओ? तो फिर ये सारे लोग पागल थे कि लोग अच्छे थे और ये व्यर्थ ही उपदेश दिए जाते थे। अगर यहां सभी लोग सच बोलने वाले हों और मैं आकर समझाने लगूं कि आपको सच बोलना चाहिए तो लोग हंसेंगे कि आप किसको समझा रहे हैं! यहां तो सभी लोग सच बोलते ही हैं।
दुनिया भर के शिक्षकों की शिक्षाएं यह कहती हैं कि लोग कभी भी अच्छे नहीं थे। जो फर्क पड़ा है वह इस बात में नहीं पड़ा कि लोग बुरे हो गए हैं। फर्क बड़ा है कि बुरे लोग शिक्षित हो गए हैं और शिक्षा ने बुरे लोगों को अपनी बुराई से बचाने के लिए कवच का रूप ले लिया है। शिक्षा उनकी बुराई को बचाने का माध्यम हो गई है। शिक्षा उनकी बुराई को बढ़ाने का माध्यम हो गई है। शिक्षा उनकी बुराई की जड़ों को पानी डालने का कारण बन गई है। लोग बुरे नहीं हो गए लेकिन बुरे लोग ज्यादा सबल और ज्यादा शक्तिमान हो गए हैं और उनके हाथ में शिक्षा ने बड़ा अस्त्र शस्त्र दे दिए हैं।
एक बुरा आदमी हो और उसके पास तलवार न हो और एक बुरा आदमी हो उसके हाथ में एटम बम आ जाए तो जिसके हाथ में एटम बम है वह बहुत बड़ी बुराई कर सकेगा और शायद तब हम सोचेंगे जिनके पास एटम बम नहीं था वे बड़े कोई अच्छे लोग थे। उनके हाथ में पत्थर थे तो उन्होंने पत्थर फेंके थे और एटम बम उनके हाथ में आ गया तो वे एटम बम फेंक रहे हैं। फेंकने वाले वही के वहीं हैं। केवल फिंकने वाली चीज की ताकत बढ़ गई है।
आदमी शिक्षित हुआ है और शिक्षा गलत है। आदमी बुरा हमेशा से था। शिक्षा ने बुराई को हजार गुनी ताकत दे दी है। कहते हैं न, करेला नीम पर चढ़ जाए तो और कड़वा हो जाता है। बुरे आदमी शिक्षा की नीम पर चढ़ गए। करेला तो पहले से ही कड़वा था और शिक्षा की नीम ने और कड़वा कर दिया है। और यह भी मत सोचना कि आज की शिक्षा ही गलत है, आज तक की सारी गलत रही है। यह भी मत सोचना कि पश्चिम के लोगों ने आकर शिक्षा गलत कर दी है। यह भूल से मत सोचना। शिक्षा हमेशा से गलत रही है। और यह भी मत सोचना कि विद्यार्थी गलत हो गए हैं। सब विद्यार्थी और सब गुरु हमेशा से गलत रहे हैं।
द्वोणाचार्य का नाम हम भलीभांति जानते हैं। अपने एक अमीर शिष्य के पक्ष में गरीब शूद्र का अंगूठा काट लाए थे। वे गुरु थे! एकलव्य से इसलिए अंगूठा लिया था कि अंगूठा दे दे तू, क्योंकि एकलव्य था शूद्र, गरीब और दरिद्र। और अर्जुन था धनपति, सम्राट, राजकुमार। अगर एकलव्य धनुर्विद्या में बड़ा हो जाए तो अर्जुन को कोई पूछेगा ही नहीं दुनिया में। तो उस गरीब शूद्र लड़के से अंगूठा कटवा लिया ताकि अमीर शिष्य आगे बढ़े जाए। पहले से ही गुरु गरीब शिष्यों के अंगूठे काटते रहे हैं यह कोई आज की बात नहीं है। लेकिन एक फर्क पड़ गया है। पुराना एकलव्य सीधा सादा था। उसने अंगूठा दे दिया था। नए एकलव्य अंगूठा देने से इंकार कर रहे है। वे कहते हैं, इस अंगूठा नहीं देंगे और वे कहते हैं कि यदि ज्यादा कोशिश की तो हम तुम्हारे अंगूठे काट लेंगे। यह फर्क पड़ गया है। इसके अतिरिक्त और कोई फर्क नहीं पड़ा है।
यह जो स्थिति है, यह जो आदमी की आज दशा है उससे चिंता होती है। हर तरफ विद्यार्थी आग लगा रहे हैं, पत्थर फेंक रहे हैं मकान तोड़ रहे हैं, यह कोई सामान्य घटना नहीं है। और यह घटना आज के विद्यार्थियों भर से संबंधित नहीं है। यह पांच हजार वर्ष का युवकों का रोष है जो इकट्ठा हो कर चरम सीमा पर पहुंच गया है। यह पांच हजार वर्ष की गलत शिक्षा का अंतिम फल है। यह पांच वर्षों के शोषण-यह पांच हजार वर्षों के दमित युवक के मन की पीड़ा और वेदना है और आज उसने वह जगह ले ली है कि अब उस वेदना को कोई ठीक मार्ग नहीं मिल रहा है तो वह गलत मार्गों से प्रकट हो रही है।
असल बात यह है कि युवक मकान तोड़ना नहीं चाहता है। कौन पागल होगा जो मकान तोड़ेगा? क्योंकि मकान अंततः किसके टूटते हैं? बूढ़ों के नहीं टूटते हैं, हमेशा युवकों के ही टूटते हैं। क्योंकि बूढ़े कल बिदा हो जाएंगे और मकान युवकों के हाथ में पड़ेंगे। फिर कौन महान तोड़ना चाहता है? कौन कांच

तोड़ना चाहता है? कौन बसें जलाना चाहता है? कोई नहीं जलाना चाहता। शायद मन के भीतर किन्हीं और चीजों को जलाने की तीव्र भावना पैदा हो गई है और समझ में नहीं आ रहा है कि हम किस चीज को जलाए तो हम किसी भी चीज को जला रहे हैं। सारे अतीत को जलाने का खयाल आज मनुष्य के भीतर पैदा हो रहा है और समझ में नहीं आ रहा है कि हम क्या जलाए, हम क्या करें, हम क्या तोड़ दें? कोई चीज तोड़ने जैसी हो गई है। कोई चीज मिटाने जैसी हो गई है। कोई चीज बिल्कुल जलाने जैसी हो गई है। हर युग में कुछ चीजें जला देनी पड़ती है ताकि हम अतीत से मुक्त हो जाए और आगे बढ़ जाए, ताकि परंपराओं से मुक्त हो जाए और जीवन गतिमान हो सके। नदी जब समुद्र की और दौड़ती है तो न मालूम कितने पत्थर तोड़ने पड़ते हैं, कितनी मार्ग की बाधाएं, हटानी पड़ती हैं, कितने दरख्त गिरा देने पड़ते हैं, तब कहीं रास्ता बनता है और नदी समुद्र तक पहुंचती है। हजारों हजारों साल से मनुष्य की चेतना को रोकने वाली बहुत सी चीजें पत्थरों की दीवाल की तरह खड़ी हैं। आज तक आदमी ने विचार नहीं किया उन्हें तोड़ डालने का। लेकिन जैसे जैसे मनुष्य की चेतना में समझ, बोध और विचार का जन्म हो रहा है वैसे ही एक तीव्र वेदना, एक तीव्र आंदोलन सारे जगत में प्रकट हो रहा है। युवक नासमझ है कि वह कुछ भी तोड़ने में लग गया है। लेकिन फिर भी मुझे बड़ी खुशी होती है और मेरे हृदय में बड़ा स्वागत है कि कम से कम उसने तोड़ना तो शुरू किया। आज गलत चीजें तोड़ता है कल ठीक चीजें तोड़ने के लिए हम उसे राजी कर लेंगे। अभागे तो वे युवक थे जिन्होंने कभी कुछ तोड़ा ही नहीं। तोड़ने की सामर्थ्य एक बार पैदा हो जाए तो तोड़ने की शक्ति को दिशा दी जा सकती है। एक बार विध्वंस की शक्ति आ जाए तो उस शक्ति को सृजनात्मक बनाया जा सकता है। क्योंकि स्मरण रहे जो लोग तोड़ ही नहीं सकते वे बना भी कैसे सकते हैं। और खयाल रहे सृजन का पहला सूत्र विध्वंस है। बनाने के पहले तोड़ देना पड़ता है।
एक गांव था। और उस गांव में एक बहुत पुराना चर्च था। वह चर्च इतना पुराना हो गया था। जैसे कि सभी चर्च पुराने हो गए हैं, सभी मंदिर पुराने हो गए हैं। वह बहुत पुराना हो गया था। उसकी दीवालें इतनी जीर्ण हो गई थीं कि उस चर्च के भीतर भी जाना खतरनाक था। वह किसी भी क्षण गिर सकता था। आकाश में बादल आ जाते और आवाज होती तो चर्च कांपता था। हवाएं चलती थीं तो चर्च कांपता था। हमेशा डर रहता कि चर्च कभी भी गिर सकता है। चर्च में जाना तो दूर, पड़ोस के लोगों ने भी पड़ोस में रहना छोड़ दिया था। डर था कि चर्च किसी भी दिन गिर जाएगा और प्राण ले लेगा। चर्च संरक्षक गांव भर में पूछते कि आप लोग चर्च क्यों नहीं चलते हैं? क्या अधार्मिक हो गए हैं? क्या ईश्वर का नहीं मानते हैं? लेकिन कोई भी अधार्मिक हो गए हैं? क्या ईश्वर को नहीं मानते हैं? लेकिन कोई भी इस बात को नहीं पूछता था कि कहीं ऐसा तो नहीं है चर्च बहुत पुराना हो गया है और उसके नीचे केवल वे ही जा सकते हैं जिनकी कब्र में जाने की तैयारी है, बिल्कुल बूढ़ा हो गए हैं, जिनको अब मरने से कोई डर नहीं है। जवान उस चर्च में नहीं जा सकते जो इतना गिने के करीब है। आखिर संरक्षक घबरा गए और उन्होंने एक कमेटी बुलायी और सोचा कि अब अगर कोई आता ही नहीं इस पुराने चर्च में तो उचित होगा कि हम नया चर्च बना लें। उन्होंने चार प्रस्ताव पास किए उस कमेटी में उन पर जरा गौर कर लेना क्योंकि उनका बड़ा अर्थ है।
उन्होंने चार प्रस्ताव किए। पहला संकल्प और पहला प्रस्ताव उन्होंने
यह किया कि पुराने चर्च को गिरा देना चाहिए। सबने कहा कि यह बिल्कुल ठीक है। सब एक मत से राजी हो गए। दूसरा प्रस्ताव उन्होंने यह किया कि हमें इसकी जगह एक नया चर्च बनाना चाहिए लेकिन ठीक उसी जगह जहां पुराना चर्च खड़ा है और ठीक वैसा ही जैसा पुराना चर्च है। इस पर भी सभी लोग राजी हो गए। तीसरा प्रस्ताव उन्होंने यह किया कि हमें पुराने चर्च में जो जो सामान लगा है उसी सामान से नया चर्च बनाना है। दरवाजे भी वहीं, ईंटें भी वही। पुराने चर्च के सारे सामान से यह नया चर्च बनाना है। इस पर भी सब लोग राजी हो गए। और चौथा प्रस्ताव उन्होंने यह पास किया कि जब तक नया चर्च न बन जाए तब तक पुराना चर्च गिराना नहीं है।

वह चर्च अभी भी खड़ा हुआ है। वह हमेशा खड़ा रहेगा। वह कभी नहीं गिर सकता क्योंकि वे प्रस्ताव पास करने वाले बड़े होशियार थे।
आदमी की जिंदगी पर भी पुराने चर्चों का बहुत भार है। पुरानी परंपराओं का, पुराने मंदिरों का, पुराने शास्त्रों का, पुराने लोगों का। अतीत जकड़े हुए है मनुष्य के भविष्य को। पीछे की तरफ हमारी टांग कसी हुई है किन्हीं जंजीरों से और आगे की तरफ हम मुक्त हो पाते तो प्राण तड़फड़ा उठते हैं कि तोड़ दो सब। और सब कोई उत्सुक हो जाता है तोड़ने को तो वह यह भूल जाता है कि हम क्या तोड़ रहे हैं।
युवक तोड़ रहे हैं यह तो खुशी की और स्वागत की बात है, लेकिन गलत चीजें तोड़ रहे हैं यह दुख की बात है। कुछ और जरूरी चीजें हैं जो तोड़नी चाहिए। मुल्क के नेता और मुल्क के अगुवा यही चाहते हैं कि युवक गलत चीजें तोड़ते रहें ताकि उन्हें कहीं ठीक चीजें तोड़ने की खयाल न जाए। वे भी यही चाहते हैं, यद्यपि वे समझाते हैं कि चीजें मत तोड़ो, बस में आग मत लगाओ, मकान मत जलाओ। वे समझाते हैं कि यह बहुत बुरा हो रहा है लेकिन हृदय के बहुत गहरे कोने में वे यही चाहते हैं कि युवकों का मन व्यर्थ की चीजें तोड़ने तक उनका खयाल न चला जाए। इसलिए जब कोई गलत चीजें तोड़ रहा है तो वह न सोचे कि उससे जिंदगी बनेगी। यह लोगों के हाथ में खेल रहा है उसका उसे पता ही नहीं है। नेता हमेशा मुल्क की चेतना को, देश के मन को गलत चीजों में उलझा देना चाहते हैं। और इस बात के पीछे बहुत गहरी चालाकी है। चालाकी यह है कि अगर लोगों को गलत चीजों में उलझा दिया जाए तो ठीक चीजें तोड़ने से उन्हें रोका जा सकता है। उनकी ताकत व्यर्थ की चीजों को नष्ट करने मग समाप्त हो जाती है। और न केवल ताकत समाप्त हो जाती है बल्कि व्यर्थ चीजें तोड़कर वे खुद पचात्ताप से भर जाते हैं और तब उनकी तोड़ने की हिम्मत क्षीण हो जाती है। उनका अंतःकरण कहने लगता है, यह सब गलत हो रहा है। उनके पास भी यह आत्मबल नहीं होता है कि वे यह कह सकें कि हमने इस बस में आग लगाई है तो कुछ ठीक किया है। उनके पास यह आत्मबल नहीं हो सकता है। गलत चीजें टूटने से कुछ बिगड़ता नहीं, उल्टे तोड़ने वाले का आत्मबल नष्ट होता है और उसकी तोड़ने की क्षमता नष्ट होती है। उसकी तोड़ने की शक्ति व्यर्थ की चीजों में उलझकर समाप्त हो जाती है।
उनसे ज्यादा से ज्यादा खतरा तभी तक होता है जब तक वे विश्वविद्यालय में पढ़ रहे हैं। उसके बाद उनसे कोई खतरा नहीं होता, क्योंकि उनकी पत्नियां, उनके बच्चे उनके सारे खतरे के लिए शाक एब्जार्वर का काम करने लगेंगे। फिर उनसे कोई खतरा नहीं है। एक बार उनकी शादी हो जाए तो उनसे कोई खतरा नहीं है। और मैं आपसे यह भी कह देता हूं, जैसा मैंने आपसे कहा कि युवक शिक्षित हो गया है इसलिए खतरा बढ़ा है, दूसरी बात, शादी की उम्र बड़ी हो गई है, इससे भी खतरा बढ़ा है। क्योंकि शादियां बहुत पुराने दिनों से आदमी के भीतर विद्रोह की क्षमता को तोड़ने का काम करती रही हैं, जो विद्रोही चेतना है उसको नष्ट करने का काम करती रही हैं। पुराने लोग इस मामले में बड़े होशियार थे। दस बारह साल के लड़कियों और लड़कों को विवाहित कर देते थे। उसके बाद उनसे विद्रोह की कोई संभावना नहीं रह जाती थी, वे उसी वक्त से बूढ़े होने शुरू हो जाते थे। असल में वे जवान हो ही नहीं पाते थे।
सारी दुनिया में शिक्षा के साथ दूसरा तत्व यह है कि विवाह की उम्र लंबी हुई है। चौबीस वर्ष और बीस वर्ष के युवक और युवतियां अविवाहित हैं। ये दिन विद्रोह की क्षमता के विकसित होने के क्षण हैं। उनके ऊपर कोई बंध नहीं। ये क्षण हैं, जब विद्रोह को सोच सकते हैं, जब उनकी आत्मा किन्हीं चीजों को गलत कह सकती है।
अमरीका के मनोवैज्ञानिकों ने सलाह दी है कि अमरीका में फिर छोटी उम्र में शादी शुरू कर देनी चाहिए। अगर चीजों को बचाना है कि युवक उन्हें तोड़ न दें, तो उनकी शादी जल्दी हो जानी चाहिए। क्योंकि तब उनकी सारी ताकत नमक, तेल, लकड़ी जुटाने में समाप्त हो जाती है। फिर उनसे कुछ भी नहीं हो सकता। जवानी में नमक तेल लकड़ी जुटाते हैं, बुढ़ापे में स्वर्ग, पर लोग वगैरह की व्यवस्था के लिए भजन कीर्तन करते हैं। फिर उनसे कोई विद्रोह नहीं हो सकता। विद्रोह के क्षण हैं उनके पच्चीस वर्ष से पहले के क्षण।

दुनिया में जो इतनी चीजें टूट रही हैं उसके पीछे ये कारण हैं। लेकिन मेरे मन में इससे दुख नहीं है कि चीजें टूट रही हैं। मैं मानता हूं कि बड़े शुभ लक्षण हैं, ये बड़े शुभ समाचार हैं। दुख इस बात का है कि गलत चीजें टूट रही हैं। बहुत जरूरी चीजें हैं जिन्हें तोड़ देना चाहिए। और उन जरूरी चीजों में से पहली चीज यह है कि हमें उस दुनिया को जो महत्वाकांक्षा के आधार पर खड़ी है, बदल देना चाहिए। महत्वाकांक्षा के आधार पर खड़ी हुई दुनिया को तोड़ देना चाहिए और एक गैर महत्वाकांक्षा (छवद(ंउइपजपवने) समाज का निर्माण करना चाहिए। यह क्यों? यह इसलिए कि महत्वाकांक्षा के आधार पर खड़ा हुआ जगत हिंसा, दुख और पीड़ा का ही जगत हो सकता है। उसमें न तो प्रेम हो सकता है, न आनंद हो सकता है, न शांति हो सकती है।
महत्वाकांक्षा का अर्थ क्या होता है? महत्वाकांक्षा का अर्थ होता है दूसरों से आगे निकल जाने की दौड़। बचपन से हमें यही सिखाया जाता है, पहली कक्षा से यही सिखाया जाता है कि दूसरे से आगे निकल जाओ, प्रथम आ जाओ। प्रथम आना ही एकमात्र मूल्य है। जो युवक प्रथम आ जाएगा, जो बच्चा पहले आ जाएगा वह पुरस्कृत होगा, सम्मानित होगा। जो पीछे छूट जाएंगे वे अपमानित हो जाएंगे। यह दुनिया इतनी उदास कभी नहीं होती, लेकिन हमें पता नहीं है कि हम कैसी मनौविज्ञानिक महत्वाकांक्षा रख रहे हैं मनुष्य के लिए। एक स्कूल में अगर हजार बच्चे पढ़ते हैं तो आखिर कितने बच्चे प्रथम आएंगे? दस बच्चे प्रथम आएंगे और नौ सा नब्बे पीछे रह जाएंगे।
दुनिया कौन बनाता है? प्रथम होने वाले दुनिया बनाते हैं या हारे हुए, पीछे रह जाने वाले लोग दुनिया बनाते हैं? दुनिया किनसे बनती है? दुनिया के संगठन कौन हैं दुनिया के संगठन हैं पराजित लोग। हारे हुए लोग, दुखी लोग जो प्रथम नहीं आ सके वे लोग। और जब पहली ही कक्षा से बच्चे को निरंतर पीछे रहना पड़ता है तो उसके जीवन में आत्मग्लानि, हीनता, दीनता सब पैदा हो जाता है। ये दीनहीन लोग दुनिया के संगठन हैं। उनकी बड़ी संख्या होगी, ये दुनिया को बनाएंगे, जिनको जीवन के कोई सम्मान नहीं दिया, कोई आदर नहीं दिया।
आप कहेंगे कि कौन इन्हें रोकता था, ये भी प्रथम आ सकते थे। ठीक कहते हैं आप। कोई नहीं रोकता है। ये भी प्रथम आ सकते थे। लेकिन तीस लड़कों में कोई भी प्रथम आए, एक ही लड़का प्रथम आएगा। उनतीस हमेशा पीछे रह जाएंगे। उनतीस दुखी होंगे। एक प्रसन्न होगा। कोई भी एक प्रसन्न हो, यह सवाल नहीं है कि कौन एक प्रसन्न होता है। लेकिन उनतीस दुखी होंगे। उनतीस के दुख पर एक व्यक्ति का सुख निर्भर होगा और उनतीस बच्चे दुख लेकर जीवन में प्रविष्ट होंगे। हारे हुए लोग, पराजित लोग। महत्वाकांक्षा ने सारी दुनिया को दीनहीन बना दिया है। एक ऐसा समाज और एक ऐसी शिक्षा और एक ऐसी संस्कृति चाहिए जहां प्रथम आने के पागलपन से आदमी का छुटकारा हो गया हो, नहीं तो दुनिया में युद्ध नहीं रुक सकते हैं, क्रोध नहीं रुक सकता। जब कोई आदमी बहुत क्रोध, दुख और विषाद से भर जाता है तो वह सारी दुनिया से बदल लेता है-इस बात का कि मुझे दुख दिया है उस दुनिया ने, मुझे कोई सम्मान नहीं दिया, मुझे कोई पुरस्कार नहीं दिए, मुझे कोई आदर नहीं दिया, मुझे कोई पदवियां नहीं दीं। वह सारी दुनिया के प्रति क्रुद्ध हो उठता है, क्रोध से भर जाता है। यह क्रोध निकल रहा है सब तरफ से बह बहकर।
क्या ऐसा नहीं हो सकता है कि हम एक ऐसी शिक्षा विकसित करें जो व्यक्ति
को प्रतिस्पर्धा में नहीं, आत्म परिष्कार में ले जाती हो। इन दोनों बातों में भेद है। इस सूत्रों को ठीक से समझ लेना जरूरी है। एक स्थिति तो यह है कि मैं दूसरे लोगों से आगे निकलने की कोशिश करूं और दूसरी स्थिति यह है कि मैं रोज अपने आपसे आगे निकलने की कोशिश करूं। मैं जहां कल था, आज उससे आगे बढ़ जाऊं। मेरी तुलना मेरे अतीत से हो, किसी पड़ोसी से नहीं। मैं रोज खुद को पार करूं, खुद को अतिक्रमण करूं। कल सूरज ने मुझ जहां छोड़ा था डूबते वक्त, आज का उगता सूरज मुझे वही न पाए। मैं आगे बढ़ जाऊं। कल रात सूरज विदा हुआ था तब खेतों में जो पौधे लगे थे आज सुबह आप उनको वहीं पाएंगे। वे आगे बढ़ गए हैं, लेकिन किस से आगे बढ़ गए हैं? किसी दूसरे से? नहीं, अपने से आगे बढ़ गए हैं। किसी दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है प्रकृति में। सारी प्रकृति किसी दूसरे से प्रतिस्पर्धा में नहीं है सिवाय मनुष्य को छोड़कर।

एक गुलाब का फूल खिल रहा है एक बगिया में। उसे कोई प्रतिस्पर्धा नहीं
है कि चमेली का फूल कैसे खिलता है और कमल का फूल कैसे खिला है। गुलाब का फूल खिल रहा है अपनी खुशी में। उसका पुष्पित होना उसकी अपनी आंतरिक बात है। आदमी भरके फूल गड़बड़ हो गए हैं। वह हमेशा दूसरों की तरफ देख रहे हैं कि दूसरे के खिलने से मैं कितना आगे निकलता हूं और वह कितने पीछे रह जाता है। अपनी खुद की सेल्फ फलावरिंग का कोई खयाल ही नहीं है। इससे एक पागलपन पैदा होता है। वह पागलपन ऐसा है कि अगर मैं किसी बगिया में चला जाऊं और गुलाब से कहूं कि पागल क्या तू गुलाब ही होकर नष्ट हो जाएगा? कमल नहीं होना है? कमल का फूल बहुत शानदार होता है, कमल हो जा तो पहली बात यह है कि गुलाब मेरी बात ही नहीं सुनेगा। वह हवाओं में डोलता रहेगा, मेरी बात उसे सुनाई नहीं पड़ेगी, क्योंकि फूल आदमियों जैसे नासमझ नहीं होते कि किसी ने भी बुलाया और सुनने को आ गए। फूल इतने नासमझ नहीं होते कि सुनने को राजी हो जाए। अव्वल तो फूल सुनेंगे नहीं, लेकिन हो भी सकता है, आदमी के साथ रहते रहते उसकी बीमारियां फूलों को भी लग सकती हैं। बीमारियां संक्रामक होती हैं। बीमारियां छूत की होती हैं। हो सकता है आदमी की बगिया में लगे लगे फूलों में गड़बड़ी आ गई हो और वह भी उपदेश सुनने लगे हों तो मेरी बात अगर वह फूल मान लेंगे तो फिर क्या होगा?
उस गुलाब के फूल को अगर मेरी बात पकड़ गई, यह ज्वर पकड़ गया कि मुझे कमल
का फूल हो जाना है या कमल के फूल से आगे निकल जाना है पागल हो जाएगा वह गुलाब का पौधा। फिर उसमें फूल पैदा नहीं होंगे। क्योंकि गुलाब से गुलाब ही पैदा होते हैं, कमल पैदा नहीं हो सकता। यह उसकी आंतरिक विवशता है, वह कुछ और नहीं हो सकता। गुलाब का फूल गुलाब ही हो सकता है। चमेली चमेली ही हो सकती है, चंपा चंपा ही हो सकती है, घास का फूल घास का फूल ही हो सकता है, कमल का फूल कमल का फूल ही हो सकता है। लेकिन अगर यह पागलपन चढ़ जाए कि चंपा चमेली होने की कोशिश करे, गुलाब कमल होने की, तो फिर उस बगिया में फूल पैदा होने बंद हो, जाएंगे। गुलाब कमल तो हो ही नहीं सकता है, लेकिन कमल होने की कोशिश में गुलाब भी नहीं हो सकता।
आदमी की बगिया में फूल इसीलिए पैदा होने बंद हो गए हैं। कांटे ही कांटे पैदा होते हैं; वहां फूल पैदा होते ही हनीं। क्योंकि कोई आदमी स्वयं होने की कोशिश में नहीं है। हर आदमी कोई और होने की कोशिश में है; किसी और को पार करने की चेष्टा में लगा हुआ है। शिक्षा हर आदमी को खुद होने का खयाल नहीं देती। हमारी शिक्षा कहती है, देखो वह आदमी आगे निकल गया है, तुमको भी वैसे हो जान है। देखो वह आदमी दिल्ली पहुंच गया है, तुमको भी दिल्ली पहुंच जाना है। देखो वह आदमी पहुंच जा रहा है आगे, तुम कहां पीछे रहे जाते हो। दौड़ों। इस तरह सब तरफ से महत्वाकांक्षा पैदा की जाती है। राजनैतिक रूप से महत्वाकांक्षा पैदा करते हैं कि देखो राधाकृष्णन स्कूल में शिक्षक थे वे राष्टपति हो जाओ। तुम भी पागल हो जाओ और शिक्षक दिवस मनाओ कि बड़ी सम्मान को बात हो गई कि एक शिक्षक राष्टपति हो गया।
मुझे भी एक शिक्षक दिवस पर भूल से बोलने के लिए बुला लिया गया। भूल से कोई बुला लेता है बोलने के लिए। मैंने उन शिक्षकों को कहा कि राष्ट्रपति हो जाए इसमें शिक्षकों का कौन सा सम्मान है? जिस दिन कोई राष्ट्रपति कहे कि मैं स्कूल में आकर शिक्षक होना चाहता हूं उस दिन शिक्षक दिवस मनाना। उस दिन कहना कि हम धन्य हुए कि एक राष्ट्रपति ने कहा है कि हम शिक्षक होने को तैयार हो। लेकिन एक शिक्षक राष्ट्रपति होना चाहे इसमें शिक्षक का क्या सम्मान है? इसमें राजनीतिज्ञ का सम्मान है, पद का सम्मान है, दिल्ली का सम्मान है, राज्य का सम्मान है। इसमें शिक्षक का कौन सा सम्मान है?
लेकिन हम कहते हैं देखो यह हुआ जा रहा है तुम भी दौड़ो। राजनैतिक रूप
से हम आदमी को ज्वर से भरते हैं। दौड़ो, आगे दौड़ो। दूसरे को पीछे छोड़ो और आगे बढ़ जाओ। ऐसे ही यह हम धार्मिक रूप से, नैतिक रूप से लोगों को सिखलाते हैं कि गांधी बन जाओ, बुद्ध बन जाओ, महावीर बन जाओ। ये झूठी बातें हैं। जहर फैला रहे हैं आदमी के दिमाग में। कोई आदमी कभी गांधी बन सकता है? कोई आदमी कभी बुद्ध बन सकता है? और बन सके तो भी बनने की जरूरत कहा है? एक आदमी काफी है अपने जैसा। दूसरे आदमी को वैसे होने की जरूरत नहीं है। एक गांव में अगर

एक ही जैसे बीस हजार गांधी पैदा हो जाए तो उस गांव की मुसीबत समझ सकते हैं। उस गांव में इतनी ऊब पैदा हो जाएगी, इतनी घबड़ाहट पैदा हो जाएगी कि लोग आत्महत्या कर लेंगे। जीना मुश्किल हो जाएगा। एक गांधी बहुत प्यारे हैं। एक बुद्ध बहुत अदभुत हैं। एक राम बहुत शानदार हैं। एक कृष्ण बमुकाबला हैं, कोई मुकाबला नहीं है उनका। बड़े खूबी के लोग हैं, लेकिन अगर एक ही गांव में एक ही जैसे राम ही राम धनुषबाण लिए हुए खड़े हों तो हो गई कठिनाई। रामलीला करनी हो तक ठीक है लेकिन अगर असली मामला हो तो बहुत गड़बड़ है।
कोई आदमी दोबारा दोहराए जाने की जरूरत नहीं है। पुनरावृत्ति (त्तमचमजपजपवद) की कोई जरूरत नहीं है। हर आदमी खुद होने को पैदा होता है, कोई और होने को पैदा हनीं होता। लेकिन अब तक हम शिक्षक को इस बात के लिए राजी नहीं कर पाए कि वे बच्चों से कह सकें कि तुम कुछ और होने की कोशिश मत करना, तुम खुद हो जाना।
जीवन में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात है वह है स्वयं होने की क्षमता
को उपलब्ध हो जाना। और जो आदमी दूसरे जैसे होने की कोशिश करेगा उस आदमी का पागल होना सुनिश्चित है। क्योंकि दूसरे जैसा वह हो नहीं सकता। इसलिए दुनिया में जितनी यह शिक्षा बढ़ती है, आदर्श बढ़ते हैं उतना ही पागलपन बढ़ता है। इसमें किसी और का कसूर नहीं। शिक्षा बुनियादी रूप से गलत है। जितना आदमी शिक्षित होता है उतना दूसरे होने की दौड़ में लग जाता है कि मैं कोई और हो जाऊं, कोई बन जाऊं, मैं कुछ और हो जाऊं। खुद से, स्वयं से उसकी कोई तृप्ति नहीं होती। वह कोई और होना चाहता है। जब भी कोई आदमी कोई और होना चाहता है तब आदमी अपने होने से च्युत हो जाता है। वह मार्ग से भटक जाता है, वह कुछ और होने की दौड़ में जो हो सकता था वह भी हनीं हो पाता है और तब जीवन में दुख और पीड़ा पैदा होती है।
अगर कोई पूछें कि पागलपन की क्या परिभाषा है, विक्षिप्त होने का क्या मतलब है तो मेरी दृष्टि में पागल होने की एक परिभाषा है जो आदमी स्वयं से भिन्न हो जाता है वह आदमी पागल है। और जो आदमी स्वयं हो जाता है वह आदमी स्वस्थ है। स्वयं हो जाना स्वस्थ होना है। बस और कोई स्वास्थ्य का मतलब नहीं होता है। हिंदी का शब्द है स्वास्थ्य, वह तो शब्द ही बहुत अदभुत है। स्वास्थ्य का मतलब है स्वयं में स्थित, जो स्वयं में खड़ा हो गया वह स्वस्थ है। और वह अस्वस्थ है जो स्वयं से भटक गया है, यहां-वहां चला गया है। हम सारे लोग स्वयं से भटकाए जा रहे हैं। हम स्वयं में स्थित होने के लिए दीक्षित नहीं किए जा रहे हैं। इससे एक विक्षिप्तता पैदा हो रही है, पागलपन पैदा हो रहा है।
नेहरू जब तक जिंदा थे, हिंदुस्तान में दस पच्चीस लोग थे जिनको यह खयाल पैदा हो गया था कि हम नेहरू हैं। मेरे छोटे से गांव में एक आदमी था। उसको यह वहम पैदा हो गया था कि वे जवाहरलाल नेहरू हैं। नेहरू एक पागलों की जुल देखने गए थे। एक पागल वहां स्वस्थ हो गया था, ऐसा मुश्किल से ही होता है। स्वस्थ तो अक्सर पागल होते हैं मगर पागल कम ही स्वस्थ होते देखे जाते हैं। लेकिन ऐसी दुर्घटना वहां घट गई थी, एक्सीडेंट हो गया था। एक पागल ठीक हो गया था और नेहरू उसको देखने गए थे, पागलखाने में। पागलखाने के अधिकारियों ने सोचा कि नेहरू के हाथ से ही उसको पागलखाने से छुटकारा और मुक्ति दिलवाई जाए। नेहरू भी बहुत खुश थे कि एक आदमी ठीक हो गया है। उससे मिलकर नेहरू ने पूछा कि क्या तुम ठीक हो गए हो? तो उसने कहा, मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं। तीन साल पहले मैं बिल्कुल पागल था। लेकिन आप कौन हैं महाशय? नेहरू ने कहा, मुझे नहीं जानते? मैं जवाहरलाल नेहरू हूं। वह आदमी यह सुन कर खूब हंसने लगा। उसने कहाः तीन साल आप भी यहां रह जाए तो ठीक हो जाएंगे। तीन साल आप भी यहां रह जाए तो ठीक हो जाएंगे। तीन साल पहले मुझे भी यही खयाल पैदा हो गया था कि मैं जवाहरलाल नेहरू हूं। तीन साल में मैं बिल्कुल ठीक हो गया हूं। तीन साल आप भी यहां रह जाएं।
जब भी किसी आदमी को खयाल पैदा हो जाता है कि मैं कोई और हूं तो समझ लेना कि वह पागल हो गया है। और जब भी कोई आदमी इस कोशिश में लग जाता है कि मैं कोई और हो जाऊं तो समझ लेना कि पागलपन की यात्रा शुरू हो गई है। इस शिक्षा ने मैनकाइंड को मैडकाइंड में बदल दिया है। आदमियत एक बड़ा पागलखाना

हो गई है। सारी जमीन पर पागलों का बड़ा समूह पैदा हो गया है फिर अगर ये पागल आग लगा दें, मकान तोड़ दें तो नाराज मत होइए। इनको हमने पागल बनाया है। हमने इन्हें इनकी आत्मस्थिति से च्युत किया है। यह जो हो सकते थे वह होने के लिए हमने इन्हें तैयार नहीं किया और जो नहीं हो सकते थे उसकी तरफ हमने इनको दौड़ाया है।
आदमी का मस्तिष्क इतने सूक्ष्म तंतुओं से बना है, आदमी का मन इतना नाजुक है कि उसमें जरा भी गड़बड़ करें तो सब नुकसान हो जाता है। आदमी का मन बहुत कोमल है। आदमी की छोटी सी खोपड़ी में करोड़ों रेशे हैं। अगर आदमी की खोपड़ी के रेशों को निकालकर हम कतार में फैला दें तो पूरी पृथ्वी का चक्कर लगा लेंगे। एक आदमी की खोपड़ी में इतने रेशे हैं। इतने बारीक सेल, इतने बारीक स्नायु और यह छोटा सा मस्तिष्क उन्हीं करोड़ों स्नायुओं से मिल कर बना है। सारी मशीन बहुत डेलिकेट है और इसमें जरा भी गड़बड़ी हो जाती है। आश्चर्य है यह कि अब तक सारे मनुष्य पागल क्यों नहीं हो गए। आश्चर्य
यह नहीं है कि कुछ लोग पागल हो जाए। आदमी के साथ जो किया जा रहा है, आदमी के साथ जो अनाचार हो रहा है, आदमी के साथ जो व्यभिचार हो रहा है, जो बलात्कार हो रहा है, आदमी के मन के साथ जो किया जा रहा है उससे सारे लोग पागल हो जाए तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि आदमी को आत्म विज्ञान में दीक्षित नहीं किया जा रहा है और पराए जैसे होने की दौड़ में, दूसरे को पार करने के पागलपन की दिशा में धक्के दिए जा रहे हैं। इन सारे धक्कों से यह उपद्रव पैदा हो गया है।
युवकों को शिक्षा देने से कुछ भी नहीं होगा। शिक्षा को आमूल ही बदल देना जरूरी है। एक पूरी तरह क्रांतिकारी कदम उठाना जरूरी है कि हम मनुष्य की महत्वाकांक्षा को ही हनीं बल्कि मनुष्य के भीतर जो छिपी हुई संभावनाएं हैं उनके परिष्कार को ध्यान में रखें। मनुष्य कहां पहुंचे यह सवाल नहीं है। मनुष्य जो है वह कैसे प्रकट हो जाए यह सवाल है। मनुष्य किसी मंजिल को छू ले यह सवाल नहीं है। मनुष्य के भीतर कुछ संभावना रूप में (ढवजमदजपंससल) छिपा हुआ है, जैसे बीज के भीतर पौधा छिपा हुआ होता है। बीज को हम बो देते हैं बगीचे में। माली बीज में से पौधे को खींच खींच कर निकालता नहीं है और अगर कोई माली खींच खींच कर पौधे को निकाल लेगा तो समझ लेना कि उस पौधे की क्या हालत होने वाली है। पौधा निकलता है। माली तो सिर्फ अवसर जुटा देता है। पानी डाल देता है। बीज डाल देता है, खाद डाल देता है, बागुड़ लगा देता है और फिर चुपचाप प्रतीक्षा करता है कि पौधा निकले। पौधा वह कभी निकालता नहीं है। लेकिन हम आदमी में से पौधे निकाल रहे हैं। उनको हम विश्वविद्यालय कहते हैं, विद्यालय कहते हैं, जिनमें आदमी के बीच में से हम जबर्दस्ती पौधा खींच रहे हैं। कोई पौधा बाप की मर्जी से खींचा जा रहा है। कोई पौधा मां की मर्जी से खींचा जा रहा है, कोई गुरु की मर्जी से खींचा जा रहा है। इनको इंजीनियर बनाओ, इनको कवि बनाओ, इनको डाक्टर बनाओ। कोई यह कुछ ही नहीं है कि इसके भीतर छिपा क्या है? यह क्या होने को पैदा हुआ है?
मैं एक घर में ठहरा हुआ था। एक लड़के ने कहाः मुझसे बचाइए। मैं पागल हो जाऊंगा। मैंने कहा, क्या मामला है। उसने कहाः मेरी मां कहती है इंजीनियर बनो। मेरे बाप कहते हैं डाक्टर बनो। और दोनों इस तरह खींच रहे हैं मुझे, कि न मैं इंजीनियर बन पाऊंगा, न मैं डाक्टर बन पाऊंगा और मैं जो बन जाऊंगा उसका जिम्मा किसी पर भी नहीं होगा। क्योंकि वे दोनों मुझे दो बनाना चाहते हैं। बच्चे खींचे जा रहे हैं, जबरदस्ती खींचे जा रहे हैं। बच्चों में कोई वृद्धि, कोई विकास नहीं होता। बच्चे को जबरदस्ती तनाव देकर हम उनमें से कुछ पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं। इसके पहले कि उनके भीतर कुछ पैदा हो, हम जबरदस्ती खींच तानकर उन्हें तैयार करते हैं। फिर अगर वे कुरूप हो जाते हैं, उनका जीवन एक कुरूपता बन जाता है, उनका जीवन सौंदर्य खो देता है और आनंद खो देता है तो हम पीड़ित और परेशान होते हैं और पूछते हैं कलियुग आ गया है क्या? लोग खराब हो गए हैं क्या? फिर हम अपने पुरानी किताबों में खोजते हैं जिनमें लिखा हुआ है कि हां, ऐसा वक्त आएगा जब लोग खराब हो जाएंगे। तब हम निश्चित हो जाते हैं। तो ठीक है, भविष्य वाणी ठीक हो गई है। ऋषि महात्मा बिल्कुल ठीक ही कहते थे कि जमाना खराब हो जाएगा। यह खराब का जमाना आ गया

है। नहीं, यह खयाल जमाना लाया गया है, यह आया नहीं है। और इसे हम रोज ला रहे हैं। असल में आसमान से कुछ भी नहीं टपकता है, हम जो लाते हैं वह आता है। हम यह स्थिति लाए हैं और इस सारी स्थिति के पीछे मनुष्य के सहज विकास का कोई ध्यान नहीं है। खींचने का ध्यान है। खिंचो और आदमी को कुछ बनाओ। इसको तोड़ डालो।
हम इनकार कर दें उस दिशा से जो आदमी के साथ जबरदस्ती कर रही है और कर दें कि चाहे हम अशिक्षित रह जाएंगे वह बेहतर है, लेकिन हम जबरदस्ती आत्मा के खींचे जाने को बरदाश्त नहीं करेंगे। अशिक्षित होने से कुछ भी नहीं बिगड़ता है। हजारों साल तक आदमी अशिक्षित रहा, क्या बिगड़ गया? वैसे कई लिहाज से फायदा था। अशिक्षित आदमी हमसे ज्यादा सौंदर्य में जीया हमसे ज्यादा शांति में जीया, हमसे ज्यादा आनंद में जीया। अशिक्षित आदमी हमसे ज्यादा स्वस्थ जीया तो शिक्षित होने से क्या हो जाने वाला है? लेकिन अगर ठीक से शिक्षा मिले तो बहुत कुछ कुछ हो सकता है। अगर तीन चुनाव हों आदमी के सामने-गलत शिक्षा, ठीक शिक्षा और अशिक्षा-तो मैं कहता हूं अगर गलत शिक्षा और अशिक्षा में से चुनना हो तो अशिक्षा चुननी चाहिए। अशिक्षित रह जाना बुरा नहीं है लेकिन अगर ठीक शिक्षा हो सके तो जरूर बड़ा सौभाग्य है। और शिक्षा ठीक हो सकती है।
पहली बात शिक्षा को महत्वाकांक्षा और प्रतिस्पर्धा के केंद्र से हटा देना चाहिए। उसकी जगह आत्मपरिष्कार और आत्म उन्नति और स्वयं के सहज विकास पर बल देना चाहिए और इसकी फिकर छोड़ देनी चाहिए कि हर आदमी इंजीनियर बने, हर आदमी डाक्टर बने। हो सकता है कोई आदमी अच्छा चमार बनने को पैदा हुआ हो। और अगर अच्छा चमार डाक्टर बन गया तो बड़े खतरे हैं। वह आदमी के साथ आपरेशन तो करेगा लेकिन वैसे जैसे जूते के साथ करता है। और हो सकता था वह अच्छा बढ़ई बनता। जरूरत है बढ़ई की भी, चमार की भी। लेकिन हमने जैसी गलत समाज व्यवस्था बनाई है उसमें हम डाक्टर को बहुत ऊंचा पद देते हैं। बढ़ई को कोई पद नहीं देते। तो बढ़ई को भी पागलपन शुरू होता है कि डाक्टर बनो। लेकिन बढ़ई की अपनी जरूरत है। उसकी जरूरत किसी डाक्टर से कम नहीं है। और चमार की अपनी जरूरत है। उसकी जरूरत किसी प्राइम मिनिस्टर से कम नहीं है। और शिक्षक की अपनी जरूरत है और वह किसी राष्टपति से कम नहीं है। जिंदगी बहुत लोगों का एक सम्मिलित चित्र है। जिंदगी सम्यक संगीत है।
लिंकन जब प्रेसिडेंट हुआ अमरीका का, यह तो आपको पता हो गा कि उसका बाप
एक चमार था। जूते सीता था। लिंकन प्रेसिडेंट हो गया तो कई लोगों को बहुत अखरा कि चमार का लड़का प्रेसिडेंट हो गया। पहले दिन जब सीनेट में लिंकन बोलने खड़ा हुआ तो एक आदमी ने खड़े होकर यह याद दिला देना जरूरी समझा कि इस बात को कोई भूल न जाए कि वे चमार के बेटे हैं। एक आदमी ने खड़े होकर कहा कि महाशय लिंकन, यह मत भूल जाना कि आप एक चमार के लड़के हैं। तालियां बज गई होंगी संसद में, लोग बहुत खुश हुए हों कि ठीक वक्त पर याद दिला दिया। लिंकन ने खड़े होकर कहा, मेरे पिता की याद दिला कर तुमने बहुत अच्छा किया। मैं बड़ी खुशी से भर गया हूं क्योंकि मैं यह भी तुम्हें कह देना चाहता हूं कि मेरे पिता जितने अच्छे चमार थे उतना अच्छा राष्टपति मैं नहीं हो सकूंगा। और जिन सज्जन ने यह कहा था, लिंकन ने उनसे कहा कि महाशय, जहां तक मुझे याद आता है आपके पिता भी मेरे पिता से ही जूते बनवाते थे और जहां तक मेरा खयाल है, आपके पिता ने कभी भी शिकायत नहीं की है, लेकिन आपको कैसे याद आ गई बात। मेरे पिता के जूतों से कोई शिकायत है आपको? मेरे पिता के चमार होने से कोई शिकायत है आपको? यह याद दिलाने का खयाल कैसे आ गया? मैं धन्यभागी हूं कि मेरे पिता एक अदभुत चमार थे। वे कुशल कारीगर थे।
यह दृष्टि जो है जीवन को देनी जरूरी है। महत्वाकांक्षा की दृष्टि ने
पद पैदा कर दिए। जीवन में पद पैदा कर दिए हैं कि कौन ऊंचा और कौन नीचा। यह महत्वाकांक्षा की शिक्षा का परिणाम (ईल-चतवकनबज) है, कि फलां आदमी चूंकि ज्यादा शिक्षा लेता है इसलिए ज्यादा ऊंचा है, कम शिक्षा लेता है इसलिए कम ऊंचा है। जो अनस्किल्ड है वह बिल्कुल किसी स्थान पर ही नहीं है। जीवन बहुत चीजों का जोड़ है। जीवन बहुत चीजों का संगीत है। एक ऐसी दुनिया बनानी है जहां सब जरूरी है, सब महत्वपूर्ण है, सब गौरवान्वित है इस दुनिया को मिटा

देना है, जहां थोड़े से लोगों के गौरव के लिए सारे लोगों का गौरव छीन लिया जाता है।
यह वैसी दुनिया है जैसे कोई गांव हो और उस गांव में लोग यह तय कर लें
कि दस पांच आदमियों की आंखें बचा लो। बाकी सबकी आंखें फोड़ दो। क्योंकि बाकी कंधे लोगों के बीच में आंख वाला होना बड़ा आनंदपूर्ण होगा। सब अंधे होंगे। हमारे पास आंखें होंगी तो बड़ा अच्छा होगा। और दस लोग मिलकर कुछ भी कर सकते हैं। क्योंकि दस लोग जहां मिल जाते हैं वहीं राजनीति शुरू हो जाती है। दस गुंडे मिलकर कुछ भी कर सकते हैं और यही आज तक दुनिया का दुर्भाग्य रहा है। अच्छे आदमी मिलकर यह तक कर लें कि नगर के सारे लोगों की आंखें फोड़ दो ताकि कुछ लोगों को आंख वाले होने का बड़ा आनंद उपलब्ध हो। जरूर तुमको आनंद ज्यादा उपलब्ध होगा। क्योंकि अंधों की बस्ती में आंख वाला होना बड़ा आनंद पूर्ण, बड़े अहंकार की तृप्ति करता है। कुछ लोगों ने यही किया हुआ है कि कुछ लोगों को पद दे दो। सारे लोगों के पद की सारी व्यवस्थाएं छीन लो ताकि पद का होना बहुत आनंदपूर्ण हो जाता। इन दुष्टों ने, इन हिंसक लोगों ने एक पृथ्वी बना दी है जो नर्क हो गई है। अगर तोड़ना है तो इस सबको तोड़ देना जरूरी है। और एक समाज, एक जीवन, एक संस्कृति निर्मित करनी है जहां हर आदमी को गौरवन्वित होने का मौका हो। जहां हर आदमी को स्वयं होने का मौका और अवसर हो। जहां पर आदमी जो भी होना चाहे सम्मानित और गौरव से हो सके। जहां गुलाब के फूल भी आदृत हों और घास के फूल भी सम्मानित हों। क्योंकि घास और गुलाब के फूल में परमात्मा का कोई फासला, कोई भेद नहीं है।
जब आकाश में सूरज निकलता है तो सूरज गुलाब के फूल देख कर यह नहीं कहता
है कि मैं मुझे ज्यादा रोशनी दूंगा। घास के फूल से यह नहीं कहता कि घास के फूल, हट, बीच में शूद्र तू कहां यहां आ गया, तुझे रोशनी नहीं दी जा सकती। उस घास के फूल को भी सूरज उतनी ही रोशनी देता है जितनी गुलाब के फूल को। जब आकाश में बादल घिरते हैं तो गुलाब के फूल पर ही पानी नहीं गिरता है, घास के फूल पर भी पानी गिरता है। और घास के फूल पर गिरा हुआ पानी दुख अनुभव नहीं करता है कि कहां मेरा दुर्भाग्य कि घास के फूल पर गिर रहा हूं। और घास का फूल जब खिलता है, छोटा सा फूल जब हवाओं में नाचता है तो उसकी खुशी किसी गुलाब के फूल से कम नहीं होती। असल में सवाल घास के फूल का और गुलाब के फूल का नहीं है। सवाल पूरी तरह खिल जाने का है। चाहे गुलाब का फूल पूरी तरह खिल जाए, चाहे घास का फूल पूरी तरह खिल जाए। जो पूरी तरह खिल जाता है वह आनंद को उपलब्ध हो जाता है, वह परमात्मा को उपलब्ध हो जाता है।